हिन्दी के मध्यकालीन नाटकों का अध्ययन

(हनुमान नाटक, विचित्र नाटक और देवमायाप्रपंच नाटक
के विशिष्ट संदर्भ में)

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ की पी-एच०डी० की उपाधि के लिए
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

१९८१

निर्देशक :
डॉ० गोविन्द नाथ राजगुरू
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

प्रस्तुतकर्त्री :
चंचल रानी

भूमिका

मध्यकालीन नाटक साहित्य अभी तक विवाद का विषय है। कुछ नाटकों के सम्बन्ध में कर्तृत्व का प्रश्न भी उलझा हुआ है। विधा की दृष्टि से इन्हें नाटक कहना भी कई बार असंगत जान पड़ता है। इतने आन्तरिक विरोधों के होते हुए भी इन रचनाओं को नाटक साहित्य के अन्तर्गत रखने की परम्परा चली आ रही है। इस परम्परा की विधिवत् समीक्षा हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने नहीं की है। इतिहास पढ़ते समय और हिन्दी नाटकों का अध्ययन करते समय इस समस्या से जूझना पड़ता है। इसी प्रक्रिया में से गुजरते हुए हिन्दी के मध्यकालीन नाटकों के सम्बन्ध में शोध करने का विचार उभरा। शोध-कार्य करते हुए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मध्यकालीन इन तथाकथित नाटकों का परिचय कोश-ग्रन्थों में ही उपलब्ध होता है। अधिकांश रचनाएँ अप्राप्य हैं। अनेक कृतियाँ दूरस्थ स्थानों पर हस्तलिखित रूप में प्राप्त होती हैं। मुद्रण के अभाव में इन हस्तलिखित प्रतियों का पूर्ण अथवा खण्डित रूप में उपलब्ध होना भी सहज कार्य नहीं है। अधिकांश रचनाओं के लेखकों का परिचय भी अन्धकारग्रस्त है। इन सीमाओं के कारण मध्यकालीन 'नाटक' नामक कृतियों में से इन तीन महत्त्वपूर्ण कृतियों को शोध का विषय बनाया गया :--

1: हृदयराम भल्ला कृत हनुमान नाटक,
2: गुरु गोबिन्द सिंह कृत विचित्र नाटक एवं
3: देव कृत देवमाया प्रपंच नाटक।

हनुमान नाटक के सम्बन्ध में पिछले दो ढाई सौ वर्षों से संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में चर्चा होती रही है। इस चर्चा के केन्द्र में हनुमान नाटक की कला तथा उसे नाटक अथवा महानाटक कहने का आग्रह रहा है। हिन्दी और पंजाबी के इतिहास लेखकों ने इस कृति पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया। परिणामस्वरूप हनुमान नाटक-सम्बन्धी चर्चा गुण तथा परिमाण दोनों की दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रूप में मिलती है।

विचित्र नाटक दशम गुरु की रचना है जिसे सिक्ख-परम्परा एवं पंजाब के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। हिन्दी में इस नाटक पर अधिक कार्य नहीं हुआ है परन्तु पंजाबी के विद्वानों ने इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की है। इस चर्चा से प्राप्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ इस शोध प्रबन्ध में संकलित की गई हैं।

देवमाया-प्रपंच नाटक के सम्बन्ध में भी पर्याप्त वाद-विवाद है। इसकी गुरुमुखी अक्षरों में भी एक प्रति मिली है उसकी सहायता से इस परम्परा को ठीक परिप्रेक्ष्य में रखने का प्रयास किया गया है। अब हिन्दी की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस नाटक का प्रकाशन हो चुका है। इस रचना को रीतिकालीन कवि देव से भिन्न व्यास-शिष्य देव की रचना मानने वालों का आग्रह अभी भी ज्यों का त्यों विद्यमान है। फलतः कृति के नाटकीय दृष्टि से विश्लेषण से पूर्व इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है।

हृदयराम भल्ला के जीवन एवं हनुमान नाटक के प्रणयन से सम्बन्धित जनश्रुतियों की समीक्षा तथा हृदयराम की अन्य कृतियों का प्रकाशन भविष्य की ही एक सम्भावना है। इस शोध-कार्य की अपनी सीमाएँ थीं। कृतिकारों के जीवन-सम्बन्धी अन्धकारमय पक्ष पर प्रकाश डालना एवं कृतियों का नाटकीय दृष्टि से विश्लेषण करना ही शोध का लक्ष्य बनाया गया।

प्रस्तुत शोध कार्य डा० गोविन्द नाथ राजगुरु, अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। सामग्री संकलन में सहायक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; तुलसी सदन, दिल्ली; दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, दिल्ली; पंजाब विश्वविद्यालय पुस्तकालय चण्डीगढ़; विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, होशियारपुर के प्रबंधकों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने पुस्तकें जुटाने में मेरी पर्याप्त सहायता की। इस कार्य में स्वजनों का सहयोग भी उपेक्षणीय नहीं है, अतः उन्हें धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ।

विनीत

चण्डीगढ़ : 8 दिसम्बर, 1981 । (चंचल रानी) Chanchal Rani

चंचल रानी

वि ष य - सू ची

		पृष्ठ-संख्या
विषय-प्रवेश		1—7
प्रथम अध्याय	हिन्दी के मध्यकालीन नाटक	8-45
	(क) भारत में नाटक-परम्परा ।	8-15
	(ख) हिन्दी के मध्यकालीन नाटक ।	15-22
	(ग) विषयानुसार वर्गीकरण ।	22-43
	(1) रामकथा-मूलक ।	23-27
	(2) कृष्ण कथा-मूलक ।	27-33
	(3) विविध ।	33-43
	(घ) निष्कर्ष	43-45
द्वितीय अध्याय	हनुमान नाटक	46-101
	(क) हृदयराम भल्ला : जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व ।	46-75
	(ख) हनुमान नाटक : नाटक के निकषा पर ।	76-99
	(ग) निष्कर्ष	100-101
तृतीय अध्याय	विचित्र-नाटक	102-146
	(क) गुरु गोविन्द सिंह : जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व।	102-126
	(ख) विचित्र नाटक : नाटक के निकषा पर ।	127-143
	(ग) निष्कर्ष ।	144-146
चतुर्थ अध्याय	देवमाया प्रपंच नाटक	147-212
	(क) महाकवि देव : जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व ।	147-171
	(ख) देवमाया प्रपंच नाटक : कर्तृत्व ।	172-189
	(ग) देवमाया प्रपंच नाटक : नाटक के निकषा पर	190-210
	(घ) निष्कर्ष ।	210-212

पंचम अध्याय	उपसंहार	213-228
परिशिष्ट	सहायक ग्रन्थ सूची --	229-247
	(क) हिन्दी पुस्तकें ।	229-242
	(ख) पंजाबी पुस्तकें ।	242-243
	(ग) अंग्रेज़ी पुस्तकें ।	243-246
	(घ) पत्र-पत्रिकाएँ ।	246-247
	(ङ) हस्तलिखित पुस्तकें ।	247-247

विषय - प्रवेश

'नाटक' साहित्य की सर्वाधिक रमणीय एवं सर्वोत्कृष्ट विधा है। हिन्दी-नाटक-साहित्य के उद्भव एवं विकास से सम्बन्धित पर्याप्त शोधग्रन्थ प्रकाश में आ चुके हैं तथापि हिन्दी साहित्य का मध्यकाल 'नाटक' के सन्दर्भ में आज भी विवाद-ग्रस्त है। विभिन्न शोधकर्ताओं के शोध-कार्य के परिणाम-स्वरूप दो सौ से अधिक कृतियाँ, नाटक-परम्परा के रूप में उल्लिखित की गई हैं। इन रचनाओं में नेपाल, मिथिला, आसाम आदि स्थानों से प्राप्त लोक-नाट्यों से सम्बन्धित कृतियों को भाषा-नाटक की संज्ञा से अभिहित करके, हिन्दी-नाटक परम्परा में स्थान दिया गया।

इन रचनाओं को 'भाषा-नाटक' की संज्ञा देने का मूल कारण हिन्दी भाषा के साथ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मैथिली आदि भाषाओं का प्रयोग है। ब्रजभाषा की विभिन्न 'नाटक' नामधारी रचनाओं को साहित्यिक नाटकों के रूप में विवेचित किया गया है। इस प्रकार, हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में दो श्रेणियों के नाटक उपलब्ध होते हैं, जिन्हें लोक-नाटक एवं साहित्यिक-नाटक के रूप में जाना जाता है। शोधकर्ताओं का एक वर्ग इन नाटकों को नाटक की कोटि से बहिष्कृत करता हुआ, आधुनिक काल से नाटक का प्रारम्भ मानता है जबकि दूसरा वर्ग इन समस्त -- नाटक, स्वाँग, लीला, यात्रा, ख्याल नामधारी रचनाओं को नाटक स्वीकारता है। वस्तुत: लोक नाट्यों से सम्बन्धित कृतियों का प्रणयन प्रदर्शन के दृष्टिकोण से किया गया है और वे प्राय: अभिनीत हुई हैं। ब्रजभाषा की, साहित्यिक-नाटकों के रूप में उल्लिखित कृतियाँ, 'नाटक' नहीं हैं। वे 'नाटक' नामधारी रचनाएँ मात्र हैं। इन्हें कुछ विद्वानों ने जननाट्य शैली, स्वाँग शैली आदि से प्रभावित रचनाएँ मान कर नाटक-साहित्य में सम्मिलित किया है। इस प्रकार शताधिक रचनाओं के प्रकाश में आने पर भी इस उलझन का

निराकरण नहीं हो पाया कि हिन्दी साहित्य का मध्यकाल 'नाटक' की दृष्टि से अभावग्रस्त था अथवा समृद्ध। हिन्दी-नाटक-कोश में, इस अवधि में प्राप्त समस्त तथाकथित नाटक-साहित्य को स्थान दिया गया है, जो एक प्रकार से इस बात को प्रमाणित करता है हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में उपलब्ध नाटक सम्बन्धी विभिन्न रचनाएँ 'नाटक' हैं तथा यह काल 'नाटक' की दृष्टि से अभावग्रस्त नहीं था। यह सत्य है कि मध्यकाल में नाट्य-कला ने उन्मुक्त वातावरण में साँस ली। यात्रा (जात्रा), कीर्तनियाँ, अँकिया, माच, नौटंकी, भवाई, स्वाँग, तमाशा, लीला आदि के रूप में, समस्त भारत में, काव्य के दृश्य-रूप की जीवन्त परम्परा विद्यमान रही है। परन्तु इन्हें 'नाटक' के वास्तविक अर्थ में नाटक नहीं स्वीकारा जा सकता। ये उपरूपक के अन्तर्गत सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन कृतियों में नाटकीय नियमों के पालन का अभाव है। साहित्यिक-नाटकों के रूप में उल्लिखित कृतियाँ भी अनाटकीय हैं। वे प्राय: अभिनय के दृष्टिकोण से नहीं लिखी गई हैं। इस प्रकार उनमें दृश्य-स्तर, प्रदर्शन-पक्ष की अपेक्षाएँ अनुपलब्ध हैं। दूसरे, उन रचनाओं के साथ 'नाटक' शब्द संलग्न होने मात्र से इन्हें नाटक-साहित्य में परिगणित करना उचित प्रतीत नहीं होता। उदाहरण के लिए प्राणचन्द चौहान कृत रामायण महानाटक, हृदयराम भल्ला कृत हनुमन्नाटक (हनुमान नाटक) उदयकवि कृत रामकरुणाकर नाटक तथा हनुमन्नाटक, गुरु गोबिन्द सिंह कृत विचित्र-नाटक, बनारसीदास जैन कृत समयसार नाटक, रघुरामनागर कृत सभासार नाटक तथा देव कृत देवमाया प्रपंच नाटक प्रभृति कृतियाँ।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में, साहित्यिक-नाटकों के सम्बन्ध में विद्यमान मतभेद का प्रमुख कारण, प्रत्येक नाटक के गहन अध्ययन एवं विश्लेषण का अभाव है। प्रस्तुत शोध-कार्य इसी दिशा में एक अल्प प्रयास है। इन सभी नाटकों का सूक्ष्म विश्लेषण एक ही शोध-परिधि में प्रस्तुत कर पाना सहज कार्य नहीं है। यही कारण है कि शोध-प्रबन्ध में तीन रचनाओं को ही अध्ययन का विषय बनाया गया है : हृदय राम भल्ला कृत हनुमान नाटक, गुरु गोबिन्द सिंह कृत विचित्र नाटक एवं देव कृत देवमाया प्रपंच नाटक। इसका कारण

इन रचनाओं की महत्वपूर्ण स्थिति है। हृदयराम भल्ला कृत हनुमान नाटक, गुरु गोबिन्द सिंह कृत विचित्र नाटक एवं महाकवि देव कृत देवमाया-प्रपंच नाटक तीन विभिन्न भावधाराओं की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं ।

हनुमान नाटक गुरुमुखी लिपि में रचित, पंजाब प्रदेश की हिन्दी साहित्य को महत्वपूर्ण देन है। इसे दशम ग्रन्थ का अग्रणी; पंजाब में रचित प्रथम मौलिक ऐतिहासिक प्रबन्ध के रूप में स्वीकृत, भाव एवं भाषा की दृष्टि से समृद्ध यह कृति हिन्दी साहित्य की मूल्यवान् निधि है। परन्तु इस रचना को अपने मूल अभिधान में जीने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ। हनुमान नाटक की रचना एवं हृदयराम से सम्बन्धित विभिन्न जनश्रुतियाँ तथा हिन्दी-नाटक-कोश में उपलब्ध प्रस्तुत कृति के परिचय ने हनुमान नाटक को अध्ययन का विषय बनाए जाने की आवश्यकता का बोध कराया अनुभव कराई। हृदयराम भल्ला की दो अन्य कृतियाँ 'रुक्मिणी-मंगल' एवं 'सुदामा-चरित' को प्रकाश में लाने की बलवती इच्छा भी इसकी प्रेरक बनी।

विचित्र नाटक औरंगजेब के काल में रचित, विद्रोही कृति है। हिन्दी नाटक-कोश में इस कृति को नाटक कहे जाने से कुछ असुविधा होती है। मुगल शासन और वह भी औरंगजेब का शासन, जिस में विद्रोही का सिर उठने से पूर्व ही कुचल दिया जाता था, प्रत्यक्ष रूप से विद्रोह का स्वर उठाना सहज न था। ऐसी कृति की 'नाटक' के रूप में कल्पना कर पाना ही दुष्कर है। रीतिकालीन शृंगारिक वातावरण की वीर रसात्मक इस कृति ने विरोधी परिस्थितियों में समाज की भावधारा को परिवर्तित किया। विचित्र नाटक के इस अनन्य महत्व एवं इसे नाटक सिद्ध किए जाने के ठोस प्रयासों ने प्रस्तुत शोध के क्षेत्र से विचित्र-नाटक को जोड़ दिया।

देव कृत देवमाया-प्रपंच नाटक के विषय में प्रमुख बात यह है कि नाटक-सम्बन्धी शोध ग्रन्थों में यह उपेक्षित-सा रहा है। इसका कारण सम्भवत: इसके

रचयिता के सन्दर्भ में व्याप्त मतभेदों का निराकरण न होना है। श्रृंगारिक भाव-धारा की प्रधानता के काल में, श्रृंगारिक रचनाओं के सर्जक कलाकार की वैराग्यपरक यह रचना पाठक को बरबस आकृष्ट कर लेने में सहज ही समर्थ है। प्रस्तुत कृति को शोध-परिधि में परिगणित करने का कारण इसके रचयिता से सम्बन्धित विवाद एवं रीतिकालीन श्रृंगारिक परिस्थितियों की वैराग्यपरक उपज है।

सारांशत: हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में प्राप्त नाटक-साहित्य के विषय में उपलब्ध परस्पर विरोधी मान्यताएँ प्रस्तुत शोध-कार्य की प्रेरक हैं। हनुमान नाटक, विचित्र-नाटक एवं देवमाया-प्रपंच नाटक पर विचार करने का कारण इन कृतियों की साहित्यिक देन है : प्रथम संस्कृत-नाटक परम्परा से जुड़ा है तो दूसरा मध्यकालीन वीरकाव्यधारा से तीसरा श्रृंगारिक भावधारा के प्रतिनिधि कवि की वैराग्यपरक सर्जना है। कृतियों की महत्ता एवं मध्यकालीन नाटकों के सम्बन्ध में प्राप्त विरोधी मत "हिन्दी के मध्यकालीन नाटकों का अध्ययन (हनुमान नाटक, विचित्र नाटक एवं देवमाया प्रपंच नाटक के विशिष्ट सन्दर्भ में)" विषय-निर्धारण के प्रमुख प्रेरक बने।

कृतियों का अध्ययन पूर्वाग्रह रहित होकर किया गया है। 'रचना' के प्रणयन में लेखक का दृष्टिकोण प्रमुख माना जाता है। लेखक विशेष के दृष्टिकोण के उपरान्त कृति की नाटकीय नियमों --- कथावस्तु, पात्र-सृष्टि, नेता, रस, संवाद-योजना, भाषा, शैली आदि के आधार पर परख की गई है। इस प्रकार, तटस्थ रहकर कृति के काव्यरूप की जाँच की गई है। प्रस्तुत शोध-कार्य इन्हीं सीमाओं के भीतर रह कर किया गया है। कृति को नाटकीय-अनाटकीय कहे जाने की विरोधी मान्यताओं को निश्चित आयाम तक पहुँचाने का प्रयास प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किया गया है। साथ ही हृदयराम, गुरु गोबिन्द सिंह एवं देव के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर भी नवीन प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। अनावश्यक विस्तार से बचते हुए, प्रथम अध्याय हिन्दी के मध्यकालीन नाटकों, द्वितीय अध्याय हनुमान नाटक, तृतीय अध्याय विचित्र नाटक, चतुर्थ अध्याय देवमाया-प्रपंच नाटक एवं पंचम अध्याय उपसंहार से सम्बन्धित किया गया है। व्यर्थ के विस्तार से दूर एवं अपने शोध-क्षेत्र से सम्बन्धित रहने के लिए अध्यायों का यह विभाजन उचित प्रतीत हुआ ।

प्रथम अध्याय : हिन्दी के मध्यकालीन नाटक चार उपशीर्षकों में विभाजित है। इसमें हिन्दी के मध्यकालीन नाटकों के विवेचन से पूर्व नाटक के उद्भव एवं संस्कृत-नाटक-परम्परा को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आदि नाटक-विरोधी परिस्थितियों के साथ-साथ संस्कृत की ह्रासोन्मुख नाटकीय परम्परा ने भी इस अवधि के नाटक-साहित्य को प्रभावित किया था। विभिन्न शोध-ग्रन्थों के परिणामस्वरूप प्राप्त नाटक-रूप में उल्लिखित कृतियों की सूची देते हुए उनका विषय के आधार पर वर्गीकरण किया गया है तथा रामकथा मूलक, कृष्णकथा मूलक एवं विविध विषयक शीर्षकान्तर्गत इन कृतियों का विवेचन किया गया है ।

द्वितीय अध्याय : हनुमान नाटक: तीन उपशीर्षकों में विभाजित है । प्रथम कृतिकार के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित है। इसमें हृदयराम भल्ला के जीवन से सम्बन्धित अनालोचित पक्षों का विवेचन किया गया है। कृतित्व के आधार पर हृदयराम के व्यक्तित्व को खोजा गया है। और 'रुक्मिणी-मंगल' एवं 'सुदामा चरित' नामक दो अन्य कृतियाँ, जो क्रमश: देवनागरी-लिपि एवं कैथी लिपि में अपूर्ण तथा पूर्ण रूप में उपलब्ध हैं, को साहित्य-जगत् में प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है। हनुमान नाटक की हस्तलिखित एवं मुद्रित देवनागरी तथा गुरुमुखी लिपि की प्रतियों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। द्वितीय में नाटक के निकष पर हनुमान नाटक का परीक्षण किया गया है।

इसके अन्तर्गत कृति के वास्तविक नाम, कथावस्तु, कथावस्तु-संगठन, शैली, अनाटकीय प्रसंगों के विवेचन के पश्चात् हिन्दी नाटक कोश में प्रदत्त प्रस्तुत कृति के परिचय का परीक्षण किया गया है। नाटक कोशकार द्वारा स्वीकृत नाटक की कसौटी पर भी प्रस्तुत कृति अनाटकीय सिद्ध हो जाती है। अलंकृत-भाषा भी इसकी नाटकीयता पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। तृतीय उपशीर्षक में इस समस्त विश्लेषण का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय : विचित्र नाटक, तीन उपशीर्षकों में विभाजित है। प्रथम गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित है। द्वितीय में विचित्र नाटक के सम्बन्ध में विद्वानों के दृष्टिकोण, गुरु गोबिन्द सिंह का उद्देश्य, नामकरण का औचित्य, कथावस्तु, कथावस्तु-संगठन, शैली, नाटक-कोश में प्राप्त प्रस्तुत कृति का विवरण : पात्र, घटनास्थल, के अतिरिक्त संवाद-योजना, अनाटकीय प्रसंग, भाषा आदि के आधार पर विचित्र नाटक को नाटक के निकष पर तोला गया है। तृतीय उपशीर्षक में समस्त विवेचन से प्राप्त निष्कर्ष है।

चतुर्थ अध्याय : देवमाया-प्रपंच नाटक चार उपशीर्षकों में विभक्त किया गया है। प्रथम में देव का जीवन तथा रचनाओं के आधार पर व्यक्तित्व एवं विभिन्न भाव-भूमियों में विचरण के आधार पर उसके गत्यात्मक 'कवि' का परिचय दिया गया है। द्वितीय देवमाया प्रपंच नाटक के रचयिता के सन्दर्भ में विद्यमान सन्देह से संबंधित है। कुछ विद्वानों ने रीतिकालीन प्रसिद्ध महाकवि देव तथा व्यास-शिष्य देव को भिन्न मानते हुए देवमाया-प्रपंच नाटक को द्वितीय देव द्वारा रचित माना है। देवमाया-प्रपंच नाटक को रीतिकालीन देव की रचना सिद्ध करने वाले विद्वानों ने 'व्यास-शिष्य देव' सम्बन्धी तर्क को अछूता छोड़ दिया था। प्रस्तुत शीर्षक के मध्य रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि देव तथा व्यास-शिष्य देव की अभिन्नता प्रमाणित की गई है। तृतीय उपशीर्षक में नाटक के निकष

पर देवमाया प्रपंच नाटक की परीक्षा की गई है। देव ने इस कृति को नर-नारी के प्रयोग, संवाद-योजना, प्रवेश-प्रस्थान-सूचना आदि द्वारा नाटकीय बनाने का प्रयास अवश्य किया है, परन्तु वह सफल न हो सका। कथावस्तु, कथावस्तु-संगठन, नेता, रस, पात्र-सृष्टि, संवाद-योजना, अन्तर्द्वन्द्व तथा बाह्य संघर्ष, भाषा, उद्देश्य, अभिनय के अनुपयुक्त प्रसंग, प्रस्तुत रचना को अनाटकीय सिद्ध करते हैं। नाटकीय नियमों का निर्वाह प्रस्तुत कृति में नहीं हो पाया है। चतुर्थ उपशीर्षक में देवमाया-प्रपंच नाटक के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय उपसंहार है। इसमें हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के नाटक-साहित्य विशेषकर हनुमान नाटक, विचित्र-नाटक एवं देवमाया-प्रपंच नाटक के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों का विवेचन किया गया है।

परिशिष्ट में सहायक ग्रन्थ सूची : हिन्दी, पंजाबी एवं अंग्रेज़ी की मुद्रित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं के पश्चात् हस्तलिखित पुस्तकों का उल्लेख किया गया है।

प्रथम अध्याय

हिन्दी के मध्यकालीन नाटक

(क) भारत में नाटक-परम्परा ।

(ख) हिन्दी के मध्यकालीन नाटक ।

(ग) विषयानुसार वर्गीकरण --

(1) रामकथामूलक ।

(2) कृष्णकथामूलक ।

(3) विविध ।

(घ) निष्कर्ष ।

हिन्दी के मध्यकालीन नाटक

(क) भारत में नाटक-परम्परा

हिन्दी भाषा एवं साहित्य का उद्भव जिस प्रकार एक आकस्मिक घटना नहीं है, उसी प्रकार हिन्दी नाटक भी एकाएक प्रकाश में नहीं आए। वरन् संस्कृत-नाटक परम्परा से धीरे-धीरे प्रेरणा पा कर विकसित हुए।

नाटक की उत्पत्ति कब एवं कैसे हुई, इस प्रश्न पर भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों में पर्याप्त मतभेद है। प्रो० 'रिजवे' उसे श्रद्धा कल्प के समान पितरों के प्रति प्रकट की गई श्रद्धा के प्रतिफलन का समुन्नत रूप मानते हैं। 'स्टैनकोनो' का विश्वास है कि स्वाँग का परिष्कृत रूप ही भारतीय नाटक है, 'लेवी' संवाद सूक्तों को भारतीय नाटक का जनक समझते हैं, 'श्रेडर' 'हिलेब्रैंड' तथा 'हर्टेल' को देवतत्व-प्रधान रहस्य भावना में नाटक के बीज मिलते हैं, 'पिशेल' को कठपुतलियों के नाच में भारतीय नाटक का आदि रूप मिला, 'ल्यूडर्स' ने छाया नाटकों के मूल से भारतीय नाटकों को निकाला है, 'कीथ'[x] को ऋतूत्सव के उपलक्ष्य में नाट्य-प्रदर्शन की प्रथा की संभावना मिली, शौरसेनी प्राकृत का अधिक प्रयोग होने के कारण 'विण्टरनित्स' को कृष्णपूजा ही नाटक की प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकृत हुई और 'हरप्रसाद शास्त्री' ने इन्द्रध्वज-महोत्सव को नाटक का आदि रूप माना। इन तर्क-वितर्कों से सम्बन्धित साहित्य और भी अधिक है।[1] नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय 'धर्म' को मूलभूत

---

x Sanskrit Drama ...?

1-- साहित्य परीक्षण, सत्यदेव चौधरी, पृ० 22-23 ।

कारण मानते हुए लिखते हैं, "ये सब कल्पनाशील विद्वान इस बात को भूल जाते हैं कि भारतवर्ष में धार्मिक, सामाजिक और लौकिक कृत्यों में ऐसा भेद नहीं है, जैसा कि यह लोग समझते हैं। भारतवर्ष में धर्म मानव-जीवन का अंग है। इस देश का दुकानदार भी तो अपनी गोलक को महादेव बाबा की गोलक बतलाता है। यहां पर तो विवाह भी एक धार्मिक संस्था है। यह अवश्य माना जाएगा कि कुछ कार्यों में धार्मिकता अधिक है और कुछ में सामाजिकता किन्तु, उनका पार्थक्य करना नितान्त असम्भव है। हिन्दुओं के यहां जितने आनन्द के साधन हैं, उनका मूल धर्म में है। उनकी अतिशयता चाहे उन्हें अधर्म का रूप दे दे ये दूसरी बात है। -- -- -- -- यूनान में भी तो नाटकों का उदय धार्मिक कृत्यों से ही हुआ था। इंग्लिस्तान में भी नाटकों का विकास रामलीला की भांति क्राइस्ट की जीवन लीलाओं के अभिनय से हुआ था। फिर धर्म-प्रधान भारतवर्ष में धर्म के अतिरिक्त और किसी स्रोत को मानने की क्या आवश्यकता है ?[1]

'नाटक' उत्पत्ति के मूलभूत कारण एवं काल-सीमा को निर्धारित करना सहज नहीं है। "अनुकरण" एवं "आत्मप्रकाशन" की भावनाएँ जब मनोरंजनार्थ या अन्य किसी कारणवश क्रियाशील होती हैं, अर्थात् व्यक्ति जब जानबूझ कर, अन्य व्यक्ति का-भाषा, भाव, चाल-ढाल, वेश-भूषा, कार्य-व्यापार आदि द्वारा-अनुकरण प्रस्तुत करता है, तो वह अनुकरण 'नाटक' कहलाता है। जब यह 'अनुकरण' किसी निश्चित स्थान, समय, घटना, पात्रों आदि के नियमों में बाँध कर प्रस्तुत किया जाता है तो इसे 'नाटक' मानने में प्राय: संकोच नहीं किया जाता। वैसे मनोरंजन और आनन्द की चाह, अनुकरण-प्रियता आदि तथ्य नाटक की प्राचीनता को स्वत: सिद्ध करने में समर्थ हैं।

1-- हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाब राय, पृ0 9 एवं 11, संस्करण 1945 ।

अनुकरण और आत्म-प्रकाशन की भावनाएँ मानव में जन्म से ही विद्यमान रहती हैं। येही भावनायें भावाभिव्यक्ति के मूल कारण हैं। अभिव्यक्ति के समय शरीर का अंग-प्रत्यंग भावानुरूप स्वत: गतिशील हो उठता है। आदि मानव विभिन्न शारीरिक संकेतों द्वारा अपने भावों का सम्प्रेषण करता था। परन्तु भावुक, संवेदनशील, बौद्धिक एवं चिन्तनशील प्राणी होने के कारण उसकी 'अभिव्यक्ति' शारीरिक इंगितों से ही सन्तुष्ट न हुई, फलत: 'ध्वनि-संकेतों' का निर्माण एवं प्रयोग प्रारम्भ हुआ। कालान्तर में येही 'सार्थक ध्वनि-संकेत' 'भाषा' कहलाए। धीरे-धीरे अभिव्यक्ति के ये दोनों साधन इतने घुल-मिल गए कि इनका पार्थक्य असम्भव-सा हो गया। आज भी दूर खड़े एक व्यक्ति को संकेत द्वारा कुछ कहते हुए दूसरे व्यक्ति बोलते या बुदबुदाते भी पाए जाते हैं। बोलते हुए व्यक्ति को, अंग-संचालन से, रोकने का प्रयत्न करने पर भी, नहीं रोका जा सकता। भाव-अभिव्यक्ति में शारीरिक-क्रियाएँ एवं ध्वनि-संकेत अत्यन्त गहनता से जुड़े हुए हैं। प्रत्येक मनुष्य बिना किसी प्रयत्न के सफलतापूर्वक इनका प्रयोग करता है।

जब अभिव्यक्ति के इन साधनों का प्रयोग, किसी व्यक्ति-विशेष की, उससे सम्बन्धित घटना की अनुकृति, सजीव रूप में प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है तो वह 'नाटक' कहलाता है। 'नाटक में जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित न करके उसको सजीव पात्रों द्वारा एक चलते-फिरते सप्राण रूप में अंकित किया जाता है।[1] 'नाटक' में एक (अनेक) व्यक्ति प्रयास द्वारा दूसरे व्यक्ति (व्यक्तियों) की भाषा, भाव एवं व्यवहार आदि का अनुकरण समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इसका लक्ष्य मनोरंजन या उपदेश कुछ भी हो सकता है। एक व्यक्ति का जानबूझ कर दूसरे व्यक्ति की भूमिका में उतरना 'नाटक' है। अनुकृति की पूर्णता के लिए व्यक्ति-विशेष के रूप, वेश-भूषा का अनुकरण भी किया जाता है। 'रूप के आरोप' के कारण

1-- हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाब राय, पृ० 4, संस्करण 1945 ।

'नाटक' को 'रूपक' भी कहते हैं। 'नाटक' एवं 'रूपक' का यह समस्त क्रिया-व्यापार क्योंकि दृष्टि की अपेक्षा रखता है, इसलिए इसे 'दृश्य-काव्य' भी कहा जाता है। भावाभिव्यक्ति की पूर्णता में, भावों के सफल सम्प्रेषण के लिए जितनी सामर्थ्य 'नाटक' में है, उतनी अन्य 'रूपों' में नहीं, क्योंकि इस में व्यक्ति आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अभिनय द्वारा भाव-भंगिमाओं को सम्पूर्णत: अभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है। चित्रकला, मूर्तिकला स्थापत्य कला, कविता, उपन्यास, कहानी संगीत आदि द्वारा 'नाटक' के समान प्रभाव उत्पन्न करना सहज नहीं, कारण, 'नाटक' में 'मन' सहित दृष्टि एवं श्रवण तीनों सक्रिय हो उठते हैं, जबकि अन्य कलाओं में इनमें से किन्हीं दो की अपेक्षा की जाती है। यूँ तो मनुष्य की प्रत्येक इन्द्रिय रसास्वादन कराने में समर्थ है। परन्तु, जहाँ एकाधिक इन्द्रियों का सहयोग हो, वहाँ रसास्वादन एवं प्रभावोत्पादकता अधिक होती है। यही कारण है कि नाटक 'विज्ञ' ही नहीं, अल्पज्ञ और अज्ञ के लिए भी सहज ग्राह्य सिद्ध होता है। यथोचित प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ, विभिन्न भावों एवं विचारों का सफल वाहक सर्वग्राह्य और सार्ववर्णिक 'नाटक' को 'पंचम वेद', 'चाक्षुष-यज्ञ', सर्वश्रेष्ठ 'क्रीडनीयक', 'काव्येषु नाट्यं रम्यम्' आदि उक्तियों से सुशोभित करना उपयुक्त ही है। नाटक में विभिन्न कलाओं के सफलतापूर्वक समावेश के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है। नाटक के सम्बन्ध में भरत ने कहा था, -- नाटक के समान न कोई 'ज्ञान' है, न 'शिल्प', न 'विद्या' है, न 'कला', न 'योग' है, न 'कर्म'।[1] वस्तुत: ये पृथक-पृथक रूप, एकाकी रूप में 'नाटक' के समक्ष कैसे ठहर सकते हैं, क्योंकि उस में तो ये सभी रूप सहज प्राप्य हैं। समस्त कलाओं का समुच्चय, रसानुभूति एवं सौन्दर्य-बोध द्वारा लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि करने में सहज समर्थ नाटक निरुद्देश्य आनन्द नहीं वरन् सोद्देश्य साधना है।

1-- भरत नाट्य शास्त्र, सम्पादक ~~डा० एच० घोष~~ जी. भट्ट, 19/143, पृ. 80

हिन्दी नाटकों से पूर्व संस्कृत नाटकों की दीर्घ परम्परा का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक नाटककारों -- भास, कालिदास, शुद्रक आदि ने जिस मार्मिकता एवं अद्वितीय प्रतिभा से मानवीय भावनाओं -- स्नेह, करुणा आदि को प्रस्तुत किया तथा नाटकीय कौशल के साथ जिस काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया उसका पश्चाद्वर्ती नाटककारों में प्राय: अभाव है। अरस्तु द्वारा प्रतिपादित विरेचन अर्थात् भावों के उचित शमन एवं परिष्कार और भावों की उदात्तता में सहायक अनेक विवरण संस्कृत नाटकों में उपलब्ध हैं।[1] मानवीय भावनाओं एवं संघर्षों की स्थिति को भी संस्कृत नाटकों में पर्याप्त उभारा गया है। संस्कृत नाटकों में संघर्ष की स्थिति है, परन्तु यह संघर्ष भावनात्मक धरातल पर ही है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल में श्रेय और प्रेय के मध्य एवं भवभूति के उत्तररामचरित में प्रेम और कर्तव्य के मध्य इसकी झलक देखी जा सकती है। भारतीय प्रज्ञा के अनुसार नाटक का लक्ष्य धर्म, अर्थ,काम की सिद्धि द्वारा अनिर्वचनीय आनन्द एवं रसास्वादन करना है। रस की सृष्टि के लिए नाटककारों ने रामायण, महाभारत आदि के प्रचलित कथानकों को आधार बनाया। इसी कारण संस्कृत नाटकों में प्राय: विषय-वैविध्य का अभाव है। रस की सृष्टि के लिए नाटककारों ने नाटक के भावपक्ष की समृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया है। समस्याओं की ओर प्राय: कम ही ध्यान दिया है। 'मृच्छकटिक' और 'मुद्राराक्षस' में सामाजिक वातावरण में राजनैतिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। भाषा की दृष्टि से संस्कृत नाटक पर्याप्त समृद्ध हैं। प्रारम्भ में 'नाटक' की नाटकीयता और भाषा दोनों को समान महत्त्व दिया गया। परन्तु, बाद में नाटकीयता की अपेक्षा भाषा की समृद्धि की ओर अधिक ध्यान देने के कारण नाटकों में नाटकीयता प्राय: कम होती गई एवं भाषा की अलंकृति बढ़ती गई। जिससे नाटक नामक रचनाएँ नाम मात्र को ही नाटक रह गईं। संस्कृत नाटकों में प्राय: शास्त्रीय नियमों का पालन

1-- विस्तार के लिए देखिए ---संस्कृत ड्रामा, इट्स ओरिजन एण्ड डिक्लाइन, शेखर, पृ० 138 ।

नहीं किया गया। पात्रों की भी भरमार है। अमानवीय, अतिमानवीय पात्रों का भी नाटक में प्रयोग किया गया है।[1] 'संस्कृत नाटककारों ने समय और स्थान की एकता पर भी ध्यान नहीं दिया।' संस्कृत नाटकों में दु:खान्त नाटकों का अभाव भी है। नाटककारों ने भयोत्पादक एवं निराशाजनक वातावरण की सृष्टि नहीं की। नाटकों को सुखान्त बनाते हुए नाटककारों ने सौन्दर्य-भावना-सम्पन्न, उदात्त एवं प्रेरणादायक वातावरण की सृष्टि की। एच० डब्ल्यु० वेल्स[2] ने सुखान्त होते हुए भी इन नाटकों की आशावादिता पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। नाटक का प्रारम्भ और अन्त मानव-कल्याण और मोक्ष-प्राप्ति की भावना से समन्वित स्तुति द्वारा होता है, जो आशावादी दृष्टिकोण से परे है ।

नौवीं शताब्दी के पश्चात् नाटककारों का ध्यान भाषा की अलंकृति की ओर अधिक गया। परिणामत: प्रदर्शन-पक्ष की ओर नाटककार का ध्यान कम होता गया। नाटकीयता एवं भाषा दोनों की दृष्टि से समृद्ध नाटकों की परम्परा के ह्रासोन्मुख होने के कुछ कारण हैं। नाटकों का रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों पर प्राय: आधारित होना, नाटककारों का राजाश्रित होना, काव्य और नाटक का एक ही लक्ष्य--- रसानुभूति का होना, काव्य-पक्ष की ओर अधिक ध्यान देना, आदि अनेक कारण नाटकों के ह्रास में सहायक हुए। संस्कृत नाटककारों का राजाश्रय से सम्बन्ध होने के कारण उनकी रचनाएँ भी जन-सामान्य से दूर होती गईं। कालान्तर में जनजीवन के अस्त-व्यस्त (प्राय:) होने, रंगशालाओं के अभाव से भी नाटक-विकास बाधित हुआ। मुगल शासक नाटक को धर्म-विरुद्ध मानते थे। फलत: राजाश्रय के नष्ट होने एवं मुगल शासन के प्रभाव से नाटक को गहरा आघात पहुँचा । पर्दा-प्रथा के जोर पकड़ने के कारण भी इस प्रवृत्ति को धक्का लगा। रंगमंच पर अभिनय करना घृणित समझा जाने लगा । 'नटों की हीनावस्था ने इस अग्नि में ईंधन का काम किया। वे शैलूष जिन्हें भरत

1-- संस्कृत ड्रामा --इट्स ओरिजिन एण्ड डिक्लाइन, आइ० शेखर, पृ० 57 ।

2-- द क्लासिकल ड्रामा आफ इंडिया, वेल्स, पृ० 11 ।

ने सम्मान प्रदान किया, और वत्सराज उदयन और अग्निवर्ण आदि राजाओं ने जिन्हें अपनाया, वे कालान्तर में ज्याजीवी बनते गए। साथ ही लक्षण ग्रन्थों के बन्धन जटिल होने लगे और नियमों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाने लगा। इस नियम-बन्धन ने भी कला-स्वातन्त्र्य को बड़ा भारी धक्का दिया जो मौलिकता के ह्रास का कारण बना।[1] जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण, वैराग्य-भावना, ने भी मनोरंजन एवं आनन्द प्रदान करने वाली इस विधा को नकारा ।

संस्कृत-नाटकों को ह्रासोन्मुख, नाटकीयता-शून्य बनाने में जिन परिस्थितियों ने योग दिया वेही परिस्थितियां हिन्दी-नाटकों के विकास में बाधक सिद्ध हुईं। संस्कृत नाटकों की यह ह्रासोन्मुख परम्परा एवं विभिन्न धार्मिक लीलाएँ हिन्दी नाटक साहित्य की पथप्रदर्शिका बनी। आरम्भिक हिन्दी नाटक साहित्य पर इनका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। डा॰ ओझा ने हिन्दी का प्रथम नाटक गय सुकुमार रास को माना है।[2] तथा उपदेश रसायन रास, समरारास, संदेशरासक को नाटक मानते हुए हिन्दी नाटक की प्राचीनता सिद्ध की है । हरिवंश कोछड़ ने डा॰ ओझा द्वारा प्रतिपादित मत को नकारते हुए यह सिद्ध किया कि अपभ्रंश में काव्यादि के ~~उ~~ उपलब्ध होने पर भी कोई नाटक उपलब्ध नहीं हुआ।[3] उनके शब्दों में, "सन्देश रासक के कर्ता ने अपने ग्रन्थ को मध्य वर्ग के सम्मुख बारबार पढ़ने का निर्देश किया है। ग्रन्थ की समाप्ति पर भी लेखक ने इसके पढ़ने और सुनने का निर्देश किया है। 'उपदेश रसायनरास' में भी कवि ने कृति के जल को कर्णामृत से पान करने वालों के लिए अजरामरत्व की मंगल कामना की है। 'समरारास' में भी इसके पढ़ने की ओर संकेत किया गया है।[4] वे आगे

1-- नाट्य-दर्शन, शान्ति गोपाल, पुरोहित, पृ॰ 147 ।

2-- हिन्दी नाटक; उद्भव और विकास, डा॰ दशरथ ओझा, पृ॰ 84, पांचवां संस्करण

3-- सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, सं॰ डा॰ नगेन्द्र, पृ॰ 650 ।

4-- वही, पृ॰ 650 ।

कहते हैं, " क्रमश: इन रासों में श्रव्यत्व के स्थान पर दृश्यत्व का भी प्रचार होने लगा और इनके रूपक तत्व उत्तरोत्तर अधिक स्पष्ट होने लगे ।"[1] इस प्रकार ये कृतियाँ नाटकीयता के होते हुए भी नाटक कहलाए जाने योग्य नहीं मानी गईं।

हिन्दी के मध्यकालीन नाटकों के सम्मुख नाटक-परम्परा के नाम पर नाटकीयता-शून्य संस्कृत नाटक परम्परा, लोक-नाट्य, एवं अपभ्रंश की नाटकीयता का आभास देती पाठ्य कृतियाँ थीं। यही कारण है कि मध्यकाल में नाटक नामधारी रचनाएँ तो उपलब्ध हैं पर वे नाटक नहीं हैं ।

(ख) <u>हिन्दी के मध्यकालीन नाटक</u>

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल, जिसे भक्तिकाल एवं रीतिकाल में विभाजित किया गया है और जो 14वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक की विस्तृत अवधि में फैला हुआ है, में जहाँ काव्यकला का विकास हुआ वहाँ नाट्य-कला लोक नाट्यों से उन्मुक्त होकर विकसित हुई है। मध्यकाल में हिन्दी नाटक लोक-नाट्य के रूप में ही जीवित रहा। अनेक विद्वानों ने राम, कृष्ण आदि से सम्बन्धित लीलाओं को नाटक मानने में असहमति प्रकट की है, तथा प्राणचन्द चौहान कृत 'रामायण महानाटक', हृदयराम भल्ला कृत 'हनुमन्नाटक', रघुराम नागर कृत 'सभासार नाटक', ब्रजवासी दास का 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि नाटकों का विवरण देते हुए, इन्हें नाटकीय तत्वों से हीन या अधिक से अधिक 'पद्य नाटक' या 'छन्दोबद्ध संवाद' कहा है।[2] कुछ विद्वानों ने मध्यकालीन साहित्य को

1-- सेठ गोविन्द दास अभिनन्दन ग्रन्थ, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० 659 ।

2--1 हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वेदपाल खन्ना, पृ० 23, प्रथम संस्करण ।

2. हिन्दी साहित्य का मध्यकाल--डा० नित्यानन्द शर्मा, पृ० 327, प्रथम सं० ।

3. भारतीय नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव--डा० श्रीपति शर्मा, पृ० 56 ।

(संतत.....

नाटक की दृष्टि में अभाव-ग्रस्त नहीं माना।[1] किसी-किसी विद्वान्[2] ने तो अति व्यापक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए 'नाटक' नामधारी समस्त कृतियों को नाटक सिद्ध करने का असम्भव कार्य किया।

वस्तुत: अभिव्यक्ति कभी अवरुद्ध नहीं होती, परिस्थिति के अनुसार रूप बदलती है। मध्यकाल में राजनैतिक विरोध प्राप्त होने के कारण नाटक को शासन की ओर से संरक्षण न मिला। रंगशालाएँ प्राय: नष्ट कर दी गईं, सामाजिकों ने नटों को सम्मान नहीं दिया। परिणामत: सामाजिकों की इच्छानुरूप, धार्मिक लीलाओं के रूप में, नाट्य-प्रदर्शन होने लगे। विभिन्न नाटक मण्डलियाँ स्थान-स्थान पर लोक-नाटकों को प्रदर्शित करने लगीं। बंगाल में 'जात्रा' (यात्रा), मिथिला में 'कीर्तनियाँ', आसाम में 'अंकिया', मालवा और राजपूताना में 'माच', उत्तर प्रदेश में 'नौटंकी', गुजरात में 'भवाई' तथा स्वांग, तमाशा आदि के रूप में 'नाटकों' की जीवन्त परम्परा मध्यकाल में उपलब्ध होती है। इन के अतिरिक्त कुछ ऐसे नाटक भी उपलब्ध हैं जिन्हें विद्वानों ने साहित्यिक नाटकों[3] की संज्ञा दी है। कुछ विद्वानों ने इन्हें प्राय: नाम मात्र को नाटक माना है।

..... 4. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० 7, दूसरा संस्करण +

5. आधुनिक हिन्दी साहित्य, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ० 225 +

6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 453 +

1-- 1. भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, डा० गोपीनाथ तिवारी, पृ० (ट) भूमिका +

2. हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह +

3. हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाढ्य, ~~डा० जगदीश माथुर~~ +

2-- 1. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा +

2. हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा +

3. हिन्दी साहित्य को पंजाबी की देन, भाषा विभाग, पृ० 96-98 +

3-- 1. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० ओझा, पृ० 367 +

2. हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा० कुँवर चन्द्र प्रकाश, पृ० 154 +

(सतत ....

विभिन्न विद्वानों[1] के शोध के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में नाटक-साहित्य के रूप में जो कृतियाँ प्रकाश में आई हैं, उनकी सूची इस प्रकार है :--

मध्यकालीन नाटक साहित्य

रचना	रचनाकार	रचनाकाल
पारिजात-हरण	उमापति उपाध्याय	सन् 1325 से पूर्व ×
आनन्द विजय नाटिका	रामदास	सन् 1333
गोरक्ष विजय	विद्यापति	सन् 1450
रुक्मिणी-परिणय	विद्यापति	सन् 1450
पत्नी-प्रसाद	शंकरदेव	1449-1568 के मध्य
रुक्मिणी-हरण	,,	,,
कालियदमन	,,	,,
केलि गोपाल नाट	,,	,,
पारिजात हरण	,,	,,
रामविजय नाट	,,	,,

1-- 1. हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाढ्य ।
2. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा ।
3. हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा ।
4. प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, सं० माताप्रसाद गुप्त ।
5. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय, श्यामसुन्दर दास ।
6. हमारी नाट्य परम्परा, श्री कृष्णदास ।
7. हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा० कुँवर चन्द्र प्रकाश ।
8. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० 4 ।
9. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वेदपाल खन्ना, पृ० 20-22 ।

× द्रष्टव्य - डॉ० तपेश्वर नाथ का लेख-(i) सम्मेलन पत्रिका (प्रयाग) - भाग-५८; संख्या-1, पृ० ३६
(ii) परिषद पत्रिका (पटना) - वर्ष-11, अंक-4, पृ० ६८
—तदनुसार पारिजातहरण-कार उमापति १८वीं सदी में हुए ।

गोविन्द हुलास नाटक	नायक[1]	15वीं-16वीं शताब्दी
परशुराम विजय व्यायोग	कपिलेन्द्र देव	सन् 1507
अजामिल उपाख्यान	द्विज भूषण	16वीं शताब्दी
विद्याविलाप	अज्ञात	अज्ञात (सन् 1533 में अभिनीत)
अर्जुन भंजन यात्रा	माधव देव	सन् 1538
चोर धरा झुमुरा	,,	,,
भूमि लुटिया झुमुरा	,,	,,
पिम्परा गुचुरा झुमुरा	,,	,,
भोजन विहार झुमुरा	,, (?) [2]	,,
रास झुमुरा	,, (?)	,,
भूषण हरण झुमुरा	,, (?)	,,
कोटोर खेला झुमुरा	,, (?)	,,

1-- गोविन्द हुलास नाटक का रचयिता कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह ने नायक एवं जीव आदि के स्थान पर रूप गोस्वामी अथवा जीवगोस्वामी को माना है। उनके शब्दों में, "यदि गोविन्द हुलास नाटक स्वयं रूप गोस्वामी की रचना है तो यह हिन्दी की पूर्ण मौलिक कृति सिद्ध होती है और हिन्दी के महान लेखकों की सूची में एक बड़े गौरवशाली नाम की वृद्धि होती है। यदि इसके रचयिता जीव गोस्वामी जी हैं तो इसे अधिक से अधिक रूपान्तर भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसकी रचना विदग्धमाधव के आधार पर हुई है।" (हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, पृ० 174) परन्तु प्रभुदयाल मीतल ने (गोपाल) नायक को इसका रचयिता सिद्ध करते हुए लिखा है, "यह प्रसन्नता की बात है कि जिस नायक नाम के भक्त कवि और गायक की कुछ स्फुट रचनाएँ ही अब तक प्राप्त थीं, उसकी एक सर्वांगपूर्ण नाट्य रचना गोविन्दहुलास के रूप में उपलब्ध हो गई है। इसका श्रेय कुंवर चन्द्रप्रकाश जी को है, भले ही वह स्वयं अभी तक इसके सम्बन्ध में अंधेरे में ही हैं।" (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 69, संवत् 2021, अंक 4, पृ० 111 लेख--गोविन्दहुलास नाटक का रचयिता)

2-- इनके रचनाकार अज्ञात हैं। भ्रमवश ये कृतियाँ माधवदेव के नाम पर प्रचलित हैं। विस्तार के लिए द्रष्टव्य -- प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, सं० माता प्रसाद गुप्त ।

जन्म यात्रा	गोपाल दास आत्ता	सन् 1533-1608
नन्दोत्सव	,,	,,
गोपी उद्धव संवाद	,,	,,
धर्म विजय	भूदेव शुक्ल	सन् 1568
स्याम सगाई	नन्ददास	1533-1583 ई0
गोवर्धन लीला	,,	,,
नृसिंह यात्रा	दैत्यारि ठाकुर	,,
स्यमन्तहरण	,,	,,
चैतना चन्द्रोदय	कवि कर्णपूर	1572 ई0
कंस वध	रामचरण ठाकुर	1596 ई0
रामायण महानाटक	प्राणचन्द चौहान	1610 ई0
अमृतोदय	गोकुल नाथ	सन् 1615 ई0
हनुमन्नाटक	हृदयराम भल्ला	1623 ई0
हर गौरी विवाह	जगज्ज्योतिर्मल्य	1633 ई0 से पूर्व
कुंज बिहारी नाटक	,,	,,
समयसार नाटक	बनारसी दास	सन् 1636
प्रबोध चन्द्रोदय	जसवन्त सिंह	सन् 1643
दान लीला	ध्रुवदास	सन् 1641 के पश्चात्
मान लीला (आदि 42 लीलाएं)		
पारिजात हरण	जगत् प्रकाशमल्ल	1656
प्रभावती हरण	,,	1656
मलयगंधिनी	,,	1663
प्रबोध चन्द्रोदय	अनाथदास	1669
ऊषाहरण	जगतज्योतिर्मल्ल	1670
नलीयनाटक	,,	1670
मदन चरित	,,	1670

शकुन्तला नाटक	नेवाज	सन् 1670
श्री दामा चरित	कवि सामराज दीक्षित	सन् 1681
राधावंशीधर विलास	शाह जी	सन् 1684
करुणाभरण	कृष्ण जीवन लच्छीराम	सन् 1686
✓विचित्र नाटक	गुरु गोबिन्द सिंह	सन् 1689
हास्यार्णव	सोमनाथ (शशीनाथ)	सन् 1689-99
सभासार नाटक	रघुराम नागर	सन् 1700
प्रबोध चन्द्रोदय	जैतसिंह	सन् 1705
गौने वारी लीला	चाचा हित वृन्दावनदास	1708 के पश्चात्
चितेरिन लीला	,,	,,
सुनारिन लीला	,,	,,
मनिहारी लीला	,,	,,
मालिन लीला	,,	,,
बिसातिन लीला	,,	,,
पटविन लीला	,,	,,
रँगरेजिन लीला	,,	,,
तमोलिन लीला	,,	,,
नाइन लीला	,,	,,
वैधनि लीला	,,	,,
मैनावरी लीला	,,	,,
नटीवन लीला	,,	,,
ढाढिन लीला	,,	,,
वीणावारी लीला	,,	,,
गंधिन लीला	,,	,,
ब्रह्मचारी लीला	,,	,,
द्वितीय जोगी लीला	,,	,,
तृतीय जोगी लीला	,,	,,

चतुर्थ जोगी लीला	चाचा वृन्दावनदास	1708 के पश्चात्
पंचम जोगी लीला	,,	,,
षष्ठ जोगी लीला	,,	,,
मौनी जोगी लीला	,,	,,
बनजारी लीला	,,	,,
साँवरी सहेली लीला	,,	,,
नेही साँवरी लीला	,,	,,
नारद लीला	,,	,,
ब्रह्मा लीला	,,	,,
महादेव लीला	,,	,,
शिव जोगी लीला	,,	,,
जोगीश्वर लीला	,,	,,
श्याम सहचरी साँझ लीला	,,	,,
राधादासी साँझी लीला	,,	,,
सुन्दर और श्याम लीला	,,	,,
साँवरी साथिन लीला	,,	,,
हित सँधि साँझी लीला	,,	,,
श्री प्रियाजी की रूप भुराई लीला	,,	,,
श्री प्रिय रूप गर्व लीला	,,	,,
होरी विवाह लीला	,,	,,
विद्या परिणय	अज्ञात	18वीं शताब्दी
जीवानन्द	अज्ञात	,,
माधवानल	राजकवि केशव	सन् 1713 ई०
ब्रजविलास	ब्रजवासी दास	अनिश्चित
74 लीलाएं	,,	,,
√ देवमाया-प्रपंच नाटक	देवकवि	सन् 1755 के लगभग
गंगा नाटक	कुशलमिश्र	सन् 1757

प्रबोध चन्द्रोदय	ब्रजवासी दास	सन् 1760
आनन्द सागर	पूरनप्रताप खत्री	1767
माधव विनोद	सोमनाथ (शशीनाथ)	1752-1800
श्री कृष्ण केलिमाल	नन्दीपति	1776-1808
शकुन्तला नाटक	धौंकल राम	सन् 1799
प्रद्युम्न विजय	गणेश कवि	सन् 1800 के पश्चात्
प्रबोध चन्द्रोदय	सुरतिमिश्र	सन् 1929
राम करुणाकर	उदयकवि	सन् 1840 से पूर्व
हनुमन्नाटक	,,	,,
आनन्द रघुनन्दन	विश्वनाथ	सन् 1843[1]
परमप्रबोध विधु	रघुराज सिंह	1847 ई० से पूर्व

(ग) विषयानुसार वर्गीकरण

मध्यकालीन इन नाटकों के विषय प्राय: राम और कृष्ण के जीवन चरित से सम्बन्धित हैं। 'राम' से भी अधिक 'कृष्ण' से सम्बन्धित प्रसंग एवं घटनाएँ नाटकों का आधार बनीं। इसका कारण संभवत: कृष्ण द्वारा रास

1-- आनन्द रघुनन्दन का रचनाकाल भी विवादग्रस्त है। डा० दशरथ ओझा ने इसका रचनाकाल 19वीं शताब्दी का अन्त माना है । (हिन्दी नाटक उद्भव और विकास , पृ० 146) डा० शशीप्रभा शास्त्री ने इसका रचनाकाल 1661-1740 के मध्य स्वीकार किया है। (हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत, पृ० 317)

रचना है, जिसमें नाटककारों की कल्पना को पर्याप्त अवकाश मिल जाता है। राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप परिस्थितियों के अनुरूप लोक की रुचि का वाहक बनने में असमर्थ-सा था। राम और कृष्ण के अतिरिक्त कुछ प्रतीक, दर्शन-परक, वेदान्त-विषयक एवं अन्य पौराणिक घटनाओं पर यथा -- गंगावतरण, नृसिंह, शिव-पार्वती, प्रद्युम्न आदि प्रसंगों पर आधारित नाटक भी उपलब्ध होते हैं। इन नाटकों का परिचय विषयानुसार प्रस्तुत है :--

1: रामकथा-मूलक ।

2: कृष्ण कथा-मूलक ।

3: विविध ।

1: रामकथा-मूलक नाटक साहित्य

दशरथ पुत्र राम की कथा 'रामायण' में ही नहीं वरन् भागवत पुराण, विष्णु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, वायु पुराण एवं अग्नि पुराण आदि में भी वर्णित है ।[1] शंकरदेव कृत 'रामविजय नाटक' इस परम्परा का प्रथम चरण है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में वर्णित घटना परशुराम पर राम की विजय इस नाटक का आधार है। इसके अतिरिक्त अग्निपुराण के पाँचवें अध्याय से भी सामग्री ग्रहण की गई है।[2] इस नाटक में विश्वामित्र का राक्षसों से क्षुब्ध होकर राम-लक्ष्मण को ले जाना, शक्ति-प्रदर्शन, सीता-स्वयंवर, परशुराम का क्रोध-शमन आदि के साथ राम-सीता का सौन्दर्य एवं पूर्व राग भी वर्णित है। डा० ओझा के शब्दों में, "यह नाटक ~~अभिनय~~ कुंजविहार के राजा और दीवान के आग्रह पर अभिनय के लिए लिखा गया और अनेक बार अभिनीत हुआ।"[3]

1-- पुराण-विषयानुक्रमणिका, डा० राजबली पांडे, पृ० 350 ।

2-- प्राचीन भाषा, नाटक संग्रह, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० 233 ।

3-- हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, पृ० 461 ।

शंकर देव के उपरान्त सन् 1610 ई0 में[1] प्राणचन्द चौहान ने रामायण महानाटक की रचना की। इसके कथानक का आधार 'बाल्मीकि रामायण' एवं तुलसी कृत 'रामचरितमानस' है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि रामचरितमानस को अभिनीत होते देखकर प्राणचन्द चौहान को प्रेरणा मिली और उन्होंने इस नाटक की रचना की। नाटककार ने चूलिका चमत्कार, नेपथ्य, स्वगत-कथन का भी प्रयोग किया है। अन्तर्द्वन्द्व का भी चित्रण है।[3] डा0 देवर्षि सनाढ्य के अनुसार, "इस नाटक में राम का सम्पूर्ण चरित दोहा-चौपाइयों में लिखा गया है, नाटकों के नियमों का पालन इसमें नहीं हुआ है, केवल एक नाटकीय तत्व संवाद इस में प्राप्त होता है।"[4]

प्रस्तुत नाटक में रामकथा वर्णित है। कवि का लक्ष्य रामकथा का प्रदर्शन नहीं था। रामकथा के सुनने-सुनाने की महत्ता प्रकट की गई है। यथा --

रामचरित जो कहै बखाना । बाढ़ै धर्म पाप होए हाना ।।
अरु जो सुनै श्रवन चित लाई । सो जमपुर के निकट न जाई ।।[5]

कवि के इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि कवि का लक्ष्य 'नाटक' लिखना नहीं था, कथा-कहना, राम का चरित बखान करना था।

रामकथा से सम्बन्धित 'हनुमन्नाटक' (?) इस परम्परा की अगली कड़ी है। इसके रचयिता हृदयराम भल्ला हैं। संस्कृत हनुमन्नाटक से प्रभावित होने के कारण इस कृति को हनुमन्नाटकथा 'हनुमान नाटक' कहा जाने लगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डा0 ब्रजरत्न दास ने इसे संस्कृत 'हनुमन्नाटक' पर आधारित रचना माना है, जबकि डा0 दशरथ ओझा एवं डा0 देवेन्द्र कुमार ने

1-- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्याम सुन्दर दास, पृ0 316 +

2-- भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य, डा0 गोपी नाथ तिवारी, पृ0 15 +

3-- हिन्दी साहित्य कोश-2, सं0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 496 +

4-- हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाढ्य, पृ0 102 +

संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक, गंगाराम गर्ग, पृ0 180 +

5-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा0 ओझा, पृ0 120, पाँचवाँ संस्करण से उद्धृत +

इसे मौलिक रचना माना है। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि संस्कृत नाटक के कुछ अंशों से प्रस्तुत कृति में साम्य है, साथ ही लेखक ने अपनी कल्पना एवं अभिव्यक्ति द्वारा इसे नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। इस कृति को नाटक मानने का विशेष आग्रह डा० दशरथ ओझा, डा० चन्द्रशेखर आदि ने किया है। वस्तुत: 'हनुमाननाटक' (रामगीत) नाटक नहीं है। लेखक ने 'नाटक' के लिए इस कृति का निर्माण नहीं किया। बारम्बार कथा कहने और सुनने का आग्रह प्रकट किया गया है। इसका विस्तृत विवेचन आगामी सम्बन्धित अध्याय में किया जाएगा।

हनुमन्नाटक (रामगीत) के उपरान्त उदयकवि कृत 'राम करुणाकर' एवं 'हनुमान नाटक' नामक दो कृतियाँ इस नाटक परम्परा की कड़ियाँ मानी जाती हैं। डा० गोपीनाथ तिवारी के शब्दों में, " इन लघु काव्य नाटकों का निर्माण करते समय कथा तो मानस से ली गई है और शैली नन्ददास से। प्रत्येक छन्द के अन्त में एक टेक है। 'रामकरुणाकर' की टेक है, " राम करुणा करें" और 'हनुमान नाटक' की टेक है, 'रजाइस राम की'। शैली को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि एक या कई मनुष्य इसे गाते थे और टेक को कई कण्ठ समवेत स्वर में पढ़ते थे। उदयकवि ने रामकरुणाकर एवं हनुमाननाटक को नाटक की संज्ञा दी है जबकि 'अहिरावन लीला' और 'जौगलीला' को लीला कहा है। शैली की दृष्टि से चारों में कोई भेद नहीं, -- -- १ -- -- -- इन चारों में अंकों में कोई भी विभाजित नहीं है क्योंकि प्रत्येक लघुरूपक है। -- -- १ -- -- दोनों काव्य नाटकों पर तुलसी का बड़ा प्रभाव मिलता है और अनेक उक्तियाँ तुलसी की ही प्राप्त होती हैं।"[1] कथा-वाचकों द्वारा किया गया 'कथा-वाचन' यदि 'नाटक' की संज्ञा का अधिकारी हो सकता है तो इन नाटकों को नाटक मान सकते हैं, यद्यपि हिन्दी-जगत् के लिए इतना व्यापक दृष्टिकोण अपनाना संभव नहीं।

1-- हिन्दी साहित्य कोश-2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 472।

विश्वनाथ कृत 'आनन्द रघुनन्दन' मध्यकालीन रामकथाश्रित नाटक-परम्परा की अगली कड़ी है। इस नाटक में ब्रजभाषा के साथ ही अंग्रेज़ी, फारसी, पैशाची, संस्कृत आदि का भी प्रयोग किया गया है। भाषा के इस प्रयोग को स्वाभाविक एवं महत्वपूर्ण घोषित करते हुए डा० दशरथ ओझा का कथन है, "यदि अयोध्यावासी राम द्राविड़ प्रदेश में भी जाकर द्रविड़ भाषा न सुन पाते तो क्या नाटक में अस्वाभाविकता न आती ? -- -- -- -- दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण यह बताया जा सकता है कि दूरदर्शी भविष्य-द्रष्टा कवि नाटक में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं को आश्रय देकर उस दिन को सन्निकट लाना चाहता था जिस दिन हिन्दी में समस्त भारतीय अपनी-अपनी भाषा का कहीं-कहीं दर्शन पाकर इसे अपनाने में उत्साह दिखाएंगे।"[1] ब्रजरत्न दास के शब्दों में, "रामायण की सारी कथा को लेकर उसे एक नाटक के वस्तु रूप में सुगठित करने का यह प्रयास सफल नहीं हो सका है; केवल कथोपकथन में कुछ बातें अति संक्षेप में दी गई हैं। कथावस्तु संगठन के अंग-प्रत्यंग सभी इसी में विलीन हो गए हैं। पात्रों की संख्या भी सैकड़ों में है अतः चरित्र-चित्रण प्रायः नहीं के समान है। वास्तविक नामों के इतने भयंकर पर्याय दिये गए हैं कि उन्हें पढ़ कर या सुनकर बरबस हँसी-सी आ जाती है। -- -- -- यह रचना नाट्यकला की दृष्टि से किसी काम की नहीं है और न इसका अभिनय ही हो सकता है। इसका महत्व केवल इसकी प्राचीनता मात्र है।"[2] इस नाटक में राज तिलक के अवसर पर अप्सराएँ राम-सीता के सम्मुख नाच नाच कर नायिका-भेद वर्णित करती हैं। आचार्य शुक्ल ने इसे हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक माना है।[3]

1-- नाट्य निबन्ध, डा० दशरथ ओझा, पृ० 5-6 ।

2-- हिन्दी नाट्य साहित्य, ब्रजरत्न दास, पृ० 50 ।

3-- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृ० 453, आठवां संस्करण ।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य हरिराम कृत 'जानकी रामचरित नाटक' एवं लक्ष्मण शरण 'मधुकर' कृत 'रामलीला विहार' नाटक उपलब्ध होते हैं।[1] दोनों नाटकों में सीता-स्वयंवर की कथा को आधार बनाया गया है। भाषा में गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग है। शैली नाटकीय है ।[2]

रामकथा से सम्बन्धित इन नाटकों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि रामायण महानाटक, हनुमन्नाटक (रामगीत), रामकरुणाकर नाटक और हनुमान नाटक आदि को नाटक नहीं कहा जा सकता। कृतिकारों ने इन कृतियों का निर्माण राम-कथा सुनने-सुनाने के लिए किया है; न कि राम-कथा के प्रदर्शन के लिए । यद्यपि इनके कथ्य में नाटकीयता उपलब्ध है तथापि इनकी रचना 'नाटक' के लिए नहीं हुई । 'कथा-वाचन' को 'नाटक' नहीं कहा जा सकता। नाटक 'प्रतिसाक्षात्कार कल्प' है, जहाँ घटनाएँ सजीव रूप में सामने आती हैं; वर्णित होकर नहीं । वर्णित घटनाओं का नाम ही तो कथा-साहित्य है। नाटक, क्योंकि दृष्टि-सापेक्ष है, इसलिए उनका रचयिता यदि प्रदर्शन की बात नहीं करता तो कथा-श्रवण की भी समीचीन नहीं। कथा कहना, सुनना नाटक का अंग नहीं है ।

(2) कृष्ण-कथामूलक नाटक साहित्य

श्रीकृष्ण विष्णु के छठे अवतार माने जाते हैं । इनकी कथा ब्रह्म, हरिवंश पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण एवं मत्स्य पुराण आदि में प्राप्त है। मध्यकालीन नाटक-साहित्य में कृष्णकथाश्रित

1-- 1. हिन्दी नाट्य साहित्य, ब्रजरत्न दास, पृ० 10-11 ।

2. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, सं० श्यामसुन्दर दास, पृ० 343

2-- 1. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वेदपाल खन्ना, पृ० 22 ।

2. हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाढ्य, पृ० 104 ।

नाटकों की संख्या सर्वाधिक है। सम्भवत: 'राम' से अधिक कृष्ण जनरुचि के वाहक बनने में सहज समर्थ थे। राम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप को अमर्यादित करने में जहाँ नाटककारों ने संकोच प्रकट किया वहाँ कृष्ण के प्रेमी रूप एवं रास-लीला आदि ने नाटककारों की कल्पना को पर्याप्त अवकाश प्रदान किया। कृष्ण का रूप, भक्ति की आड़ लेकर, अमर्यादित करने में नाटककारों ने तनिक भी संकोच नहीं किया।

उमापति उपाध्याय कृत 'पारिजातहरण' प्रथम नाटक है। इस नाटक में कृष्ण के सफल प्रेमी रूप के साथ उनकी वीरता एवं पराक्रम का प्रदर्शन किया गया है। नाटक-रचना प्रदर्शन के उद्देश्य से की गई है। नट-नटी, नान्दी एवं भरतवाक्य की भी योजना की गई है।[1]

सन् 1333 में कविवर रामदास ने 'आनन्द विजय नाटिका' की रचना की।[2] अपने हृदय में प्रेम उत्पन्न होने के उपरान्त माधव अपने मित्र आनन्द कंद की सहायता से राधा के हृदय में प्रेम उत्पन्न करने में सफल होते हैं, यही इस नाटक का आधार है।

इसके उपरान्त शंकरदेव ने 'कृष्ण के दिव्य रूप के आकर्षण में बंधी ब्राह्मण-वधुओं तथा उन्हें रोकने में असमर्थ ब्राह्मणों का भी कृष्ण की आराधना करने' की घटना को लेकर 'पत्नीप्रसाद', विघ्न-बाधाओं को पार करके कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की प्राप्ति के आधार पर 'रुक्मिणी-हरण', कालिय-नाग के नाश एवं दावाग्नि-पान को लेकर 'कालीदमन', कृष्ण की रास लीला को आधार बनाकर 'केलिगोपाल नाट' एवं सत्यभामा के मान को दूर करने के लिए ~~कृष्ण~~ कृष्ण का पारिजात वृक्ष प्राप्त करने के संघर्ष को लेकर 'पारिजात हरण'

1-- प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० 1-2 (भूमिकोपरान्त)।

2-- हिन्दी नाटक, कोश, डा० दशरथ ओझा, पृ० 55 ।

की रचना की।[1] डा० ओझा ने इनके अभिनीत होने का संकेत भी किया है।[2]

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के मध्य 'गोविन्द हुलास नाटक' प्राप्त होता है। यह संस्कृत के 'विदग्धमाधव' पर आधारित है जिसे प्रभुदयाल मीतल ने (गोपाल) 'नायक' नामक लेखक की रचना स्वीकारी है। कृष्ण एवं राधा की लीला पर आधारित यह नाटक, डा० कुंवर चन्द्र प्रकाश के शब्दों में, "नाट्यशास्त्र की दृष्टि से सर्वांग सम्पन्न है। यह गौड़ीय आचार्यों के रस शास्त्र और नाट्यशास्त्र दोनों के सिद्धान्तों का समन्वित रूप हिन्दी में प्रस्तुत करता है।[3]

इसके उपरान्त माधव देव कृत सात नाटक उपलब्ध होते हैं। सभी नाटकों का लक्ष्य कृष्ण-लीलाओं का प्रदर्शन है। 'पिम्परा गुचुरा झुमुरा' नवनीत चुराते हुए कृष्ण, गोपियों की शिकायत, यशोदा का क्रोध, सखाओं का कृष्ण की महिमा बताना एवं यशोदा का विरोध करना आदि पर आधारित है। 'अर्जुन-भंजन' में कृष्ण बाल-लीला के साथ ही दिव्य रूप की झांकी प्रस्तुत की गई है। 'चोरधरा झुमुरा' में नवनीत का लालच देकर गोपियाँ कृष्ण से नृत्य कराती हैं। 'भूमि लुटिया झुमुरा' का मूल स्रोत विल्वमंगल का एक श्लोक है जिसमें कृष्ण माता यशोदा से पूछते हैं : मेरा नवनीत किसने खा लिया ? मेरा दूध किसने पी लिया ?? मेरी मुरली किसने चुरा ली ??? इतना कह कर भूमि पर लोटने वाले बाल कृष्ण को कवि नमस्कार करता है। इसी भाव को लेकर माधवदेव ने इस नाटक को प्रस्तुत किया। 'भोजन विहार झुमुरा' एवं

1-- विस्तार के लिए देखिये -- प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० 38 से 120; 131 से 230 तक।

2-- हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, पृ० 468।

3-- हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा० चन्द्रप्रकाश, पृ० 175।

'ब्रज मोहन फुमुरा' में भी कृष्ण की बाल-लीलाओं का प्रदर्शन किया गया है। 'भूषण-हरण फुमुरा' में गोपी द्वारा कृष्ण के आभूषण उतारने एवं यशोदा को देने एवं कृष्ण द्वारा यशोदा को काल्पनिक कथा सुनाने का अत्यन्त आकर्षक वर्णन है। 'रास फुमुरा' में कृष्ण की रास-लीला एवं 'कोटीर खेला फुमुरा' में कृष्ण द्वारा गोपियों के नवनीत पर अधिकार जमाने एवं नृत्य करने की घटना है।[1] सभी नाटक सहज ही अभिनेय हैं। प्रदर्शन के उद्देश्य से ही इनका सृजन किया गया है।

गोपाल आता कृत 'जन्मयात्रा', 'नन्दोत्सव' एवं 'गोपी-उद्धव संवाद' इस परम्परा की अगली कड़ियाँ हैं। 'जन्म यात्रा' कृष्ण-जन्म, 'नन्दोत्सव' 'नन्द के घर कृष्ण के जातकर्म संस्कार' आदि पर आधारित है। 'गोपी-उद्धव संवाद' में विरह-व्याकुल गोपियों का उद्धव से वार्तालाप एवं उद्धव का उनकी व्यथा से प्रभावित होना कथा को आधार प्रदान करता है।[2] प्रेम-जनित वियोग-व्यथा का मार्मिक चित्रण इस नाटक में उपलब्ध है।

नन्ददास कृत 'गोवर्धन लीला' एवं 'स्याम-सगाई' नामक दो नाटक उपलब्ध होते हैं। डा॰ ओझा ने दोनों को नाटक माना है।[3] मध्यकाल में कृष्ण की विविध लीलाओं का प्रदर्शन होता था। अतः इनका प्रदर्शन होना भी असम्भव नहीं है। सूत्रधार द्वारा सामाजिकों का ध्यान आकर्षित करवाना भरत वाक्य एवं संवादों द्वारा, हाव-भावों के प्रदर्शन द्वारा कृष्ण-लीला प्रस्तुत करने के कारण इन्हें दृश्य काव्य मानना अनुचित नहीं। दैत्यारि ठाकुर कृत

1-- विस्तार के लिए देखिए -- प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, माता प्रसाद गुप्त, पृ॰ 269-270 ।

2-- वही, पृ॰ 423-484 ।

3-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा॰ दशरथ ओझा, पृ॰ 91 से 94 तक ।

'स्यमन्त हरण' नाटक में श्री कृष्ण द्वारा स्यमन्त मणि को पाने एवं सत्राजित द्वारा कृष्ण को मिथ्या कलंक लगाने तथा कृष्ण द्वारा स्यमन्त मणि सत्राजित को वापिस करने, सत्राजित के स्वयं को अपमानित अनुभव करने एवं पश्चाताप स्वरूप अपनी कन्या सत्यभामा कृष्ण को सौंपने, दहेज स्वरूप स्यमन्त-मणि आदि प्रदान करने की कथा है। इसकी रचना भी नाटकीय शैली में की गई है ।[1]

रामचरण ठाकुर कृत 'कंसवध' इस परम्परा की अगली कड़ी है, जिसकी रचना सन् 1596 में की गई। इस नाटक में कृष्ण का कुब्जा-प्रेम से प्रभावित हो, उसका कूबड़ निकालना, विभिन्न राक्षसों से कृष्ण-बलराम का युद्ध एवं कंस को मारकर उग्रसेन को राज-सिंहासनासीन करना, कृष्णका सुदामा माली का मनोरथ पूरा करना, धनुषयज्ञ शाला में धनुष पर प्रत्यंचा लगाकर लीला करना आदि कथा-सूत्र प्राप्त होते हैं। इस कथा का आधार भागवत दशमस्कन्ध है ।[2]

सन् 1633 में जाज्ज्योतिर्मल्ल कृत 'कुंजबिहारी नाटक'[3] में कुंज में विहार करने वाले कृष्ण की लीलाओं का प्रदर्शन है ।

ध्रुवदास ने दान-लीला, मान-लीला आदि कृष्ण सम्बन्धित 42 लीलाओं का प्रणयन किया। वृन्दावन दास ने 40 लीलाओं ~~का प्रणयन किया। वृन्दावन दास ने~~ एवं ब्रजवासी दास ने 74 लीलाओं की 'ब्रजविलास' नाम से रचना की। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सभी लीलाएँ कृष्ण के विभिन्न रूपों एवं क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। जिनका अभिनय मथुरा, वृन्दावन

1-- प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, माता प्रसाद गुप्त, पृ० 523-546 ।

2-- वही, पृ० 391-395 ।

3-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 359 ।

में अक्सर होता था। इन लीलाओं का रचनाकाल 17वीं -18वीं शताब्दी है। इसी अवधि में शाह जी कृत राधा वंशीधर विलास प्राप्त होता है। इस नाटक में राधा रूठ कर सखियों सहित कुंज में चली जाती है। सिद्ध द्वारा बाँसुरी बजाने का निर्देश पाकर कृष्ण बाँसुरी बजाकर राधा का मान मिटाने में सफल होते हैं।[1]

कृष्ण जीवन लछीराम कृत 'करुणाभरण' नाटक की रचना भी इसी समय हुई। इस नाटक में राधा, गोप, गोपियों और यशोदा का कृष्ण से मिलन वर्णित है।[2] डा॰ देवर्षि सनाढ्य के अनुसार, "समस्त काव्य पद्य में है, संवाद तथा घटनाएं प्रबन्ध काव्य शैली में दिखाई गई है।"[3] डा॰ गोपीनाथ तिवारी के शब्दों में, "इस काव्य-नाटक का कथानक अत्यन्त प्रौढ़ एवं शृंखलित है। पात्र मनोवैज्ञानिक भूमि पर खड़े हैं और अन्तर्द्वन्द्व भी दिखलाई पड़ता है। नाटक में संघर्ष भी है जो मानसिक अधिक है। सत्यभामा की ईर्ष्या काव्य नाटक का केन्द्र-बिन्दु है। इस नाटक का अभिनय हुआ था और वह भी रात्री में।"[4]

'नन्दीपति कृत 'श्री कृष्ण केलिमाल' कृष्ण कथाश्रित नाटक की अगली व अन्तिम कड़ी है। इस नाटक में कृष्ण के वीर, प्रेमी एवं दिव्य रूप की झांकी मिलती है। राधा-प्रेम और रास-लीला इस नाटक की कथा है।[5]

1-- हिन्दी नाटक कोश, डा॰ दशरथ ओझा, पृ0 452 ।

2-- 1. वही, पृ0 86 ।

2. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्याम सुन्दर दास, पृ0 120

3-- हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाढ्य, पृ0 104 ।

4-- हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2, सं0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 67 ।

5-- हिन्दी नाटक कोश, डा0 दशरथ ओझा, पृ0 538 ।

हिन्दी के मध्यकालीन कृष्ण-कथामूलक नाटक साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ये प्राय: अभिनय के उद्देश्य से लिखे गए थे और अभिनीत भी हुए हैं । इन नाटकों में कृष्ण के दिव्य रूप के साथ-साथ उनका प्रेमी एवं वीर रूप ही अधिक उभारा गया है। भक्त-वत्सल, पतित-उद्धारक, सच्चे-मित्र आदि रूपों का भी प्रकटीकरण हुआ है। सारांशत: इन रचनाओं में से कृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र अभिव्यक्त हुआ है। यहाँ तक कि सामान्य बालक के समान हठी व चतुर एवं भूमि पर लोटने वाले कृष्ण की बाल-लीलाओं को भी प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण के प्रति, लेखकों की अनन्य भक्ति एवं प्रेम का परिचायक है, प्रस्तुत नाटक-साहित्य । जिसमें भक्ति एवं रीतिकालीन भाव-धारा का रूप, सहज ही देखा जा सकता है ।

3: विविध विषयक नाटक

राम एवं कृष्ण-कथा के व्यापक प्रभाव के पश्चात् भी मध्यकाल में गोरखनाथ, नृसिंह-अवतार, अजामित, शकुन्तला, शिव आदि के आधार पर भी नाटक-साहित्य की रचना हुई। मनोभावों को पात्र रूप में प्रस्तुत करते हुए, अनेक प्रतीक-नाटक उपलब्ध है। वेदान्त विषयक एवं आत्मकथात्मक रूप में भी नाटक(?) प्राप्त है ।

कपिलेन्द्र देव कृत 'परशुरामविजय व्यायोग' में परशुराम और सहस्रबाहु का युद्ध दिखाया गया है। इस नाटक में संस्कृत व हिन्दी का प्रयोग है।[1]

विद्यापति कृत 'गोरक्ष-विजय' नाटक में गीत हिन्दी एवं गद्य संस्कृत तथा अपभ्रंश में हैं। इस नाटक में गोरखनाथ और उनके गुरु मछिन्दरनाथ की कथा संक्षेप में वर्णित है। नान्दी के उपरान्त नट-नटी संवाद है। नट नटी से कहता है कि महाराज शिवसिंह की आज्ञा से (आज) विद्यापति कवि, विरचित

1-- हिन्दी नाटक कोश, डा० ओझा, पृ० 295-296 ।

'गोरक्षा विजय' नामक संगीतक को प्रस्तुत करने का आयोजन करें ।[1]

सन् 1533 में अभिनीत 'विद्याविलाप' नाटक प्राप्त होता है। इस नाटक में विद्या और सुन्दर के विवाह की कथा है। यह नाटक भटगाँव स्थान पर महाराज विश्वमल्ल के राज्य में खेला गया। कहा जाता है कि यही मैथिली का सर्वप्रथम नाटक है ।[2] द्विज भूषण कृत 'अजामिल उपाख्यान' में ईश्वर के नाम की महिमा वर्णित है। जिसके नामोच्चारण से घोर पापी दासी-पति अजामिल की मुक्ति हो जाती[3] है। भागवत के छठे सर्ग में उपलब्ध अजामिल-चरित इस नाटक का आधार है ।[4]

दैत्यारि ठाकुर कृत 'नृसिंह यात्रा' में नृसिंह अवतार द्वारा भक्त प्रह्लाद की उसके क्रूर पिता हिरण्यकश्यपु से रक्षा किये जाने की घटना है । इसमें स्थान-स्थान पर कृष्ण की महिमा व भक्ति की महत्ता का गुणगान किया गया है।[5] मुख्य कथा, क्योंकि नृसिंह अवतार से सम्बन्धित है इसीलिए इसका वर्णन कृष्ण कथाश्रित नाटकों में नहीं किया गया ।

जगज्ज्योतिर्मल्ल कृत 'हरगौरी विवाह' का उल्लेख भी मध्यकालीन नाटकों में उपलब्ध होता है। इस पौराणिक नाटक में शिव-पार्वती के वैवाहिक प्रसंग की कथा ग्रहण की गई है ।[6]

1-- प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० 27 से 37 ।

2-- 1. ए हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर, डा० जयकान्त मिश्र (हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 59-60 से उद्धृत)

2. भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, डा० अज्ञात, पृ० 121 ।

3-- हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, पृ० 14-15 ।

4-- प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० 373 ।

5-- वही, पृ० 495 ।

6-- हिन्दी नाटक कोश, डा० ओझा, पृ० 640 ।

सामराज दीक्षित कृत 'श्रीदामाचरित' में कृष्ण की सखा श्रीदामा से सम्बन्धित कथा है। नायक सरस्वती का उपासक और लक्ष्मी का कोप-भाजन व्यक्ति है। अन्त में श्री कृष्ण की कृपा से लक्ष्मी का कोप दूर होता है और नायक सुखी होता है।[1] श्रीदामा का कथा से मुख्य सम्बन्ध होने के कारण ही इसे भी कृष्ण कथाश्रित नाटकों में उल्लिखित नहीं किया गया है।

राजकवि केशव कृत 'माधवानल' नाटक में माधवानल और कामकंदला के प्रेम, विरह और मिलन का वर्णन है।[2] डा० सियाराम तिवारी ने इसे खण्ड काव्य माना है।[3]

सन् 1779 ई० का कुशल मिश्र कृत 'गंगा नाटक' मिलता है जिसमें वाल्मीकि रामायण और भागवत पुराण के नवम् स्कंध के आधार पर गंगा-अवतरण की कथा है। देवर्षि सनाढ्य के शब्दों में, " नाटकीयता का एकदम अभाव है। पता नहीं क्यों लेखक ने इस पुस्तक को नाटक की संज्ञा दी ?"[4]

इसी अवधि में रचित सोमनाथ (शशीनाथ) कृत 'माधवविनोद नाटक' प्राप्त होता है। नाटक की कथा का आधार भवभूति कृत 'मालती माधव' नाटक है।[5] यह स्वांग शैली में लिखा गया है।[6] लेखक ने इसे स्वांग न कहकर 'ख्याल' कहा है।[7] डा० रामनारायण के शब्दों में, " यह मूल रूप में भवभूति के नाटक का

1-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 127 ।

2-- हिन्दी नाटक कोश, डा० ओझा, पृ० 412 ।

3-- हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, डा० सियाराम तिवारी, पृ० 256 ।

4-- हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाढ्य, पृ० 108 ।

5-- 1. हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, पृ० 411 ।
2. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्यामसुन्दर दास, पृ० 158

6-- सांगीत : एक लोकनाट्य परम्परा, रामनारायण अग्रवाल, पृ० 20 ।

7-- वही, पृ० 20 ।

ही ख्याल (स्मरण करने वाली) है। इसे देख स्वभावत: भवभूति के मूल नाटक की स्मृति हो जाना स्वाभाविक है। अत: लेखक का अपने इस स्वांग को 'ख्याल' कहना सर्वथा उचित है।[1] सोमनाथ रचित 'हास्यार्णव' नामक एक अन्य नाटक भी उपलब्ध है।[2]

सन् 1800 के पश्चात् गणेश कवि कृत 'प्रद्युम्न-विजय' नाटक उपलब्ध है। इस नाटक में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के इन्द्र की रक्षा करने से सम्बन्धित है। रस-परिपाक की दृष्टि से यह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना गया है। प्रस्तावना, मंगलाचरण, नान्दी एवं सूत्रधार की योजना की गई है। नाटक के भीतर एक नहीं दो-दो नाटक दिखाने की योजना हिन्दी नाटक में पहिली ही है। दोनों नाटकों (रामचरित्र तथा कौबेररम्भाभिसार) की कथावस्तु भी संक्षेप में दी गई है।[3]

नेवाज कृत 'शकुन्तला नाटक' सन् 1670 एवं धोकिल राम कृत 'शकुन्तला नाटक' सन् 1799 में प्राप्त होते हैं। इसमें दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा वर्णित है जिसका आधार कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल' है। डा० दशरथ ओझा, डा० गोपीनाथ तिवारी ने इन्हें नाटक माना है।[4] नेवाज कृत यह नाटक दोहा-चौपाई-सवैया आदि छन्दों में ब्रजभाषा में लिखा गया है। नाटकीयता की अपेक्षा इस नाटक में भी काव्यपक्ष प्रबल है।[5] नाटकों में रंग-संकेत भी उपलब्ध है।[6]

1-- संगीत : एक लोकनाट्य परम्परा, रामनारायण अग्रवाल, पृ० 30 ।
2-- वही, पृ० 23 ।
3-- हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाढ्य, पृ० 107 ।
4-- 1. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० ओझा, पृ० 128-29 ।
 2. हिन्दी साहित्य कोश भाग-2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 556-557 ।
 3. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्यामसुन्दर दास, पृ० 432-433
5-- हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाढ्य, पृ० 103 ।
6-- 1. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 128 ।
 2. हिन्दी साहित्य कोश भाग 2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 557 ।

गुरु गोविन्द सिंह कृत 'विचित्र-नाटक' (आत्मकथा) भी हिन्दी के मध्यकालीन नाटकों में उल्लिखित होता रहा है। परन्तु यह नाटक नहीं है। 'विचित्र-नाटक' में 'नाटक' शब्द का अभिप्राय साहित्य की विधा विशेष से नहीं अपितु संसार रूपी विचित्र रंगस्थली से था, जहाँ अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के तत्वों के सृजन से, परमेश्वर 'तमाशा' करता है। इसका विस्तृत विवेचन सम्बन्धित अध्याय में उपलब्ध है। यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि यह नाटक नहीं है और अभिनय से इसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

तत्व-ज्ञान-विषयक नाटकों में बनारसी दास जैन विरचित 'समयसार नाटक' उल्लेखनीय है। यह तत्व-ज्ञान-विषयक जैन ग्रन्थ 'समय सार नाटक' का अनुवाद है।[1] यह रचना किसी भी दृष्टि से नाटक नहीं है। न इसमें साहित्यिक नाटकीय शैली है और न जननाटकों की। इस नाटक में नाटक की कोई भी विशेषता नहीं है। यह योगवासिष्ठ या गीता जैसा ग्रन्थ है, जिनके बीच में कभी-कभी प्रश्न होता है। कवि ने इस ग्रन्थ का निर्माण भी पढ़ने या सुनने के लिए किया है।[2] डा० ओझा प्रस्तुत नाटक के सन्दर्भ में यह शंका व्यक्त करते हुए कि, 'बनारसी दास इस ग्रन्थ को नाटक नाम देकर भी इसमें किसी प्रकार की संवाद-योजना क्यों नहीं कर पाए, यह अभी तक शोध का विषय बना हुआ है।'[3] फिर भी उन्होंने इस नाटक को हिन्दी नाटक-कोश[4] में स्थान देकर न जाने क्यों नवीन शोध का विषय उपस्थित किया ? डा चन्द्र प्रकाश के शब्दों में, इसमें मध्यकाल के नाटकों के संवाद वाले उपकरण का भी अभाव ही है। फिर

1-- हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण, श्याम सुन्दर दास, पृ 517 ।
2-- हिन्दी साहित्य कोश भाग-2, सं धीरेन्द्र वर्मा, पृ 584 ।
3-- नाट्य निबन्ध, डा ओझा, पृ 81 ।
4-- हिन्दी नाटक कोश, डा. ओझा, पृ. 577 ।

भी नाटक के कुछ शोध-कर्ताओं ने उसे बिना पढ़े हुए ही प्रबन्ध काव्य की कोटि का नाटक मान लिया है। 'समयसार नाटक' में न संवाद-योजना ही है न प्रबन्धात्मकता।'[1]

अहमदाबाद निवासी रघुरामनागर कृत 'सभासार नाटक' भी 'समयसार' नाटक की भाँति नाटक नहीं है। इस नाटक में कपटी धूर्त, बेवकूफ, चोर, सभा-चतुर, सभा-बिगार, परोपकारी, विभिन्न प्रकार के दाता, विरही, गुण्डा, नास्तिक, आस्तिक आदि का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ नाटक नहीं है। न तो इसका कोई सुगठित कथानक है, न ही पात्र है,[2] न संवाद है और न ही इसकी रचना प्रदर्शन या अभिनय के उद्देश्य की गई है। प्रस्तुत ग्रन्थ को भी नाटक मानने का आग्रह डा ओझा का है।[3] वस्तुत: यह ग्रन्थ नाटक नहीं है।

वेदान्त-विषयक एक अन्य रचना 'आनन्द सागर', जिसके रचयिता पूरन प्रताप खत्री हैं, सन् 1767 की है। इसमें नाटक के रूप में वेदान्त-विषय प्राप्त होता है।[4] इससे अधिक इस कृति का परिचय उपलब्ध नहीं है।

1-- हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा. चन्द्र प्रकाश सिंह, पृ. 158

2-- विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य --

(क) हिन्दी साहित्य कोश भाग 2, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 583।
(ख) हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, चन्द्रप्रकाश, पृ. 158
(ग) हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास, डा. शान्तिमलिक, पृ. 13-14
(घ) रघुराम नागर, कृत सभासार नाटक, डा. प्रभात।

3-- 1. हिन्दी नाटक कोश, डा. दशरथ ओझा, पृ. 557।

2. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा. दशरथ ओझा, पृ. 443।

4-- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, सं. श्याम सुन्दरदास, पृ. 67।

इन नाटकों के अतिरिक्त मध्यकालीन हिन्दी के नाटक साहित्य में प्रतीक-नाटकों की उपलब्धि होती है। मनुष्य के विविध मनोभावों मोह, अहंकार, क्रोध, विवेक, श्रद्धा, शान्ति आदि को पात्रों के रूप में प्रस्तुत करना इन नाटकों की विशेषता है। ये सभी नाटक प्राय: कृष्ण मिश्र विरचित संस्कृत के 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक पर आधारित हैं। कुछ नाटक प्रतीक शैली में होते हुए भी इस नाटक से स्वतन्त्र हैं। यथा 'धर्म विजय', जिसकी रचना सन् 1568 में भूदेव शुक्ल ने की, इस परम्परा का प्रथम नाटक है। इसमें पापात्मक एवं पुण्यात्मक प्रवृत्तियों को तो पात्र बनाया ही गया है, कविता और अलंकार भी इसमें पात्र होकर आते हैं। पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि अधर्म के ऊपर धर्म की विजय दिखाना ही इस नाटक का उद्देश्य है ।[1]

सन् 1572 में कवि कर्णपूर ने 'चैतन्य-चन्द्रोदय' की रचना की। अद्वैत, मैत्री, अधर्म, भक्ति, विराग आदि मनोभावों के साथ नारद, राधा कृष्ण आदि मानव-पात्र भी नाटक में प्रयुक्त हैं। इसका लक्ष्य चैतन्य के दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ-साथ महाप्रभु की लीलाओं का दिग्दर्शन कराना है ।[2]

गोकुलनाथ विरचित प्रतीक नाटक 'अमृतोदय' में सृष्टि से संहार तक जीव की आध्यात्मिक उन्नति का क्रम दिखाया गया है।[3]

इसके उपरान्त 'विद्या-परिणय' और 'जीवानन्द' नाटक प्राप्त होते हैं। जीव और विद्या के परिणय को धर्म शास्त्र एवं कल्पना के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। 'जीवानन्द' का विशेष परिचय प्राप्त नहीं है।[4]

1-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 127 ।

2-- वही, पृ० 126 ।

3-- वही, पृ० 127 ।

4-- वही, पृ० 127 ।

प्रतीक-नाटकों की परम्परा में प्राप्त अन्य नाटक कृष्ण मिश्र के प्रबोध-चन्द्रोदय के अनुवाद कहे जाते हैं ।

जसवन्त सिंह कृत 'प्रबोध नाट' सन् 1643 की रचना है। डा ओझा ने इसे संस्कृत नाटक पर आधारित रचना माना है,[1] जबकि अन्य विद्वान् इसे अनुवाद मानते हैं।[2] डा सरोज अग्रवाल के शब्दों में, " प्रथम और द्वितीय अंक में मूल का संक्षेप में भावानुवाद है। तीसरे, चौथे, पांचवें और छठे अंक में केवल कथासार दिया गया है।"[3] इस प्रकार जसवन्त सिंह-कृत यह नाटक संस्कृत प्रबोध चन्द्रोदय से प्रभावित रचना है। डा ओझा के अनुसार, "इस नाटक में जीवन का यह शाश्वत प्रश्न उठाया गया है कि आत्मा और शरीर का क्या सम्बन्ध है ।"[4] इस परम्परा का दूसरा नाटक अनाथ दास कृत 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक है। इसका अन्य नाम सर्वसार उपदेश भी है ।[5] तीसरा अनुवाद नानक दास कृत माना जाता है।[6] अंक, कथा, पात्र इत्यादि का क्रम प्रबोध-चन्द्रोदय जैसा ही है । इसकी भाषा शैली सबल है। इस नाटक में ऐसे संकेत मिलते हैं जिससे इस नाटक का अभिनय से सम्बन्धित होना सिद्ध होता है। यथा --- एक कनात खड़ी की

1-- हिन्दी नाटक कोश, डा दशरथ ओझा, पृ 32 ।

2-- (क) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग 2, सं. श्याम सुन्दर, पृ. 587 ।

(ख) वही, भाग 1 पृ १०

(ग) हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 327 ।

3-- प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा, डा. सरोज अग्रवाल, पृ. 219 ।

4-- नाट्य निबन्ध, डा. दशरथ ओझा, पृ. 83 ।

5-- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग 2, सं. श्यामसुन्दर, पृ. 586 ।

6-- वही, पृ. 587 ।

जाती थी। इस कनात के पीछे पात्र अपना वेश-परिवर्तन करते थे। कनात को हटा कर मंच पर आते थे। अंक के आरम्भ में वाद्ययन्त्र बजते थे। पात्र ऊंचे स्वर में बोलते थे। अभिनय रात को होता था। आदि ।[1]

इस परम्परा की अगली कड़ी जैतसिंह कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' है। इसे भी मूल का अनुवाद माना जाता है।[2] इसके उपरान्त ब्रजवासी दास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' प्राप्त होता है।[3] डा. ओझा के शब्दों में, "नाटक को सन् 1760 में छंदोबद्ध करके स्वाँग की शैली में सामाजिकों और पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस में संवाद की छटा जसवंत सिंह के प्रबोध नाटक से पृथक् है।[4] नाटक में अभिनय का संकेत भी किया गया है।[5] इसी अवधि में देव कवि कृत 'देवमाया-प्रपंच-नाटक' उपलब्ध होता है। प्रस्तुत नाटक में कथा-सूत्र एवं पात्रों में मूल से पर्याप्त भिन्नता है। तथापि कहीं-कहीं साम्य भी उपलब्ध है। इस कारण इस रचना को प्रबोध-चन्द्रोदय का अनुवाद न कह कर प्रभावित कहा जाएगा। नाटक में नट-नटी एवं संवाद-योजना को स्थान दिया गया है तथापि यह कृति नाटक नहीं कही जा सकती, पात्र-सृष्टि, संवाद-योजना, दृश्य-विधान, भाषा-शैली आदि अनेक नाटक विरोधी तथ्य उपस्थित करते हैं। इस नाटक का

1-- हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 327-328 ।

2-- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग 2, श्यामसुन्दर दास, पृ. 587 ।

3-- वही, पृ. 587 ।

4-- (क) नाट्य निबन्ध, डा. दशरथ ओझा, पृ. 85 ।
(ख) सांगीत : एक लोकनाट्य परम्परा, रामनारायण अग्रवाल, पृ. 28 ।

5-- हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 328 ।

विस्तृत वर्णन सम्बन्धित अध्याय में किया जाएगा। इसी परम्परा में सुरति मिश्र कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' (सन् 1743)[1], आनन्द कृत 'नाटकानन्द' (सन् 1783)[2] एवं रघुराज कृत 'परमप्रबोध विधु नाटक' (सन् 1847 से पूर्व की रचना) आते हैं। प्रतीकात्मक शैली में लिखे गए इस नाटक में शृंगार एवं शान्त रस का सुन्दर मिश्रण है ।[3]

विविध विषयक नाटकों में प्राप्त विचित्र नाटक, देवमायाप्रपंच नाटक, समयसार नाटक, सभासार नाटक आदि को नाटक नहीं माना जा सकता। समयसार एवं 'सभासार' नाटक के विषय में डा. प्रभात का कथन उल्लेखनीय है, "उनमें नाटक के लक्षण तो हैं ही नहीं, नाटक का कोई आधारभूत उपादान (कथा, पात्र, अभिनय) भी नहीं है। वे शुद्ध रूप से मुक्तक हैं जिन्हें किसी विशिष्ट योजना के साथ संकलित कर दिया गया है या एक प्रकार के प्रबन्ध काव्य हैं। कवि बनारसी दास कृत 'समयसार' और कवि 'रघुराम कृत 'सभासार' ऐसी ही कृतियाँ हैं। डा. रवीन्द्र कुमार जैन का यह निष्कर्ष ठीक ही है कि 'समयसार नाटक' एक महाकाव्य है। 'सभासार' में तो प्रबन्धत्व का भी अभाव है। यह केवल मुक्तकों का संग्रह है --- ऐसे मुक्तकों का, जिनके कथ्य को आज की विकसित, वैज्ञानिक शोधों द्वारा संचालित नाट्यकला भी ठीक प्रकार से मंच पर प्रस्तुत नहीं कर सकती। यह तो प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया

1-- (क) हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा ओझा, पृ० 124 - (पाद टिप्पणी)

(ख) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग 2, सं० श्याम सुन्दर, पृ० 588 ।

2-- (क) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग 2, सं० श्याम सुन्दर, पृ० 587 ।

(ख) वही, भाग 1, पृ० ९०।

3-- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, गोपीनाथ तिवारी, पृ० 39 ।

जा चुका है कि इन ग्रन्थों के रचयिताओं ने भी इन्हें पढ़ने-सुनने के लिए ही लिखा था।[1] इन ग्रन्थों का नाटक नाम देने का कारण भरत प्रदत्त 'नाना शीला : प्रकृतय: शीले नाट्यम् विनिर्मितम्' तथा कृतानुकरणे लोके नाट्य-मित्यीभधीयते' आदि उक्तियाँ हैं। नामकरण के इस आधार मात्र पर इन रचनाओं को नाटक नहीं कहा जा सकता है। विचित्र नाटक एवं देवमाया-प्रपंच नाटक भी नाटक नहीं है। इनका विस्तृत विवेचन सम्बन्धित अध्याय में किया जाएगा ।

(घ) निष्कर्ष

मध्यकाल में प्राप्त इन नाटकों को डा० दशरथ ओझा ने नाटक स्वीकार किया है ।[2] डा० चन्द्रप्रकाश सिंह कुंवर ने मध्यकाल में प्राप्त लीला नाटकों को नाटक स्वीकारा परन्तु सभासार नाटक, समय सार आदि को नाटक नहीं माना । शायद लोकनाट्यों को नाटक रूप में मान्यता देते हुए उन्होंने मध्यकाल को हिन्दी नाटक , नाटक की दृष्टि से समृद्ध माना है।[3] तथा गोविन्द हुलास नाटक की खोज द्वारा नाटक साहित्य को प्राचीनता प्रदान की है।[4] डा० गोपीनाथ तिवारी ने भी प्राय: ब्रजभाषा नाटकों को नाटक स्वीकारा है।[5] डा० ब्रजरत्नदास ने भी इन नाटकों को नाटक मानने में आपत्ति नहीं की है। डा० वेदपाल खन्ना विमल,[6] डा० श्रीपति शर्मा,[7] डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश,[8] डा० शिवनन्दन

---

1. रघुराम कृत सभासार नाटिका, सं. डा. प्रभात – पृ. १।
2-- (क) हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा दशरथ ओझा ।
(ख) हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा ।
3-- शोध साधना, डा० कुंवर चन्द्रप्रकाश, पृ० 202 ।
4-- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, डा० गोपीनाथ तिवारी, पृ० ट (भूमिका) ।
5-- हिन्दी नाट्य साहित्य, डा० ब्रजरत्नदास, पृ० 45 ।
6-- हिन्दी नाटक का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वेदपाल खन्ना विमल, पृ० 18 ।
7-- भारतीय नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, डा० श्रीपति शर्मा, पृ० 57-58 ।
8-- हिन्दी गद्य विधाएं और विकास, डा० पद्मसिंह शर्मा, कमलेश, पृ० 8 ।

प्रसाद,[1] डा० उपेन्द्रनारायण,[2] डा० जवाहरलाल चतुर्वेदी,[3] डा० गोविन्दलाल छाबड़ा,[4] डा० एस० पी० खत्री,[5] डा० नित्यानन्द शर्मा,[6] आदि[7] ने इन रचनाओं को नाटक मानने में असहमति प्रकट की है, या अधिक से अधिक पद्यबद्ध संवाद या संवादात्मक रचनाएँ स्वीकार किया है। डा० प्रभात ने प्रबोध चन्द्रोदय के अनुवादों, शकुन्तला नाटक, गोविन्द हुलास नाटक, करुणाभरण, आनन्द रघुनन्दन आदि को नाटक माना है।[8] डा० वीरेन्द्र कुमार ने प्रबोध चन्द्रोदय को नाटक स्वीकारा है।[9] डा० शान्तिमलिक ने उन्हें हिन्दी नाटकों के लिए प्रेरक माना है।[10] डा० गिरीश रस्तोगी का कथन है कि उन में नाटक जैसा कुछ न कुछ अवश्य था।[11] डा० सुरेश अवस्थी[12] का मत है कि "सच तो यह है कि इन मध्ययुगीन रचनाओं का कोई नाटकीय उद्देश्य नहीं है, पर उनसे पता चलता है कि मध्ययुग में कथात्मक साहित्य और नाटकीय साहित्य में बड़ी ही सूक्ष्म और हल्की-सी

1-- हिन्दी साहित्य : एक परिवृत्त, डा० शिवनन्दन प्रसाद, पृ० 263 ।

2-- आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंगल प्रभाव, डा० उपेन्द्र नारायण, पृ० 62 ।

3-- पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, सं० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 487 ।

4-- हिन्दी के प्रथम नाटककार, डा० गोविन्द लाल छाबड़ा, पृ० 241 ।

5-- नाटक की परख, डा० एस० पी० खत्री, पृ० 117 ।

6-- हिन्दी साहित्य का मध्यकाल, डा० नित्यानन्द शर्मा, पृ० 327 ।

7-- (क) हिन्दी साहित्य कोश 1, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 381-382 ।

(ख) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु ग्रन्थावली, सं० ब्रजरत्न, पृ०

(ग) हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० 7-8 ।

(घ) ~~हिन्दी~~ आधुनिक हिन्दी साहित्य, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ०

(ङ) रूपकरहस्य, वेदमित्र व्रती, पृ० 57, 63-64 ।

8-- रघुराम कृत सभासार नाटक, डा० प्रभात, पृ० 19-20 ।

9-- भारतीय नाट्य साहित्य, डा० नगेन्द्र, पृ० 662 ।

10-- हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास, डा० शान्ति मलिक, पृ० 17 ।

11-- हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, डा० गिरीश रस्तोगी, पृ० 68 ।

12-- भारतीय नाट्य साहित्य, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० 806 ।

विभाजक रेखा थी, और वास्तव में कथात्मक काव्य को बड़ी ही सरलता के साथ नाटक में परिणत किया जा सकता था --विशेष रूप से ऐसे समय में जबकि 15वीं-16वीं शताब्दी के सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने कला के प्रत्येक क्षेत्र को नवोन्मेष से भर दिया था और नाटक को एक प्रकार का औपचारिक स्वरूप देने का प्रयास मन्दिरों के माध्यम से होने लगा था।" मन्दिरों में धार्मिक लीलाओं के अभिनीत होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। स्वांग, नौटंकी आदि विविध लोक-नाट्यों के रूप में मध्यकाल में नाट्य परम्परा जीवित रही परन्तु साहित्यिक नाटकों के रूप में जिन कृतियों का उल्लेख किया जाता है वे नाम मात्र के नाटक हैं; यथा -- प्राणचन्द चौहान कृत 'रामायण महानाटक', हृदयराम भल्ला कृत हनुमान्नाटक, उदयकवि कृत रामकरुणाकर एवं हनुमाननाटक, गुरु गोविन्द सिंह कृत विचित्र नाटक, बनारसीदास जैन कृत समयसार नाटक, रघुराम नागर कृत सभासार नाटक, देव कृत देवमायाप्रपंच आदि नाटक नाटक कहलाने योग्य नहीं हैं। लोक-नाट्यों से प्रभावित, नाटक के नैसर्गिक आकर्षण में बंधे लेखकों ने साहित्यिक नाटकों के अभाव को पूरा करने के लिए नाटक के क्षेत्र में अपनी कृतियाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया। ~~परन्तु~~ नाटक की कोई साहित्यिक परम्परा न होने के कारण वे कृति में अपेक्षित नाटकीय गुण न ला सके परन्तु उन्हें 'नाटक' नाम से अवश्य सज्जित कर दिया। इस काल में नाट्य-चिन्तन का भी प्रभाव रहा और नाट्य-साहित्य का भी। लोगों में नाटक के प्रति तीव्र ललक थी, लेखकों ने अपनी अनाटकीय कृतियों को नाटक नाम दिया, और जिस कृति को लेखक ने नाटक कहने का दुःसाहस नहीं किया उसे जनसामान्य ने नाटक कहा।

द्वितीय अध्याय

हनुमान नाटक

(क) हृदयराम भल्ला : जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व ।

(ख) हनुमान नाटक : नाटक के निकष पर ।

(ग) निष्कर्ष

(क) हृदयराम भल्ला

-- जीवन : प्रचलित जनश्रुतियाँ

-- व्यक्तित्व : कृतियों के आधार पर

-- कृतित्व

-- हनुमान नाटक : विभिन्न प्रतियाँ : तुलनात्मक अध्ययन

-- रुक्मिणी मंगल

-- सुदामाचरित

(क) हृदयराम भल्ला : जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मध्यकालीन प्रसिद्ध संतों के जीवन-चरित की भाँति हृदयराम का जीवन भी प्राय: अज्ञात है। अपनी पुस्तक 'हनुमन्नाटक' के अन्त में हृदयराम ने जो स्वपरिचय दिया है वही एकमात्र प्रामाणिक वृत्त है। अन्य विद्वानों ने हृदयराम-प्रदत्त विवरण के साथ ही कुछ ऐसी जनश्रुतियों का उल्लेख किया है जो काफी परिश्रम के पश्चात् भी ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक न बन सकीं।

जीवन

हृदयराम भल्ला के जन्म एवं मृत्यु-संवत् का कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। 'हनुमान नाटक' का रचनाकाल संवत् 1680 अर्थात् सन् 1623 है, इस प्रकार वे 17वीं शताब्दी में वर्तमान कहे जा सकते हैं। प्रस्तुत कवि के बचपन, युवावस्था, वृद्धावस्था, शिक्षा-दीक्षा एवं गृहस्थ जीवन आदि के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इनके पिता का नाम कृष्णदास था और ये पंजाब के निवासी थे।

हृदयराम के विषय में प्राय: जनश्रुतियों के अनुसार जहाँगीर बादशाह ने हृदयराम कवि को किसी एक अपराध करने के कारण कैद किया था। उसी जेलखाने में उक्त कवि ने यह ग्रन्थ संवत् 1680 विक्रमांक में बनाया था और फिर इसी रामचरित्र के प्रताप से कवि कारागृह से मुक्त भी हो गये थे, परन्तु यह ग्रन्थ जेलखाने की दीवारों में ही लिखा रह गया। इसके पीछे जब बादशाह को खबर हुई तो उसने इस ग्रन्थ को अति उत्तम समझ कर दीवारों में से फारसी

में नक्ल कराकर अपने प्राइवेट पुस्तकालय में रखवा दिया। -- -- -- --
गुरु गोबिन्द सिंह जी ने यह ग्रन्थ शाहआलम बहादुरशाह अपने मित्र के समुद्र रूपी पुराने दफ्तर का आलोड़न करने से चौदह रत्नरूपी चौदह अंकों का ग्रन्थ प्राप्त किया। ~~वे~~ इसे अनुपम रत्न समझ कर इस ग्रन्थ से इतना प्रेम करते थे कि किसी समय भी अपने देह से ~~न~~ जुदा नहीं करते थे। बस, तभी से यह ग्रन्थ गुरुमुखी अक्षरों में लिप्यन्तरित हुआ और खालसा पंथ में इसकी ऐसी प्रतिष्ठा हुई कि अब तक सिक्खों के गुरुद्वारे श्री दरबार साहिब अमृतसर जी में गुरु ग्रन्थ के बिना और कोई ग्रन्थ पढ़ा जाता है तो यह हनुमन्नाटक ही पढ़ा जाता है।"[1] इसी जनश्रुति को कुछ अन्तर के साथ प्रस्तुत करने वाले पंडित योगी शिवनाथ जी के अनुसार, "इस नाटक ग्रन्थ की उत्पत्ति इस प्रकार सुनी जाती है। हिरदा राम खत्री जहांगीर का नौकर था। किसी कारण बादशाह उससे क्रोधित हुआ। तब बादशाह ने उसे कैद कर लिया। पर, वह हनुमान का उपासक था। उस कैद में हनुमान जी उसे केले के पत्ते दे जाते थे क्योंकि वह मंदिर जहां हृदयराम कैद था बिल्कुल सफेद था, और बादशाह का यह निश्चय था कि इस कैद मन्दिर में यह नेत्र-हीन हो जाएगा, पर उसे वहाँ पर जो केले के पत्ते मिलते रहे, और वह जैसे हनुमान जी से रामकथा सुनता उसी तरह छन्दोबद्ध कर देता। -- --
-- -- -- -- -- जब हिरदय राम कैद से छूट गया, वह ग्रन्थ बादशाह की भेंट हुआ। बादशाह ने उसे खजाने में रखा जब औरंगजेब के बाद बहादुरशाह गद्दी पर बैठा उस के साथ गुरु गोबिन्द सिंह का प्रेम था, उसने वह ग्रन्थ गुरु गोबिन्द सिंह को भेंट किया, पर उसके दो-चार पृष्ठ गुम थे। तब गुरु जी ने उसके कुल में से अथवा उसके विद्यार्थियों में से अथवा अपने पास रहने वाले कवियों में से काशी राम को बुलाकर आज्ञा दी कि इसके गुमे हुए छन्दों की पूर्ति करो।"[2]

1-- हनुमन्नाटक (रामगीता भाषा), सं० नन्द किशोर देव शर्मा, भूमिका।

2-- (गुरुमुखी), हनुमान नाटक, हिरदा राम भल्ला, टीकाकार -- योगी शिवनाथ, पृ० 1-2 ।

डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार, " ऐसा अनुमान किया जाता है कि गुरु अर्जुन देव को इनकी बहन ब्याही थी और इस प्रकार गुरु गोबिन्द सिंह के ये मामा हो सकते हैं ।"[1] इसी बात का उल्लेख डा० चन्द्रकान्त बाली ने भी किया है। उनके अनुसार, "अर्जुन देव जी के दो विवाह हुए थे, उनका पहला विवाह विक्रम संवत् 1632 में चन्ददास खत्री की कन्या से सम्पन्न हुआ और दूसरा विवाह कृष्णचन्द्र भल्ला की कन्या गंगादेवी से संवत् 1645 विक्रमी में हुआ; हृदयराम ने भी अपने पिता का नाम कृष्णदास बतलाया है ।"[2]

'हृदयराम भल्ला को जहाँगीर ने कैद किया था।' इस जनश्रुति की पुष्टि के लिए विभिन्न मुगलकालीन एवं अन्य इतिहास ग्रन्थों[3] के अतिरिक्त 'जहाँगीर नामा' आदि का भी सहारा लिया गया, पर वे इस तथ्य की पुष्टि करने में असमर्थ रहे । गुरु अर्जुन देव जी के वध के विषय में मुगलकालीन इतिहास ग्रन्थों के अतिरिक्त जहाँगीर कृत 'जहाँगीर नामा' में भी विवरण उपलब्ध है। परन्तु हृदयराम का नामोल्लेख तक नहीं मिलता। हृदयराम ने अपनी रचनाओं में भी इस प्रकार का संकेत नहीं किया। वरन् ऐसे सूत्र उपलब्ध हैं जो इस तथ्य के विपरीत सिद्ध होते हैं । बारम्बार सन्त समाज से यह कहना ---- 'सुनहु सन्त मन दे सबै;'[4] 'रामगीत मन लाय सुनो सुनावत राम कहं;'[5]

1-- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पाँचवाँ भाग, पृ 311 ।

2-- पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा चन्द्रकान्त बाली, पृ० 258 ।

3-- (क) द हिस्ट्री आफ इंडिया एज बाई इट्स ओन हिस्टोरियनस, वाल्यूम 5, सर एच० एम० इलियट, पृ० 276 से 391 तक, 1972 ।

(ख) द क्रोनोलोजी आफ इंडियन हिस्ट्री मैडिकल एण्ड माडर्न, जेम्स बर्गेस, पृ० 64-83

(ग) ए कल्चरल हिस्ट्री आफ इंडिया, ए० एल० बशम ।

(घ) इंडिया फ्राम दी अरलियस्ट एजिज़, जे० टलब्याज़, व्हीलर ।

(ड) ए कनसाइज हिस्ट्री आफ इंडिया, फ्रांसिस वाट्सन, पृ० 133 से 122 तक ।

(च) द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया वाल्यूम III और IV सं० वोल्जली हैग ।

(छ) मुगलकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, श्री बी० एन० लुणिया

4-- हनुमन्नाटक, हृदयराम भल्ला, अंक 2, पद्य 3 ।

5-- वही, अंक 11, पद्य 67 ।

'सन्त सुनौ मन लाय;'[1] 'सन्त सुनौ दे कान;'[2] 'तुम्हैं सुनावत राम कवि;'[3] 'आगे सुनौ सुजान श्री रघुनाथ चरित्र कौ;'[4] --- स्पष्ट करता है कि यह रचना बन्दीखाने की नहीं है। यदि यह मानने का दुराग्रह कर भी लिया जाए कि श्रोता समाज अन्य बन्दीजन हो सकते हैं, तो हृदयराम का उन्हें 'सन्त' कहना उपयुक्त नहीं लगता। यही नहीं, कवि को 'श्वेत गृह में बन्दी किया गया जहाँ वह नेत्रहीन हो जाता' स्वयं ही असत्य प्रमाणित हो जाता है। श्री नन्द किशोर देव एवं पंडित योगी शिवनाथ जी ने भी इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। अत: यह जनश्रुति असत्य के ही अधिक निकट प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त, 'श्वेत कारागृह में हनुमान जी अपने उपासक हृदयराम को केले के पत्ते दे जाते थे' उक्ति भी किसी भक्त हृदय की अति श्रद्धा की उपज ही है। जेलखाने में बन्दी कवि की आत्म-प्रशंसात्मक उक्तियाँ भी इस जनश्रुति को झुठलाती हैं। जेलखाने में मानसिक एवं शारीरिक उलझनों से जूझता कवि आत्म-भर्त्सना तो कर सकता है; आत्म प्रशंसा नहीं। कवि ने 'सुकवि राम हिरदै कही'[5] द्वारा ही नहीं वरन् स्वयं को कृष्णदास के कुल-प्रकाशक एवं 'यश रूपी दीपक के रक्षक'[6] कहकर भी आत्म प्रशस्ति की है। जितनी स्वाभाविक एवं रोचक भाषा द्वारा कवि ने विभिन्न प्रसंगों की भावाभिभूत अभिव्यक्ति दी है, वह मुक्त हृदय की वाणी प्रतीत होती है; शोकाकुल बन्दीजन की नहीं। अत: यह स्वत: सिद्ध हो जाता है कि हृदयराम के साथ जहाँगीर ने इतना अन्याय नहीं किया था जितना कहा जाता है। हो सकता है एक-दो अथवा कुछ दिन का कारावास दिया गया हो और राई का पहाड़ बनाने वाले समाज ने इसे मनमाना विस्तार एवं गहराई दी ।

1-- (क) हनुमन्नाटक, हृदयराम भल्ला, अंक 5, पद्य 94 ।
    (ख) वही, अंक 9, पद्य 23 ।

2-- वही, अंक 6, पद्य 114 ।

3-- वही, अंक 9, पद्य 29 ।

4-- वही, अंक 12, पद्य 58 ।

5-- (क) वही, अंक 12, पद्य 57 ।
    (ख) वही, अंक 11, पद्य 5 ।

6-- वही, अंक 14, पद्य 143 ।

बहादुरशाह द्वारा इस ग्रन्थ का गुरु गोबिन्द सिंह को भेंट होना और गुरु जी का इस रचना को हमेशा अपने पास रखना भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं होता। गुरु जी इस ग्रन्थ को अपने पास रखते होंगे, इसका प्रमाण यही है कि उनके दरबारी कवि काशीराम द्वारा 'हनुमन्नाटक' के खण्डित अंश की पूर्ति की गई है।[1] स्वयं गुरु गोविन्द सिंह ने इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया।

'गुरु अर्जुन देव जी को हृदयराम की बहन ब्याही थी। इस प्रकार गुरु गोबिन्द सिंह के ये मामा हो सकते हैं।' विद्वानों द्वारा प्रस्तुत इस तथ्य के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि गुरु गोबिन्द सिंह नहीं वरन् गुरु हरगोबिन्द के ये मामा हो सकते हैं, क्योंकि हरगोबिन्द गुरु ~~हरगोबिन्द के पी~~ अर्जुन देव के पुत्र थे न कि गुरु गोबिन्द सिंह। गुरु गोबिन्द सिंह गुरु हरगोबिन्द के पौत्र थे। सम्भवत: गुरु गोबिन्द सिंह छापे की भूल से गुरु हरगोबिन्द के स्थान पर मुद्रित हो गया है। गुरु अर्जुन देव की दूसरी पत्नी गंगा देवी हृदयराम भल्ला की बहन थी, ऐसा मानने का एक मात्र कारण गंगा देवी एवं हृदयराम भल्ला के पिता का नाम-साम्य बताया गया है। परन्तु शोध के परिणामस्वरूप यह तथ्य सामने आया कि गंगादेवी के पिता का नाम भी शोध का विषय है। नरेन्द्र सिंह विरदी ने इनके पिता का नाम 'कृष्णचन्द' बतलाया।[2] महंत बिशन सिंह ने 'कृष्ण चन्द खत्री'[3] एवं डाइरेक्टर भाषा विभाग पंजाब द्वारा प्रकाशित पुस्तक में यह नाम 'खतरी संगतराई'[4] लिखा। इन पुस्तकों एवं अन्य पुस्तकों[5] में भी हृदयराम या गंगादेवी के भाई अथवा परिवार के विषय में कोई

1-- गुरु गोबिन्द सिंह के दरबारी कवि, डा० भारत भूषण चौधरी, पृ० 131 ।

2-- दस पातशाहीआं भाग-2, नरेन्द्र सिंह विरदी, पृ० 35 (पंजाबी) ।

3-- अमृत वचन ते संत दर्शन, महंत बिशन सिंह (पंजाबी), पृ० 423 ।

4-- गुरु अर्जुन देव(जीवन ते रचना), भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, पृ० 14(पंजाबी)

5--(क) गुरु इतिहास भाग 2 से 9 (पंजाबी), प्रो० साहिब सिंह, पृ० 26 ।
(ख) माता गंगा जी (जीवन इतिहास), त्रिलोक सिंह ज्ञानी, (पंजाबी) ।

सूचना नहीं मिलती ।

अत: प्रमाणों के अभाव में प्राप्त सामग्री संदिग्ध है। हृदयराम का परिचय कहीं भी प्राप्त न हो सकने के कारण इनका जीवन-वृत्त अज्ञात है । प्रामाणिक विवरण यही है कि हृदयराम जहाँगीर के समकालीन थे। इनके पिता का नाम कृष्णदास था। संवत् 1680 में इन्होंने हनुमन्नाटक की रचना की।

(ख) व्यक्तित्व

हृदयराम के जीवन-वृत्त के अंधकार-ग्रस्त होने के कारण इनका व्यक्तित्व भी अनालोचित ही रहा। हृदयराम का कोई चित्र भी उपलब्ध नहीं है। वस्तुत: जब जन्म-मृत्यु, परिवार, शिक्षा-दीक्षा आदि का ही कोई विवरण उपलब्ध नहीं तो 'चित्र' की बात ही क्या। अत: हृदय राम की आकृति, कद, वेश-भूषा आदि कैसी थी, अनिश्चित है एवं कल्पना से भी परे की बात है। हृदय राम का बाह्य व्यक्तित्व इस प्रकार अवर्णनीय (?) बन जाता है। 'कृति में कृतिकार का व्यक्तित्व झलकता है' यह एक सर्वसम्मत तथ्य है। इसी तथ्य के आधार पर हृदय राम का आन्तरिक व्यक्तित्व अर्थात् स्वभाव, आचार-विचार, आदर्श, प्रतिभा आदि का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

हृदय राम मल्ला ईश्वर के अनन्य भक्त थे। उनका यह ईश्वर 'राम' था। वे हनुमान के उपासक नहीं थे जैसाकि लोक प्रचलित है। राम नाम के स्मरण पर उन्होंने अत्यधिक जोर दिया है। कहा है कि राम नाम के स्मरण से राम ही नहीं, सभी सहायता करते हैं ।यथा :--

" कान सुने पहचान न काहु सों साँचि कहै कवि राम कहैया ।
जानत श्री रघुवीर के नाम हि जा सुनिए सब होंहि सहैया ।।"[1]

1-- हनुमन्नाटक, हृदयराम, अंक 1, पद्य 2 ।

अपनी अनन्य निष्ठा व्यक्त करते हुए वे कहते हैं :--

श्यामघन देह सों मैं चातक ज्यों नेह बांध्यो देह प्रेम बूँद हों
जचैया ताही नाम को ।
चरण सरोज रस भरे ताको भयो अलि जा दिन पराग पाऊँ
ताही छिन काम को ।।
राम मुख धुन सुन भयो मृग ताही छिन रूप सिन्धु मीन
डर है न कालधाम को ।।
वे उदार राम है मैं भक्ति भीख मागों वे तो रामचन्द्र
चन्द्रमा चकोर मन राम को।।[1]

भक्ति-भाव प्रबल होने पर हृदयराम दूसरे व्यक्तियों से भी पेट की चिन्ता छोड़ कर भक्ति करने को कहते हैं। यह राम के प्रति उनकी असीम श्रद्धा एवं भक्ति को प्रकट करता है :--

राम के नाम से प्रीति करो जिन धाम के काम रहो उरझाई ।
जो न बने तऊ एक घरी सुन ले गुन को तज आरसताई ।।
पेटहि में जिन पेट भरो अब पेट के काज कहा दुचिताई ।
ले सिख आव रे आव चली जैसे पानी में नाव मलाह चलाई ।।[2]

कवि को राम-भक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता क्योंकि 'वारिद से श्याम अभिराम कामहू के काम ऐसे राम राम के हिये विराजमान हैं।'[3] 'सुदामा चरित' एवं 'रुक्मिणी मंगल' में उन्होंने यद्यपि कृष्ण-सम्बन्धी कथाओं को लिया है परन्तु कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट नहीं की। इस प्रकार कृष्ण-सम्बन्धी ये रचनाएँ राम के प्रति व्यक्त उनकी निष्ठा को कम नहीं करतीं। ईश्वर के प्रति अनन्य आस्थावान हृदयराम ने भक्ति का अर्थ प्रेम एवं विश्वास से समझा है। आडम्बरों का उन्होंने खण्डन किया है। प्रेम के बिना भक्ति भाव व्यर्थ है --

---

1-- हनुमन्नाटक, हृदयराम, अंक 1, पद्य 3 ।

2-- वही, अंक 1, पद्य 6 ।

3-- वही, अंक 1, पद्य 5 ।

" तब लग साधन धूर, जब लग परस न प्रेम को "[1]

तथा " इतने करे उपाय, सब फीकत इक प्रेम बिना ।"[2]

इसके साथ उन्होंने एक ही ईश्वर की उपासना पर जोर दिया है ----

" एक शरण ब्रत होय, जप तप नेम सबै रहो ।
पुरुष नार नहिं दोय, क्या पतिव्रता सराहिये ।।"[3]

भक्त होने के साथ-साथ वे विवेकशील भी थे। वे जानते थे कि ईश्वर एक है, लोग भिन्न-भिन्न नामों से उसे याद करते हैं :--

शैव कहैं शिव या रघुवीरहिं ब्रह्म कहैं सब वेद पढ़ैया ।
बौध कहैं इक कर्म कहैं इक धर्म कहैं इक धाम सहैया ।।
एक कहै करता हरता जन एक कहै घट प्राण बसैया ।
ते प्रभु राम सुनो अपनो यश है सब द्यौसन दौर सुनैया ।।[4]

अपने समय में प्रचलित विभिन्न धर्मों, देवी, देवताओं से भी वे परिचित थे ---

काहू को सारस्वती वर पूरण काहू को है शिव से वरदैया ।
काहू को है चतुरानन को वर कोऊ गजानन आस बसैया ।।[5]

अनन्य ईश्वर-भक्त होते हुए भी, विवेकी होने के कारण उन्होंने तीर्थाटन, उपवास, फलाहार, एकान्त-वास, वन-वास, धूल-धूसरित होने, आदि क्रियाओं को त्याज्य बताया है। वे कहते हैं --

तीरथ करैं अनेक सदा मिल मीन भेक कच्छप अनेक वारों जुगही में गाये हैं।
पौन हूसों पेट भर सोवत भुजंग औ कुरंग तृण खात वन ही में घर छाये हैं।।

1-- हनुमन्नाटक, हृदयराम, अंक 11, पद्य 3 ।

2-- वही, अंक 11, पद्य 5 ।

3-- वही, अंक 11, पद्य 4 ।

4-- वही, अंक 1, पद्य 4 ।

5-- वही, अंक 1, पद्य 2 ।

चातक बिना ही साथी धूर मूढ़ मैं हाथी ध्यान ही बिडाल
बक जनम गँवाये हैं ।
नाच नाच मोर ज्यों विवाद घन घोर ज्यों उड़ाय प्रेमहीन
रघुनाथ कहूं पाये हैं।।[1]

हृदयराम आदर्शवादी हैं। यही कारण है कि उन्होंने राम-सीता के संयोग श्रृंगार का चित्रण नहीं किया। मात्र एक स्थान पर 'जान की फूल सी फूलत डोलत राम सों नैन मिले मुसकाहीं ।'[2] कहकर किया है। इस कथन द्वारा ही उन्होंने चित्र-सा उपस्थित कर दिया है। संयोग श्रृंगार के लिए राम-कथा में पर्याप्त अवकाश के होते हुए भी उसको वाणी न देकर कवि ने अपनी मर्यादावादिता (निर्लिप्तता) एवं आदर्श को व्यक्त किया है। विप्रलंभ अथवा वियोग[3] श्रृंगार के अन्तर्गत सीता का रूप-वर्णन दो स्थलों पर किया गया है। सीता-वियोग से व्यथित राम सीता का जो रूप-वर्णन करते हैं वह एक स्थल पर कुछ अमर्यादित-सा प्रतीत होता है[4] । सम्पूर्ण कथानक में एक पंक्ति का अश्लील होना कवि को आदर्शवादी धरातल से विच्छिन्न करने में असमर्थ है। वस्तुत: यह रूप-वर्णन की पूर्णता एवं सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए किया गया है। कवि नारी-रूप के वर्णन एवं श्रृंगार वर्णन के लिए पर्याप्त अवकाश पाते हुए भी उनसे विमुख रहा है ।

हृदयराम अति विनम्र स्वभाव के थे। उन्होंने स्वरचित कविता और स्वयं को अति दीन-हीन माना है। अहंकार के स्पर्श से कोसों दूर--

---

1-- हनुमन्नाटक, हृदयराम भल्ला, अंक 11, पद्य 116 ।

2-- वही, अंक 2, पद्य 12 ।

3-- वही, अंक 5, पद्य 7 तथा पद्य संख्या 40 ।

4-- वही, अंक 5, पद्य 40 ।

" हौं मतिहीन इहै कविता शिर बानत हौं उपहास धरैगी ।"[1]

तथा " फूल सुगंधि सबै कवि मंडल फूल चढ़ै तुमसौ अलि पावै ।

आक के फूल समान कवीश्वर राम तुम्हैं किहि भांति रिझावै ।"[2]

हृदयराम स्वभाव से अत्यन्त भावुक एवं संवेदनशील भी थे। सामान्य घटना का प्रभाव भी भावुक व्यक्तियों पर अधिक पड़ता है। हृदय राम ने प्रस्तुत कथा के दु:खद प्रसंगों को बहुत मार्मिक वाणी दी है --

कांपि उठ्यो सुनते अजनन्दन ज्यों जलवायु झुलावत इन्दै ।

लैहु जु लैहु कंपाय दोऊ करु और फुरो, नहिं बात नरिन्दै ।।[3]

तथा नैन चुवात रहै निशि वासर जैसे रिसात रहै घर घूट्यो ।[4]

कैकेयी से वनवास की बात सुनकर दशरथ के दु:ख का वर्णन जिस आवेग एवं मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है वह हृदय राम के संवेदनशील हृदय का परिचायक है :--

री सुन कैकयि है सुन पापिनि है सुन चंड हस्यो सुख भारी ।

बोलत बोल न बोल थक्यो मुख फाट हियो नहिं जात तिहारी ।।

खाय तँवाँर परो धर हा ! रवि हा ! शशि हा ! शिव हा !

मुख चारी ।

फैरसों काहे को प्राण निकारतु सुधै ही जी किन लैत हमारी ।।[5]

हृदयराम भल्ला प्रतिभावान् व्यक्ति थे। उन्होंने राम-कथा ही नहीं, कृष्ण-कथा-सम्बन्धी भी दो काव्य-ग्रन्थ लिखे। राम-कथा के प्रचलित कथानक में

1-- हनुमन्नाटक, हृदयराम भल्ला, अंक 1, पद्य 13 ।

2-- वही, अंक 1, पद्य 14 ।

3-- वही, अंक 1, पद्य 25 ।

4-- वही, अंक 1, पद्य 26 ।

5-- वही, अंक 2, पद्य 20 ।

भी उन्होंने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। भाषा तो स्थान-स्थान पर उनकी प्रतिभा को प्रकट करती है। सीताहरण के बाद किष्किंधा में सीता के आभूषणों की पहचान करने के समय सीता के केवल चरणों का दर्शन करने वाले लक्ष्मण के शील की व्यंजना वाल्मीकि एवं उनके उपरान्त अनेक कवियों ने की है। लेकिन शपथ के रूप में लक्ष्मण के शील की जैसी पावन आकुलता हृदयराम ने व्यंजित की है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।[1] मौलिक एवं सहज हृदयस्पर्शी व्यंजना के साथ ही हृदयराम ने घटनाओं, व वस्तुस्थिति का इतना सटीक वर्णन किया, जो उनकी प्रतिभा का लोहा मनवा लेता है --

" बात सुन जरी संग चली खिजलरी आंखि राती लोहू भरी
रोष चढ़यो नखशुप को ।"[2]

धनुष-यज्ञ के समय--

" पाग पेंच खैंच दें लपेटे फट फेंट बांध एंहें एंहें आवें पे न
टूटे हीम हामते ।।"[3]

वनवास-प्रसंग में दशरथ की अवस्था--

ज्यों तरफे रण में भट घायल त्यों करसायल सिंह चबायो ।
ज्यों बिन नीर है मीन दशा मनो काल कराल भुजंगन खायो ।।
ज्यों शशि राहु ग्रस्यो न तजो पुनि ज्यों अध फांस गरे दुख पायो ।
पौन चले रवि ज्यों जल में नृप कैकेयी के वरयों तरफायो ।।[4]

राम की असीम शक्ति की झलक एक ही छंद में प्रस्तुत कर देना हृदयराम की सशक्त लेखनी का परिचायक है --

---

1-- राम भक्ति शाखा, डा० राम निरंजन पांडे, पृ० 416 ।

2-- हनुमन्नाटक, हृदयराम भल्ला, अंक 3, पद्य 69 ।

3-- वही, अंक 1, पद्य 53 ।

4-- वही, अंक 2, पद्य 21 तथा 31, 32, 33, 78 आदि ।

सातौं सिंधु सातौं लोक सातौं ऋषि हैं सशोक सातौं रवि
घोरे जोर देखे न डरात मैं।
सातौं द्वीप सातौं ईत काँप्योई करत और सातौं मत राम
दिन आन है न गात मैं ।।
सातौं चिरजीव बरराइ उठे बार बार सातौं सुर हाइ हाइ
होत दिन रात मैं ।
सात हू पताल काल शबद कराल राम भेदे सात ताल चाल
परी सात सात मैं ।।[1]

कवि को राम और कृष्ण ही नहीं, अन्य पौराणिक व्यक्तियों का ज्ञान भी था। --

बोल निबाहन को हरिचंद निहारहु तो न रती सुख छीजै ।
और दधीचि प्रसिद्ध बली बलि बावन पावन ज्यों यश लीजै ।।[2]

हृदयराम भल्ला प्रकृति-प्रेमी भी थे। कथा-वर्णन में प्रकृति-चित्रण का अवकाश पाते ही उन्होंने प्रकृति का विस्तृत वर्णन किया है --

चंपक मौलसिरी बटताल लवंगलता करनाल सुहाई ।।
कंज कदंब जुही कदली सुर दाड़िम बेलि इला अमराई ।
केतकी हार शृंगार गुलाल सरोवर कूप महासुखदाई ।।[3]

मोर कपोत कहूं शुभ सारस चातक हंस लुभाने ।
खंजन चक्र भिल्ली बक वानर नीर कपिंजल और बखाने ।।
अंग कुरंग सदा धुनसो सब सेवत ता वन को लपटाने ।
ए सुख जानकी राम विना कवि राम न सोवत जागत जाने ।।[4]

1-- हनुमन्नाटक, हृदयराम भल्ला, अंक 5, पद्य 61 ।

2-- वही, अंक 2, पद्य 25 ।

3-- वही, अंक 6, पद्य 34 ।

4-- वही, अंक 6, पद्य 35 ।
(ख) वही, अंक 3, पद्य 50 से 54 ।

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि हृदयराम भल्ला अनन्य ईश्वर-भक्त थे। ईश्वर में असीम श्रद्धा रखते हुए भी वे अन्ध विश्वासों, आडम्बरों के विरोधी थे; प्रतिभावान् होते हुए भी अत्यन्त विनम्र थे; विभिन्न मत-मतान्तरों के मध्य रहते हुए भी एकनिष्ठ थे। वे आदर्शवादी थे, प्रकृति-प्रेमी थे, स्वभाव से कलाकार थे।

(ग) कृतित्व

हृदयराम भल्ला कृत तीन रचनाएँ आज उपलब्ध हैं। इनमें से एक का सम्बन्ध रामकथा से है, और अन्य दोनों रचनाएँ कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित दो प्रसंगों पर आधृत हैं। राम-कथा-सम्बन्धी कृति हस्तलिखित एवं मुद्रित दोनों रूपों में उपलब्ध है जबकि शेष दो कृतियाँ हस्तलिखित रूप में ही प्राप्त हैं। राम-कथा से सम्बन्धित कृति का वास्तविक नाम 'रामगीत' है, जिसे हनुमन्नाटक अथवा हनुमाननाटक नाम से प्रसिद्धि मिली है। अन्य दोनों कृतियों का नाम 'सुदामा चरित' एवं 'रुक्मिणी मंगल' है।

'सुदामाचरित' एवं 'रुक्मिणी मंगल' के विषय में डा० गोपीनाथ तिवारी सूचना देते हुए लिखते हैं, "मैंने पंजाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में इनका एक काव्यग्रन्थ 'सुदामा चरित' देखा था। इनका एक दूसरा काव्य ग्रन्थ, जो खण्डित प्रति के रूप में डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के अनुसंधान विभाग में था। इसका नाम था 'रुक्मिणी मंगल'। कविता में हृदयराम ने अपना नाम 'राम' रखा है।[1]

डा० वेदपाल खन्ना विमल के शब्दों में, "हृदयराम का लिखा हुआ एक रुक्मिणी मंगल नाटक भी कहा जाता है परन्तु यह प्राप्य नहीं है।"[2]

1-- हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 631 ।

2-- हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० वेदपाल खन्ना, पृ० 21 ।

डा० ब्रजरत्न ने 'रुक्मिणी मंगल' एवं 'सुदामाचरित' का उल्लेख करते हुए 'बालचरित' की सूचना दी है। उनके शब्दों में, "इनका रचा हुआ एक रुक्मिणी मंगल भी कहा जाता है और एक अन्य सुदामा चरित का भी इधर पता चला है जिसमें कवि का पूरा नाम हृदयराम भल्ला दिया है। किसी हृदयराम का 'बालचरित' भी खोज में मिला है। सन् 1909-11 की खोज रिपोर्ट में इस नाटक की दो प्रतियों का उल्लेख है, जिनमें एक में अन्त का भाग नहीं है और दूसरे में आरम्भ का नहीं है। प्रथम (संख्या 119) में कवि का पूरा नाम हिरदै राम आरम्भ में है और द्वितीय (संख्या 243) में अन्त में कवि का नाम राम दिया है।"[1]

डा० ब्रजरत्न ने हृदयराम कृत जिस 'बालचरित' का उल्लेख किया है वह 'हनुमन्नाटक' ही है। 'बालचरित' नाम के स्थान पर 'हनुमन्नाटक' नाम से सन् 1909-11 की खोज रिपोर्ट में क्रम संख्या 119 और 243 पर उपलब्ध है। न जाने क्यों डा० ब्रजरत्न ने इसे 'बालचरित' नाम दिया। दूसरे 'सुदामाचरित' के अन्त में भी कवि का पूरा नाम हृदयराम भल्ला नहीं मिलता, मात्र हृदय राम भल्ला मिलता है।

डा० वेदपाल खन्ना ने रुक्मिणी मंगल को न जाने किस आधार पर नाटक कह दिया है। डा० गोपीनाथ तिवारी कहते हैं, "सुदामा चरित और रुक्मिणी मंगल को कवि नाटक नहीं कहता जबकि हनुमन्नाटक को कहता है। दोनों में ऊपर से देखने पर शैली-भेद प्रतीत नहीं होता है। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि ब्रजभाषा नाटककार जानबूझ कर ही अपनी किन्हीं कृतियों को नाटक नाम देते हैं।[2]

यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि ब्रजभाषा नाटककारों की भाँति साहित्य के विद्वान, शोध-कर्ता भी अपनी रुचि के अनुसार कृति विशेष

1-- हिन्दी नाट्य साहित्य, डा० ब्रजरत्न दास, पृ० 56 ।

2-- भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य, गोपीनाथ तिवारी, पृ० 61 ।

को नाटक कहने या न कहने का आग्रह पाले रहते हैं। वेदपाल जी ने रुक्मिणी मंगल को नाटक कहा और गोपीनाथ तिवारी जी ने हनुमन्नाटक को कवि-कथित नाटक माना। सत्य तो यह है कि हृदयराम ने अपने किसी ग्रन्थ को नाटक नहीं कहा। हनुमन्नाटक का वास्तविक नाम रामगीत है, लेकिन जन-सामान्य में प्रसिद्ध होने के कारण हनुमन्नाटक नाम व्यवहृत है। लेखक ने सम्पूर्ण रचना में एकबार भी इस नाम का व्यवहार नहीं किया है। हृदयराम कृत रामगीत, सुदामा चरित एवं रुक्मिणी मंगल नामक तीन कृतियाँ ~~ऊ~~ उपलब्ध हैं। ग्रन्थों में कवि के नाम का उल्लेख एवं पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं के अभिमत इसके पोषक हैं कि तीनों कृतियाँ हृदयराम भल्ला कृत हैं। इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है :--

1: <u>हनुमन्नाटक (रामगीत)</u>

जग-प्रचलित रामकथा के आधार पर लिखी गई कृति को हनुमन्नाटक नाम से प्रसिद्धि मिली जबकि इसका वास्तविक नाम रामगीत है। (इसका विस्तृत विवेचन आगे किया गया है) इस पुस्तक में राम के विश्वामित्र के साथ जाने से कथा का प्रारम्भ और वनवासोपरान्त राम के अयोध्या-आगमन, उत्सव आदि के आयोजन के साथ ही कथा की समाप्ति की गई है। प्रस्तुत रचना में कुल 14 अंक हैं एवं 1452 पद्य हैं। प्रचलित राम-कथा में कवि ने पर्याप्त मौलिकता प्रदर्शित की है। भावों की मार्मिकता, अनुभूति की सच्चाई, भाषा का अलंकारिक प्रयोग, घटनाओं के सजीव वर्णन, संस्कृत-निष्ठ-भाषा की सुबोधता आदि मन को बरबस आकृष्ट कर लेते हैं।

इस कृति की विभिन्न हस्तलिखित एवं मुद्रित प्रतियाँ, गुरुमुखी एवं देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं। दोनों प्रकार की प्रतियों में कथा समान है। कुछ स्थलों पर अन्तर भी दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न प्रतियों का संक्षिप्त एवं तुलनात्मक परिचय इस प्रकार है :--

(अ) हस्तलिखित हिन्दी प्रतियाँ

(1) नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सन् 1904 के खोज विवरण पृष्ठ 21-22 पर प्राप्त संवत् 1939 की प्रति का विवरण इस प्रकार है --

हनुमन्नाटक बर्स, सबस्टान्स-कन्ट्री मेड पेपर, लीव्ज़ 106, साइज़ $12\frac{1}{2} \times 4\frac{1}{2}''$ लाइन्ज़- 10 आन ए पेज, एक्सटेन्ट 3600 श्लोकाज़, अपीयरन्स-ओल्ड, कम्पलीट, जनरली कोरेक्ट, करेक्टर-देवनागरी, प्लेस आफ डिपाज़िट--लाइब्रेरी आफ महाराजा आफ बनारस, हनुमन्नाटक भाषा -- ट्रांसलेशन आफ द संस्कृत हनुमन्नाटक बाय हृदयराम, सन आफ कृष्णादास ही कम्पोज़ड दिस बुक इन संवत् 1680 (1623 ए० डी०) व्हेन जहांगीर (1569 - 1627 ए.डी.) वाज़ द एम्परर. द मन्युस्क्रिप्ट इज़ डेटेड संवत् 1939 (1882 ए. डी.) बिगनिंग-- ओं स्वस्ति श्री गणेशाय नम: ।। अथ हनुमान नाटक लिख्यते कृत हिरदाराम कवि भले के ।। कवित्त ।। तीनों तीनों लोकपति प्रान पति प्राति ही सों रति - - - - - - ।। । ।।

एण्ड -- छप्पै -- संवत् विक्रम नृपति सहस षट सत अस्सीवर । चैत चांदनी रज जहांगीर सुभट पर ।। - - - - ।।

संवत् 1939 द्वितीक मासे जेष्ठव सुदि अष्टम्यां भौम दिन स्वगनलयमनग्मध्ये लिख्यतं रूपदासेन स्वयं पठनार्थी ।

(आ) खोज विवरण 1909 - 1911 के पृष्ठ 179 में प्राप्त विवरणानुसार --

हृदयराम, द राइटर आफ हनुमान नाटक आर एन अकाउण्ट आफ द रामायना इज़ एन अननोन आथर, हू वाज़ ए पंजाबी .

नैम आफ दी बुक -- हनुमान नाटक .

नैम आफ द आथर -- हृदयराम .

सबस्टान्स -- फुलस्कैप पेपर, लीव्ज़ 16, साइज़ -- 8-$\frac{1}{2}$- x 6-$\frac{1}{2}$-'' लाइन्ज़ पर पेज 13. एक्सटैन्ट 2?8 श्लोकाज़. अपीयरेन्स न्यू, करैक्टर-- देवनागरी, डेट आफ कम्पोजीशन-- नाट फाउण्ड. डेट आफ मैन्युस्क्रिप्ट-- नाट फाउण्ड. प्लेस आफ डिपाज़िट -- पंडित भानुप्रताप तिवारी, चुनार।

बिगनिंग-- ऊंकार शति गुरु प्रसाद ।। अथ हनुमान नाटक ।। कृत कवि हिरदे राम ।। श्री गणेशाय नम: ।। कवित्त-- तीनों लोकपति प्राणपति प्रीति ही सी रति - - - - ।।

मिडल --- आन निज काज कुहूँ कुहूँ जात न उठायो जात कठिन सी बात कुछ लागत है अब के ।।

एण्ड -- बिस्वामित्र विशिष्ठ रिषा नवग्रह सुभनिज गय ।।
सियजिय सुषा कबहु न लहै पर्यो करम के पाय ।।7?
।। कवित्त ।। एक ठौर भई सी ।।

सब्जेक्ट-- रामायण की कथा

(इ) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का त्रैवार्षिक विवरण सन् 1926-28 में क्रम संख्या 18? पर प्राप्त विवरणानुसार --

हनुमान नाटक -- रचयिता -- हृदयराम, कागज़-साधारण, पत्र- 1?5 आकार 9-$\frac{1}{2}$- x 6-$\frac{3}{4}$-''. पंक्ति (प्रति पृष्ठ) 12. परिमाण (अनुष्टुप) 441?, पूर्ण, रूप-प्राचीन, पद्य, लिपि-नागरी, रचनाकाल सं० 1780 = 1623 ई०। लिपिकाल सं० 1944 = 1887, प्राप्ति स्थान -- श्री राधेराम, अध्यापक प्राइमरी स्कूल, आममऊ, डाकघर--गदवारा, जिला प्रतापगढ़।

आदि -- श्री गणेशाय नम: ।। श्री रामचन्द्रायनम: ।। श्रीमते रामानुजाय नम: ।।
अथ श्री हनुमान नाटक भाषा प्रारंभ: ।। प्रथमांक: ।। कवित्त--तीनों
लोकपति प्रान पति प्रीति ही में रति - - - - ।

अन्त -- रघुपति चरित्र तिन यथामति प्रगट कर्यो सुभ लगन गण,
देहु भक्ति दान निरमय करहु जय रघुपति रघुवंशमणि ।।

333849

इति श्री कविवर हृदयराम कवि विरचिते भाषा हनुमन्नाटके श्री रघुनाथ राज्याभिषेकोनाम चतुर्दशोङ्क ।। शुभसंवत् 1944 विक्रमी लिखतं गणेश राम पाण्डेय ।।[1]

हस्तलिखित पंजाबी प्रतियाँ

'पंजाबी हथ लिखताँ दी सूची' में हनुमन्नाटक की विभिन्न प्रतियों का उल्लेख है ।

(1) क्रम संख्या 6 न. 233, भाषा विभाग पुस्तकालय, पटियाला ।

लेखक -- कवि हृदयराम भल्ला, आकार -- $6\frac{1}{4}$ x 4'', लिखित 5 x $3\frac{1}{4}$.

वेरवा -- पतरे 303, ते 304 वाँ पतरा गुम, जिस करके पुस्तक अधूरी है। प्रति सफा 9 जाँ 10 सतराँ; कागज़-देसी, लिखत-सिधी-सादी, मुढ्ले 16 पतरियाँ दा हाशिया बिना लकीराँ ते बाकी सारी पुस्तक दा हाशिया सादा ते लाल लकीराँ वाला, कई थावीं छंदा दे नाम लाल स्याही नाल लिखे होए; जिल्द टुटी होई ते अन्त विच इक पतरा दस ग्रन्थी विचों हजारे दे शब्दांदा, जो होर कलम ते लिखिया होइया है ।

समाँ -- संमत 1680 वि0, लिखारी -- नामालूम

आरम्भ -- 1 ओं श्री गणेशाय नम: ।। अथ हनुमान नाटक लिख्यते ।।
कृत कवि हृदयराम भल्ला ।। कवित्त -- तीनों लोक पति प्राण
पति प्रीति ही सों रति - - - ।

अन्त -- पतरा न. 304 गुम होण करके अन्तला पाठ नहीं मिलदा ।[2]

1-- हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का त्रैवार्षिक विवरण सन् 1926-1928 -- नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० 304-305 ।

2-- पंजाबी हथ लिखताँ दी सूची -- भाषा विभाग, पंजाब पटियाला, पृ0 614, भाग 1 ।

(2) क्रम संख्या 7 न. 437, सैंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला ।

लेखक-- कवि हृदय राम भल्ला । आकार 5-1/2 x 8"

वेरवा -- पतरे 229, प्रति सफा 17 सतरां, लिखत-प्राचीन ढंग दी, कागज़-देसी, लिखाई साफ पर किते किते अशुद्ध होण करके हड़ताल फेर के सोधी होई है; हाशिया--सादा, दो दो लकीरां, दोहीं पासीं, हरेक सफे ते छंदां दे नाम ते अंक लाल स्याही नाल लिखे होए। समां-- रचनाकाल-- संमत 1680 वि० ते नक्ल समां संमत 1840 वि० मिति मघर 1. लिखारी -- नामालूम ।

आरम्भ-- ओं सतिगुरु प्रसादि । अथ हनूमान नाटक कृत कवि हृदयराम । कवित्त--तीनों लोकपति प्राण पति - - - - ।

अन्त --- दे भगति दान निरमै करहु जै रघुपति रघुवंस मणी ।। 142
इति श्री रामगीते रावन वधहि चौदहयों अंक समापतं ।।14 ।।
इति श्री हनूमान नाटक सम्पूर्णम् लिखारी की भूल चूक बखस बाचबी ।
संमतु 1840 मिति मघर सुदी 1 दिन बुधवार पोथी पूरी होई[1]
।। 1 ।। 2 ।। 6 ।। 1 ।

इसी प्रकार इस पुस्तक की एक प्रति जो संवत् 1699 वि0 की है मोती बाग राजभवन लाइब्रेरी, पटियाला में नं0 183 पर उपलब्ध है जिसका आकार 5-1/4 x 7-3/4" और लिखाई 4-1/4 x 6-1/4" में है। कुल 414 सफे हैं, एक सफे पर 8 लाइने हैं।[2]

संवत् 1914 वि० की प्रति भाषा-विभाग पुस्तकालय पटियाला, में क्रम संख्या 105 पर उपलब्ध है। इस प्रति का आकार 7-1/4 x 5-1/4 है और

1-- पंजाबी हथ लिखतां दी सूची, भाग-1, पृ० 614-615 ।

2-- वही, पृ० 615 ।

नकल कर्ता सेवा सिंह है। कुल 29० सफे हैं और प्रति सफा 11 पंक्तियाँ हैं।[1]

इसी पुस्तकालय में क्रम संख्या 139 पर भी एक प्रति उपलब्ध है। यह 24 वैशाख संवत् 1894 वि० की है। कुल 476 सफे हैं और प्रति सफा 7 पंक्तियाँ हैं। आकार $7 \times 4\frac{1}{2}$ और लिखत $4\frac{3}{4} \times 3$ है। यह प्रति खण्डित है और प्रारम्भ के 54 पृष्ठ गुम हैं। नकल कर्ता अणोख सिंह ग्रन्थी है ।[2]

उपरोक्त वर्णन के अनुसार हनुमन्नाटक की आठ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं ।

सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति पंजाबी की है। यह संवत् 1699 की है। इसके बाद (पंजाबी) गुरमुखी लिपि में ही 4 और प्रतियाँ मिलती हैं जिनमें एक का नकल समय मालूम नहीं हो सका। इसका कारण उस प्रति का अन्तिम पृष्ठ गुम होना भी हो सकता है। शेष तीन क्रमशः 1846, 1894 और 1914 की है।

हिन्दी की सर्वप्रथम हस्तलिखित प्रति संवत् 1939 की है दूसरी प्रति संभवतः इसके काफी बाद की है। वह देखने में नई है एवं तीसरी प्रति 1944 की है ।

हिन्दी की सभी हस्तलिखित प्रतियाँ पूर्ण हैं। पंजाबी की अन्तिम प्राप्त संवत् 1914 की प्रति के प्रथम 54 पृष्ठ नहीं हैं ।

प्रकाशित प्रतियाँ

हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' की तीन प्रकाशित प्रतियाँ उपलब्ध हैं । एक देवनागरी लिपि में और दो गुरुमुखी लिपि में। । इनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा ।

1-- पंजाबी हथ लिखतां दी सूची, भाग-1, पृ० 615 ।

2-- वही, पृ० 616-617 ।

(क) यह प्रति गुरुमुखी लिपि की है। इसके संपादक, प्रकाशन-वर्ष आदि का पता नहीं चलता। 'पंजाबी प्रकाशनां दी सूची' के आधार पर भेजे गए पत्र के परिणामस्वरूप यह पुस्तक उपलब्ध हुई है। यह पुस्तक पूर्ण है। प्रयुक्त कागज इस पुस्तक को पुराना सिद्ध करते हैं।

(ख) गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित हनुमन्नाटक की यह प्रति 'सटीक' है। प्रथम बार संवत् 1955 विक्रम में छपी। प्रस्तुत संस्करण तृतीय है जो संवत् 1961 में प्रकाशित हुआ। तीन बार मुद्रित होने पर भी यह दुर्लभ प्राय: है। इसके टीकाकार पंडित योगी शिवनाथ हैं। यह पुस्तक भी पूर्ण है। आठ हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर उन्होंने इस पुस्तक का संपादन और विश्लेषण किया है।

(ग) गुरुमुखी लिपि से देवनागरी लिपि में पण्डित नन्द किशोर देव शर्मा द्वारा खेम राज श्री कृष्णदास ने अपने लिए छपवाई। इसका प्रकाशन वर्ष संवत् 1984 है। संपादक ने किस पंजाबी प्रति से इसका देवनागरीकरण किया-यह स्पष्ट नहीं है। यह प्रति भी पूर्ण है।

इन तीनों प्रतियों का 'क,' 'ख' और 'ग' अभिधान से संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

छंद स्थिति

अंक	क	ख	ग	टिप्पणी
1	115	116	115	'ख' प्रति का 33वां पद्य अन्य दोनों प्रतियों में नहीं है ।
2	88	89	89	'ख' 'ग' प्रति का अंक 2 पद्य 69 'क' प्रति में नहीं है ।
3	109	108	111	'क' प्रति में 'ग' प्रति के '11' एवं '12' पद्य नहीं हैं और 'ख' प्रति में 'ग' प्रति के 11, 12 और 53 वां पद्य नहीं है ।
4	12	12	12	समान हैं ।
5	94	93	94	'क' 'ग' प्रति का 25वां दोहा प्रक्षिप्त मानने के कारण क्रम-संख्या रहित है, ख प्रति में ।
6	116	116	116	समान हैं ।
7	34	57	34	'ख' प्रति में 'क' 'ग' प्रति के आगामी अंक के 23 पद्य उसी क्रम में लिए गए हैं, इस कारण यह अंक बड़ा हुआ है ।
8	120	94	119	'क' प्रति 'ग' प्रति से एक दोहा अधिक है। 'क' प्रति का 13वां पद्य 'ग' में लुप्त है। 'ख' प्रति के छोटा होने का कारण पूर्वोक्त 23 पद्यों का निकलना, 'ग' प्रति के '25वें' दोहे का क्रम-संख्या रहित होना (ख प्रति का 8:2) एवं 73वां पद्य न होना।
9	129	129	129	समान हैं ।
10	92	92	92	समान हैं ।
11	69	69	96	समान हैं । ?
12	58	58	58	समान हैं ।
13	111	271	271	'ख' 'ग' प्रतियों में प्राप्त चार-चार चौपाइयों को 'क' प्रति में एक माना गया है इसी लिए इतना अन्तर आया है अन्यथा कथा समान है।
14	143	160	143	'क' 'ग' प्रतियों में अनेक स्थलों पर चार चौपाइयों को एक ही क्रम-संख्या के अन्तर्गत रखा है जबकि 'ख' प्रति में उन्हें अलग-अलग क्रम देने के कारण ऐसा हुआ है ।
कुल	1290	1463	1452	

प्रक्षिप्त अंश

हनुमन्नाटक में अनेक प्रक्षिप्त पद्य प्राप्त हैं, अर्थात् अनेक दोहे-चौपाइयाँ दूसरे कवियों ने बना कर इस रचना में मिला दी हैं। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि हनुमन्नाटक के खण्डित अंश को जिसे गुरु गोबिन्द सिंह के दरबारी कवि काशीराम ने पूरा किया प्रक्षिप्त नहीं माने जा रहे हैं।

हिन्दी की प्रकाशित प्रति को पढ़ते समय कुछ पद्य 'असंगत' से लगे। यह असंगति कथा-सूत्र की दृष्टि से एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से ही मुख्यत: अनुभव हुई। लेकिन पुस्तक में इसकी कोई चर्चा न होने के कारण अनुभूति उलझी ही रही। तत्पश्चात् इस उलझन को सुलझाने के लिए सटीक प्रति की खोज की, और जाना कि वे प्रक्षिप्त अंश हैं। इस सटीक प्रति से अनेक अन्य प्रक्षिप्त अंशों का परिचय मिला।

टीकाकार ने अंक 2, पद्य 62 का अर्थ करते हुए लिखा है, "मेरे पास इस समय आठ नाटक हैं, पर यह सोरठा किसी में नहीं, सो यह लिख के बताते हैं जो देखो बाद में किसी ने बना कर डाला है इसी तरह और कवित्त सवैया बनावटी बहुत हैं।[1]

प्रक्षिप्त पद्य होने के कारण टीकाकार ने कई पद्यों को क्रम संख्या भी नहीं दी, दिखावे के लिए छाप जरूर दिया है।[2]

कितना अच्छा होता यदि टीकाकार सभी प्रक्षिप्त स्थलों का बहिष्कार कर देता और रचना अपने वास्तविक रूप में हमारे समक्ष होती। प्रक्षिप्त घोषित करते हुए भी उसने प्रसंगानुकूल होने के कारण अनेक पद्यों को नहीं निकाला, यह बात कुछ संगत प्रतीत होती है लेकिन जो पद्य कथा-विकास में बाधक थे एवं असंगत थे

1-- हनुमन्नाटक (सटीक), सं० योगी शिव नाथ, पृ० 145 ।

2-- वही, पृ० 275, 428 ।

उन्हें भी रहने दिया, यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता ।

प्रस्तुत अध्ययन हिन्दी और गुरुमुखी की प्रकाशित प्रतियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है ।

2: रुक्मिणी मंगल

'मंगल काव्यों में किसी देवी अथवा देवता का माहात्म्य वर्णित रहता है। वह देवी या देवता अपने भक्त की सब प्रकार से रक्षा करने में समर्थ होता है। कृष्ण-भक्त कवियों ने रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह-प्रसंग को मंगल भावना से अनुप्राणित करके रुक्मिणी-मंगल, रुक्मिणी परिणय, रुक्मिणी-हरण, रुक्मिणी-स्वयंवर एवं रुक्मिणी-विलास आदि की रचना की। कृष्ण और रुक्मिणी की कथा भागवत् (10/52-54) विष्णु (26/8) हरिवंश (59/6) आदि पुराणों में कतिपय अन्तर के साथ प्राप्त है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है -- कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से निश्चित होना, नारद का हस्तक्षेप, रुक्मिणी का कृष्ण को पत्र लिखना, विवाह का आयोजन, कृष्ण का विवाहोत्सव के अवसर पर रुक्मिणी का हरण और शिशुपाल का वध करना। रुक्मिणी-मंगलकारों ने प्रस्तुत कथा के विविध अंशों को अपनी कल्पना से अनुरंजित करके वातावरण-विषयक परिवर्तन भी किये हैं ।[1]

हृदयराम कृत इस रचना में 'नारद के हस्तक्षेप को छोड़ कर सम्पूर्ण प्रचलित कथानक उपलब्ध है ।

खण्डित प्रति होने के कारण रुक्मिणी के विवाह के आयोजन से लेकर कृष्ण के पराक्रम, शौर्यप्रदर्शन, शिशुपाल-वध आदि अनुपलब्ध हैं । अन्त में

1-- हिन्दी साहित्य कोश-2, धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 506-507 ।

कृष्ण द्वारा विजय प्राप्त कर, रुक्मिणी को साथ लेकर द्वारिका जाना वर्णित है। इसकी एक ही हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। उपलब्ध प्रति में कुल 106 छंद हैं, 69 से 104 तक के छंद अनुपलब्ध हैं। इस प्रकार प्रारम्भ, मध्य और अन्त प्राप्य कहे जा सकते हैं। पुस्तक कोनों से भी खण्डित है, जिस कारण कुछ शब्द भी नहीं हैं। प्रति पृष्ठ पंक्ति-संख्या 21-22 है। लिपि देवनागरी है। प्रतिलिपिकार का नाम व प्रतिलिपि-समय अज्ञात है। रचनाकाल का भी पता नहीं है। पुस्तक के अन्त में कवि का नाम हिरदैराम लिखा है। पुस्तक का प्राप्ति-स्थान वैदिक संस्थान होशियारपुर है और पाण्डुलिपि संख्या 1306 है। कुल पृष्ठ 13 हैं। कृति के आरम्भ में ईश्वर की महिमा वर्णित है। प्रारम्भ इस प्रकार है --

* ।। श्री गणेशाय नमः ।। अथ रुकमनी मंगल भाषा कवित्त लिख्यते ।। हरजू को जसु सव साधन को सर्वसु है ताहि जो न जानै नर पस अउवतार है ।। कीनी है दुआरी मास दस महि तारी ताकी कथाहू विसारी जाको मूढ उपकारी है ।। आ धि गी धुं नि का गयंद ना नि गौतम की अहिल्या पुकारि कहो कहूं न उपारि है ।। तातै सुनि लेहु घरी एक मन देहु भया हरि रुकमनी जू के व्याह को विचारि है ।।1।।

अन्त -- कृष्ण जी उवाच : नियरानी दौरी काग पाल रुकमनी जू को ऊँचे ऊँचे महल कनक से दिषाए है। दिस है हमारी हो न धाम कोऊ सारो कोऊ राजा रंक एक ठौर एक से संवाए है। वसाउरठो वल धूर ता तें भ वैर विधू सर सों अहो जानि वसुदेव लोग निव धाए है । राम कैसो राज तैसो ढोटा रामु स्यामु दोऊ रुकमनी संग लैकै पीत रथ आए है ।। 106 ।। इति श्री हिरदैराम कृत भाषा कवित्त समाप्तम् ।। रुकमनी मंगल सम्पूर्ण ।। शुभमस्तु ।। कल्याएमस्तु ।।

इस हस्तलिखित प्रति में 'हंसपद' का प्रयोग भी किया गया है एवं एक वर्ण के साथ 'उ' 'ऊ' दोनों की मात्राएं भी एक साथ लगाई गई हैं।

वर्णों की बनावट में भी परिवर्तन किया गया है। यथा 'कृ' को ' ' (पंजाबी लिपि के 'ल' के समान) 'कृष्ण' ' ' और 'कृत' को ' ' रूप में लिखा है। 'व' और 'ब' के लिए एक ही वर्ण अर्थात् 'व' का प्रयोग किया गया है। 'ख' के लिए प्राय: 'ष' का प्रयोग हुआ है। प्रति खण्डित होने के कारण कथासूत्र टूट जाता है। वर्णों की बनावट में अन्तर होने एवं शिरोरेखा के शब्दानुसार न होने के कारण प्रति को पढ़ना दुरूह-सा प्रतीत होता है परन्तु प्रयत्न करने पर कठिनाई का निराकरण हो जाता है।

3: सुदामाचरित

'सुदामा दारिद्र्य भंजन' की कथा भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय 81/32 में वर्णित है।[1] प्रस्तुत कृति में दरिद्रसुदामा का पत्नी के अत्यधिक हठ करने पर भेंट स्वरूप तंदुल लेकर द्वारिका श्री कृष्ण के पास जाना, कृष्ण द्वारा अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्यवहार करना, सुदामा का दारिद्र्य दूर करना वर्णित है।

सुदामाचरित की दो हस्तलिखित प्रतियों का परिचय उपलब्ध है। जिसमें से हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पाण्डुलिपि-कक्ष में प्राप्त प्रति को शोध छात्रा ने स्वयं देखा है। यह हस्तलिखित प्रति आवरण क्रम संख्या 5263 से 5269 में प्राप्त है। अन्तिम दस पृष्ठ अर्थात् दोनों तरफ से गिनने पर बीस पृष्ठों में यह हस्तलेख उपलब्ध है। प्रति पूर्ण है। प्रति पृष्ठ पंक्ति संख्या अनिश्चित है अर्थात् कहीं 20, कहीं 21, कहीं 23। इसी प्रकार प्रति पंक्ति अक्षर संख्या भी अनिश्चित है। यह 12 से 16 तक है। लिखाई एक ही है, पतली-मोटी दो कलमों का व्यवहार किया गया है।

हस्तलेख के कर्ता का नाम-पता अज्ञात है। इतना निश्चित है कि वह गुरुमुखी लिपि का ज्ञाता था। सादे कागज पर लाइनें खींच कर काली स्याही

से लिखा गया है। चारों तरफ हाशिया छोड़ा गया है। कागज़ पुराना एवं कमज़ोर है। प्रति का आकार 19 x 13 सेंटीमीटर है। लिपि कैथी है। कुल छंद संख्या 54 है। इस कृति के गुरुमुखी लिपि में होने का संकेत नरोत्तम दास कृत सुदामा चरित के संपादक श्री लाल सिंह चौधरी ने दिया है।[1] उपरोक्त प्रति से संभवत: वे अनभिज्ञ थे। कैथी लिपि की इस प्रति का विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है --

सुदामा चरित -- 3-- 238|5266
ग्रन्थकार-- हिरदैराम ग्रन्थकाल -- + , लिपिकार ---x
लिपिकाल -- 1750 वि०, भाषा--हिन्दी, लिपि--कैथी
आधार--माण्डपत्र, आकार 19.1x 11, पृष्ठ संख्या - 20
पंक्ति प्रति पृष्ठ -- 22, अक्षर प्रति पंक्ति -- 16,
परिमाण (अनुष्टुप)--220, दशा-पूर्ण, प्राप्ति स्थान --x

अतिरिक्त विवरण -- कवित्त छंद में सुदामा की कथा लिखी गई है। कथा में कोई मौलिकता नहीं है।[2]

गुरुमुखी लिपि में प्राप्त हस्तलिखित प्रति का विवरण इस प्रकार है :--

सुदामा चरित -- लेखक कवि हृदयराम नं. 225 मोती बाग राजभवन पुस्तकालय, पटियाला।

आकार $6\frac{1}{4}$ x $4\frac{3}{4}''$ लिखत $4\frac{1}{2}$ x $3''$

वेरवा --- पतरे 19 प्रति सफा 7 लाइनें कागज देसी लिखत साफ ते शुद्ध। किते किते अशुद्ध है। जो हाशिये ते ठीक कीति गई है। हाशिया रंगीन लकीरां

1-- सुदामाचरित नरोत्तमदास कृत-- सं० लाल सिंह, पृ० 6 ।

2-- हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची, सं० रामकुमार वर्मा, पृ० 83 ।

वालT। कंदाँ दे नाँ अते सिरलेख लाल स्याही नाल । पुस्तक सजिल्द । समाँ 1907 वि० लिखारी --नामालूम । आरम्भ -- 1 ओं सति गुरु प्रसादि अथ सुदामा चरित कृति कवि हृदयराम लिख्यते । कवित्त --माधौ जू के गुन गाइ गाइ, सुख पाय पाय, उपमा सुनाइ, सैसनाग ही से हारे हैं --- ।

अन्त -- सुदामाचरित चिंतामनि सावधान कंठ देख लीता राखि साधन सुनाइबौ ।।54।। इति श्री सुदामा चरित कृत कवि हृदयराम समाप्तं ।। सुभमस्तु मंगलम् संमत 1907 मघर बुधवार, 14 सुदि ।[1]

कैथी लिपि की प्रति के आरम्भ और अन्त का परिचय इस प्रकार है :-

आरम्भ -- श्री गनेसयानम: ।। श्री सुदामाचरित लिख्यते ।।

माधौ जु के गुन गाय गाय सुख पाय पाय औरन सुनाय
सैसनाग हसे हारे हैं ।
महिमा न जाने सुक नारद औ वालमीक ताके कहिबे को
कौन मानस बेचारे हैं ।।
जैसी मति मेरी कथा सुनि है पुरान केइ जेहि मति सुदामा
जु द्वारिका सिधारे हैं ।
तंदुल ले चले जैसे हरि जु सो मिले पुनि जैसे फिरि आये
निज दारिद बिडारे हैं ।।1 ।।

अन्त -- जाके दरबार कवि वंभु यासो बालमीकु हाहा हू हू गायन
सो कैसे करि आइबौ ।
रुद्र से महासि गारी नारद से बीन धारी रमासी नीरतकारी
सुक सो पठाइबौ ।।
बैकुंठ नैवासी आय भयो ब्रजवासी स्याम राधिका रमन
राम बीसो बीस गायबौ ।

1-- पंजाबी हथ लिखताँ दी सूची, डाइरेक्टर भाषा विभाग पंजाब, पृ० 83 ।

सुदामा चरित्र चीं तामनि सम सावधान कंठ कलि षीता राषी
साधुन सुनायबौ ।। 54 ।।

इति श्री सुदामाचरित्र कृति कवी हिदै राम समापती ।। श्री राम,
श्री राम, श्री रामा ।।

इस प्रति में पर्याप्त मात्रा में अशुद्धियाँ हैं। कैथी लिपि में लिखी जाने पर भी अनेक वर्णों की बनावट कैथी लिपि से भिन्न है। यथा 'ख', 'इ', 'ट', 'उ' आदि ।

भावगाम्भीर्य एवं भावाभिव्यक्ति के आधार पर सुदामाचरित एवं रुक्मिणी मंगल, रामगीत (हनुमन्नाटक) से पूर्व की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। दोनों कृतियों में वह प्रभविष्णुता नहीं जो रामगीत में है। पाठक को रसमग्न करने, प्रसंगों की सजीव अभिव्यक्ति में जितनी रामगीत की भाषा समर्थ है उतनी सुदामा चरित और रुक्मिणी मंगल की नहीं। रामगीत में कवि ने सूरदास के समान "जैसे उड़ी जहाज को पंछि पुनि जहाज पर आवै" जैसा भाव व्यक्त किया है। ऐसा संकेत मिलता है कि राम-भक्ति में आस्था होते हुए भी कवि ने कृष्ण से सम्बन्धित प्रसंगों को वाणी दी, परन्तु उन्हें सन्तोष न हुआ। फलत: उन्होंने रामकथा वर्णित की। हृदयराम के शब्दों में --

रामकथा कवि यथामति वरणत जग अनुसार ।।
ज्यों खग उड़ फिर धर गिरत परत न अंबर पार ।।"[1]

कवि की यह उक्ति 'एक शरण व्रत होय जप तप नेम सबै रहौ '[2] भी उनकी इस सन्तुष्टि पर प्रकाश डालती है। रुक्मिणी मंगल एवं सुदामा चरित में कवि ने अपनी एकनिष्ठता व्यक्त नहीं की है। राम के प्रति अनन्य रागवान होने के उपरान्त कवि का कृष्ण-कथा-प्रसंगों का वर्णन सम्भव प्रतीत नहीं होता। अत: इस कारण भी दोनों रचनाएँ रामकथा से पूर्व की प्रतीत होती हैं ।

1-- हनुमन्नाटक, हृदयराम, अंक 11, पद्य 1 ।

2-- वही, अंक 11, पद्य 4 ।

तीनों कृतियों के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हृदयराम भल्ला ने यद्यपि राम एवं कृष्ण दोनों को अपनी लेखनी से स्पर्श किया है, तथापि कृष्ण के प्रति उनकी वह लगन एवं रुझान दृष्टिगत नहीं होती जो रामगीत में प्राप्त है। रुक्मिणी मंगल एवं सुदामा चरित दो ग्रन्थ होते हुए भी भाव एवं भाषा की दृष्टि से अकेले रामगीत की समता नहीं कर सकते। सुदामा चरित के कुल 54 छंद हैं, और रुक्मिणी मंगल में 106 छंद हैं। ईश्वर के लोक-रक्षक रूप के उपासक हृदयराम ने कृष्ण की रास आदि शृंगारी लीलाओं का वर्णन न करके मित्र एवं भक्त-वत्सल रूप का चित्रण किया है। तदुनन्तर मर्यादापुरुषोत्तम राम का चरित भावानुकूल पाकर उन्होंने अन्य सभी देवताओं की उपेक्षा की एवं असीम प्रेम एवं भक्ति-भाव से राम की उपासना की। रचना का विस्तार अर्थात् 14 अंक एवं साढ़े चौदह सौ के लगभग छंदों का होना कवि की राम कथा के प्रति गहन रुचि को व्यक्त करता है। तीनों रचनाओं की भाषा सुबोध है, एवं ब्रज-प्रदेश की भाषा है ।

(ख) हनुमाननाटक : नाटक के निकष पर

(ख) हनुमान नाटक : नाटक के निकष पर

हृदयराम भल्ला कृत 'हनुमाननाटक' (?) हिन्दी साहित्य को पंजाब की महत्वपूर्ण देन है। पंजाब अपनी इस देन पर गर्व करता है। भाव एवं भाषा के गुणों से सम्पन्न होने पर भी इस कृति के साथ न्याय नहीं हो पाया। इस अन्याय का प्रमुख कारण प्रस्तुत कृति के वास्तविक नाम का लुप्तप्राय: होना है। 'रामगीत' के स्थान पर प्रस्तुत कृति को 'हनुमन्नाटक' या 'हनुमान नाटक' कह कर, 'नाटक' के क्षेत्र से सम्बन्धित करना, परिणामत: असफल या आंशिक रूप से सफल नाटक घोषित करना, आलोच्य रचना के सन्दर्भ में एक सामान्य सी बात बन गई । हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठा प्राप्त विद्वान भी नाम-परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न भ्रान्तियों का निराकरण न कर, पुष्ट करते रहे । फलत: नाम एवं मूल काव्य रूप से विच्छिन्न होकर प्रस्तुत कृति ने अनेक विवादों को जन्म दिया और रचना के अनुरूप सम्मान पाना इसके लिए स्वप्न बन कर रह गया ।

हृदयराम भल्ला की राम-कथाश्रित इस कृति का वास्तविक नाम 'रामगीत' है। कवि ने स्थान स्थान पर इसकी पुष्टि की है। 'रघुपति की पुनीत कथा' को गाकर प्रकट करने की इच्छा का परिणाम प्रस्तुत रचना है, जिसे हृदय राम ने 'रामगीत' का अभिधान दिया था। 'रामगीत' को 'हनुमन्नाटक' या 'हनुमान नाटक' कहे जाने का स्पष्टीकरण करते हुए, विद्वानों ने इसके मूल में हनुमान जी से लिखने की प्रेरणा प्राप्त होने एवं इसी नाम के संस्कृत नाटक पर आधारित होने की बात की

है ।[1] परन्तु डा० हरिभजन सिंह,[2] डा० सुरेशचन्द्र गुप्त[3] एवं डा० देवेन्द्र कुमार[4] ने 'रामगीत' को मौलिक कृति माना है। डा० ओझा के मतानुसार, " संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' से केवल 38 छन्दों में भावसाम्य मिलता है। हिन्दी हनुमन्नाटक में कुल 1183 छंद है। 1183 छंदों में केवल 38 छन्दों का भावसाम्य नगण्य ही है।[5] " अतः 'रामगीत' में संस्कृत हनुमन्नाटक का आधार अवश्य ग्रहण किया गया है, परन्तु कवि ने अपनी कल्पना एवं प्रतिभा का भी निर्बाध प्रयोग किया, जिससे कृति मौलिक कही गई। 'हनुमन्नाटक' के क्षीण अवलम्ब के कारण प्रस्तुत रचना 'रामगीत' से 'हनुमन्नाटक' या 'हनुमान नाटक' ही बना दी गई । इसी कारण इसे विभिन्न आक्षेपों का सामना करना पड़ा। तुलसीदास विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों का आश्रय लेकर भी जहाँ मौलिक ही कहे गये, वहाँ हृदय राम मात्र 38 छन्दों के ग्रहण के आधार पर ही अनुवादक बन गये। 'पिपलौदा के अधिपति रावत दूलह सिंह के आश्रित कवि गोविन्द राम ने संवत् 1932 से 1935 के बीच संस्कृत के हनुमन्नाटक का अनुवाद बड़ी ललित और

1-- (क) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पंचम भाग-- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० 311 ।
(ख) हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, द्वितीय संस्करण, पृ० 141
(ग) हिन्दी नाट्य साहित्य, ब्रजरत्न दास, पृ० 56 ।
(घ) भारतीय वाङ्मय, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० 551 ।
(ङ) ब्रजसाहित्य का इतिहास, डा० सत्येन्द्र, पृ० 268 ।
(च) हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना, डा० प्रेमस्वरूप, पृ० 6 ।
(छ) संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक, गंगाराम गर्ग, पृ० 332 ।
(ज) महाकोश, भाई कान्ह सिंह, पृ० 260, कालम 2 ।
(झ) पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० चन्द्रकान्त बाली, पृ०259
2-- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० हरिभजन सिंह, पृ० 189 ।
3-- भक्तिकालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त, डा० सुरेशचन्द्र गुप्त, पृ० 299 ।
4-- संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद, डा० देवेन्द्र कुमार, पृ० 142 ।
5-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 141 ।

प्रांजल भाषा में 'श्रीवर विलास' नाम से किया ।[1] उल्लेखनीय है कि 'श्रीवर विलास' नामक रचना संस्कृत नाटक का शुद्ध अनुवाद होने पर भी 'हनुमन्नाटक' न बन सकी, पर हृदयराम की कृति क्षीण आधार ग्रहण करने पर ही अपने मूल अभिधान को गंवा बैठी । थोड़े से पाने की चाह ने उसका मूल रूप ही छीन लिया। यहाँ यजुर्वेद के सोम क्रय का प्रसंग स्मरण हो आता है जहाँ व्यक्ति से उसका 'सोम' ही नहीं वरन् 'मूल्य' भी छीन कर उसे पत्थर मार कर भगा दिया जाता है ।

'रामगीत' को 'हनुमन्नाटक ' अथवा 'हनुमान नाटक' कहने का सर्वप्रथम प्रयास, किस जन-सामान्य अथवा मनीषि का है, अज्ञात् है। इतना निश्चित है कि 'रामगीत' को 'हनुमान नाटक' की संज्ञा से विभूषित करने वाला, अवश्य कोई चर्चित एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति होगा। इसका स्पष्ट प्रमाण जन-सामान्य एवं विद्वत्-समाज द्वारा आलोच्य कृति के मूल नाम को विस्मृत करना और 'हनुमान नाटक' नाम का अन्धानुकरण एवं प्रयोग है। विभिन्न सन्दर्भ ग्रन्थों --- नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'खोज विवरण' -- 1904, 1909-1911, 1926-1928; 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय; हिन्दी नाटक कोश, संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक, पंजाबी हथ लिखतां दी सूची, पंजाबी प्रकाशनां दी सूची, ए क्रिटिकल सर्वे आफ हिन्दी लिटरेचर, ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर आदि एवं शोध प्रबन्धों, आलोचनात्मक ग्रन्थों में प्रस्तुत कृति का उल्लेख 'हनुमन्नाटक' या 'हनुमान नाटक' नाम से ही उपलब्ध होता है। नाम के अनुरूप काव्य रूप को न पाकर विद्वानों ने अपनी प्रतिभा का प्रकाशन प्रारम्भ किया, अर्थात् 'नाटक' शब्द के कारण 'नाटक' की विशेषताएँ न पाकर इसे नवीन अभिधान

1-- लेख -- भाषा हनुमन्नाटक, सुरेन्द्र मोहन मिश्र, कादम्बिनी वर्ष 11, अंक 10, अगस्त 1971, पृ० 167 ।

दिए । कुछ विद्वानों ने इसे नाटकीय काव्य,[1] गेय नाटक,[2] नाटकीय प्रबन्ध,[3] अभिनेय-काव्य,[4] नाट्यगीत,[5] संवाद-काव्य या नाट्यगीत,[6] काव्यनाटक[7] आदि कहा जबकि कुछ अन्य विद्वानों ने इसके काव्य-रूप के सम्बन्ध में कोई स्थापना नहीं की।[8] कुछ विद्वानों ने इसे नाटक माना[9] जबकि अन्य विद्वानों

1-- ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर, के० बी० जिंदल, पृ० 27 ।

2-- ब्रजसाहित्य का इतिहास, डा० सत्येन्द्र, पृ० 56 ।

3-- दशमग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि, डा० रत्नसिंह जग्गी, पृ० 195 ।

4-- तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम काव्य, डा० रामलखन पांडे, पृ० 86 ।

5-- पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० चन्द्रकान्त बाली, पृ० 263

6-- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 5, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 311

7-- हिन्दी साहित्य कोश 2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 632 ।

8-- (क) हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना, डा० प्रेमस्वरूप, पृ० 356 ।

(ख) संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक, गंगाराम गर्ग, पृ० 332 ।

(ग) वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, डा० विद्या मिश्र, पृ० 30 ।

(घ) भक्तिकालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त, डा० सुरेशचन्द्र गुप्त, पृ० 211 ।

(ङ) हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डा० कृष्णलाल हंस, पृ० 238 ।

9-- 1: हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, पृ० 635 ।

2: हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 141 द्वितीय संस्करण।

3: काव्य के रूप, बाबू गुलाब राय, पृ० 107 ।

4: हिन्दी साहित्य का इतिहास--दिग्दर्शन, सोमनाथ भट्ट, पृ० 37 ।

5: ए हिस्ट्री आफ पंजाबी लिटरेचर, मोहन सिंह, पृ० 631 ।

6: (लेख) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक : पंजाब का योगदान, डा० चन्द्रशेखर । (हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन--भाषा विभाग, पृ० 96 ।

7: पंजाबी हथ लिखतां दी सूची 1, भाषा विभाग पंजाब, पृ० 614-618 ।
वही, भाग 2, पृ० 324, 456 ।

8: पंजाबी प्रकाशनां दी सूची 1, भाषा विभाग पंजाब पृ० 219 ।

9: हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण, सं० हीरालाल, पृ० 304 ।

10: हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण 1, सं० श्यामसुन्दर, पृ० 199

ने इसे प्रबन्ध काव्य, श्रव्य-काव्य घोषित किया।[1] कुछ विद्वानों ने इस रचना को नाटक मानने पर मात्र असहमति प्रकट की।[2] यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ समीक्षकों ने वास्तविकता को समझने का बिल्कुल प्रयास न किया एवं इस रचना को 'नाटक' कहना इसके रचयिता की भूल सिद्ध की।[3] यदि ये प्रयास करते तो उनके समक्ष यह स्पष्ट हो जाता कि इस रचना को 'नाटक' नाम देने का श्रेय स्वयं रचयिता को नहीं, वरन् अन्य विद्वानों की प्रतिभा को प्राप्त है। वस्तुत: 'रामगीत' जिसका प्रचलित नाम 'हनुमान नाटक' है, एक श्रव्य काव्य है। जिन विद्वानों ने इसे 'नाटक' कहने का प्रयास किया संभवत: वे इस तथ्य से अपरिचित थे कि प्रस्तुत कृति के सृजन के मूल में लेखक का उद्देश्य इसके प्रदर्शन की ओर नहीं था। न ही लेखक ने इस कृति को 'नाटक' का अभिधान दिया है। आलोच्य कृति का वास्तविक नाम 'रामगीत' है, हनुमन्नाटक नहीं। संवादों एवं वर्णन में प्राप्त रोचकता, स्वाभाविकता, लेखक की प्रतिभा, योग्यता एवं विशिष्टता की सूचक है। हृदयराम की अभिव्यक्ति इतनी सशक्त एवं मार्मिक है कि कथा, पात्र एवं घटनाएँ जीवन्त से प्रतीत होती हैं। रचना के सन्दर्भ में कृतिकार का उद्देश्य, उद्देश्य के अनुरूप प्रदत्त 'नाम' एवं 'काव्यरूप' महत्वपूर्ण हैं। इसकी अवहेलना करने का प्रयास किसी भी विद्वान ने नहीं किया है। मंचित-कृति को नाटक मानने का

11: नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'खोज विवरण' 1904, पृ० 21, 1909-11, पृ० 179 ।

12: हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य, डा० रणधीर उपाध्याय, पृ० 54 ।

1-- (क) गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० हरिभजन सिंह, पृ० 189 ।
(ख) संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद, डा० ~~देवन~~ देवन्द्र कुमार, पृ० 142 ।

2-- (क) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 197 नौवां संस्करण
(ख) हिन्दी तेलगु के मध्यकालीन रामसाहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन, डा० चावलि सूर्यनारायण, पृ० 325 ।

3-- (क) हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० 8, II संस्करण ।
(ख) भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य, डा० गोपीनाथ तिवारी, पृ० 61 ।
(ग) हिन्दी और तेलगु के मध्यकालीन रामसाहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन, डा० चावलि सूर्यनारायण, पृ० 325 ।

आग्रह करने वाले विद्वान डा० दशरथ ओझा ने भी मंचित उपन्यास, कहानी, काव्य आदि को नाटक-कोश में स्थान न देकर इस तथ्य की पुष्टि की है कि लेखक का दृष्टिकोण सर्वोपरि होता है। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में प्राप्त नाटक नामधारी कृतियों का परम्परित रूप में नाटक साहित्य में उल्लिखित होते रहना भी इस तथ्य के प्रमाण हैं। आश्चर्य है कि 'रामगीत' (हनुमन्नाटक) इस सन्दर्भ में उपेक्षणीय क्यों रहा। 'रामगीत' को 'हनुमान नाटक' कहना; 'हनुमान नाटक' नाम से ही सन्दर्भ ग्रन्थों में विवेचित करना; 'हनुमान नाटक' के उत्तरार्द्ध नाम द्वारा नाटक परम्परा में सम्मिलित करना; नाटक की कसौटी पर कस कर इसे 'काव्य-नाटक', 'नाट्यगीत' आदि संकर सम्बोधन देते देते, 'विशुद्ध नाटक' --'तत्कालीन परिप्रेक्ष्य का सफल नाटक' सिद्ध करने का प्रयास करना; कवि द्वारा ही इसे 'नाटक' कहे जाने का उल्लेख करना, हिन्दी साहित्य की विशुद्ध मनमानी है। इस मनमानी ने जिज्ञासुओं को सत्य से दूर कर, दिग्भ्रमित किया है। असत्य पर आवृत होते हुए भी, विद्वानों ने, अपने मत की स्थापना इतने ठोस एवं वजनी शब्दों में की है कि उनका मत अकाट्य लगता है। परन्तु सत्य का ज्ञान होते ही ये भारी भरकम शब्द हल्के-फुल्के प्रमाणित हो जाते हैं। किसी भी कृति की आलोचना करते समय तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि-ओझल करना जहाँ एक महती भूल समझी जाती है, वहाँ आंशिक समता के आधार पर कृति विशेष का नाम-रूप--परिवर्तन और लेखक के दृष्टिकोण की अवहेलना करना भी अमान्य एवं असहनीय भूल है ।

श्रव्य-काव्य में सर्जक कलाकार को वर्णन करने का अधिकार होता है । अत: वर्णनात्मकता श्रव्य काव्य की सहज-विशेषता है। परन्तु 'नाटक' में वर्णनात्मकता के लिए कोई स्थान नहीं होता। परिवर्तित नाम 'हनुमन्नाटक' में वर्णनात्मकता देखकर उसे जन-नाट्य शैली का प्रभाव, लोक धर्मी नाटक या स्वांग लोक नाटक शैली से प्रभावित नाटक सिद्ध करने का प्रयास करना दुराग्रह मात्र है। किसी भी कृति में वर्णनात्मकता के मध्य संवादों का प्राप्त होना उसे 'नाटक' सिद्ध नहीं करता और न ही घटनाओं की जीवन्तता। मुख्य है कृतिकार का

दृष्टिकोण यदि कलाकार अपनी कलाकृति का सृजन प्रदर्शन के दृष्टिकोण से करता है, तो कृति में प्राप्त वर्णनात्मकता उसे पूर्णरूपेण 'श्रव्य-काव्य' सिद्ध नहीं कर सकती, न ही उसे 'दृश्य-काव्य' के क्षेत्र से असंपृक्त करती है। कहानी एवं उपन्यासों में प्राप्त 'संवाद' तथा 'दृश्यकाव्य' में प्राप्त 'वर्णनात्मकता' सम्बद्ध कृति के काव्यरूपों को परिवर्तित करने में अक्षम है। कलाकार के दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर कृति के गुण-दोष, सफलता असफलता की चर्चा की जाती है। कृति के गुण-दोषों को परख किये बिना, लेखक के दृष्टिकोण की उपेक्षा करके किसी कृति को विधा-विशेष के अन्तर्गत परिगणित करना तो दूर की बात है। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि, हृदयराम भल्ला कृत 'रामगीत' इस दृष्टिदोष का प्रमुख शिकार है। जन-सामान्य की मनमानी कुछ सीमा तक सही जा सकती थी, परन्तु विद्वत-समाज की मनमानी असहनीय हो जाती है। हिन्दी नाटक-कोश में प्रस्तुत कृति का उल्लेख उचित नहीं। आगामी पीढ़ी तथा विदेशी मनीषा ने यदि स्वयं इस कृति के सन्दर्भ में निर्णय करने का प्रयास किया, तो भारतीय मनीषा के प्रति विद्यमान, उसका आदरभाव विचलित हो उठेगा, एवं अन्य नाटकों के सन्दर्भ में भी बीज रूप में सन्देह की सृष्टि हो जाएगी । प्रति वर्ष राम-कथा का अभिनय देखने के अभ्यस्त, भारतीय एवं विदेशी, इसकी अभिनेयता में सन्देह नहीं कर सकते। राम के प्रति असीम श्रद्धा राम-कथा के असंभव एवं कृत्रिम अंशों को भी बड़े सहज रूप में स्वीकार कराती है। परन्तु श्रद्धा-विहीन व्यक्ति राम-कथा में सहज विश्वास कर ही नहीं सकता। इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द के विचार उल्लेखनीय हैं। तुलसी उत्सव के अध्यक्ष बनाए जाने का प्रस्ताव पाकर प्रेमचन्द ने बनारसी दास को लिखा, "अगर आपने तुलसी उत्सव मेरे ऊपर न लगा दिया होता तो मैं जरूर आता लेकिन एक ऐसे व्यक्ति का तुलसी जयन्ती में सभापतित्व करना जिसने कभी उन्हें पढ़ा नहीं और जो उनके सम्बन्ध में कही जाने वाली अतिमानवी बातों में विश्वास नहीं करता, हास्यास्पद है। उन्होंने राम और हनुमान को देखा और वह बन्दर वाली घटना, सब खुराफात[1]

1-- प्रेमचन्द चिट्ठी-पत्री, संकलन लिप्यंतर कर्ता अमृतराय, पृ० 91 ।

1935 में कही गई यह बात आज भी श्रद्धालु जन को बुरी लग सकती है। पूर्वाग्रह विहीन होकर देखने पर इस कथा के अनेक प्रसंग कृत्रिम, असंभव एवं ~~अभिनेय~~ अनभिनेय प्रतीत होते हैं। यथा--- शूर्पणखा का आकार एवं रूप परिवर्तन; जटायु, हनुमान सुग्रीव आदि का मनुष्य रूप में वार्तालाप करना; सागर का हाथ जोड़कर प्रकट होना; सप्तताल छेदन; लंका दहन; सेतु बंधन; हनुमान को पर्वत सहित आकाश मार्ग से जाते देखकर, भरत का शर-संधान, फलत: हनुमान का बादल सदृश फट कर भूमि पर गिर पड़ना; भरत द्वारा हनुमान को तीर पर बैठा कर युद्ध स्थल पहुँचा देना आदि। कथा दीर्घ अवधि की है, अनेक घटनाओं से आपूरित है। सम्पूर्ण कथा के विभिन्न अंश पृथक पृथक नाटकों की रचना कर सकते हैं ।

रामगीत (हनुमान नाटक) में प्रचलित राम-कथा का वर्णन है। रंगमंच एवं चलचित्र द्वारा राम-कथा का प्रदर्शन भी हुआ है। तथापि 'रामगीत' (हनुमान नाटक) को नाटक नहीं कह सकते, क्योंकि इसमें 'नाटक' की मूल भावना--- नट द्वारा घटनाओं का प्रस्तुतिकरण एवं दृष्टि-सापेक्षता आदि को नकारा गया है। लेखक का उद्देश्य रामकथा का श्रवण, मनन है, प्रदर्शन नहीं। अपने दु:खों से मुक्ति पाने के लिए, वह राम-कथा सुना रहा है और राम की भक्ति कर रहा है ।

'रामगीत' की कथा के प्रमुख सूत्र इस प्रकार हैं --- विश्वामित्र का राम हेतु दशरथ के पास आना और राम-लक्ष्मण को ले जाना; ताड़का, सुबाहु आदि राक्षसों का वध; सीता स्वयंवर; परशुराम मद-खण्डन; अयोध्या आगमन; राम-वनवास; भरत का कैकेयी के प्रति रोष; भरत का वन में राम, लक्ष्मण, सीता से मिलन; भरत वापिसी; अगस्त्य मुनि से भेंट; पर्णकुटी-निर्माण; शूर्पणखा विरूपीकरण; कंचनमृगागमन; सीता हरण; राम-विरहावस्था; जटायु-रावण युद्ध; राम-जटायु मिलन; राम-लक्ष्मण की हनुमान तथा सुग्रीव से भेंट; बाली वध; हनुमान का लंका गमन, सीता को संदेश देना एवं लंका दहन; सेतु-बंधन;

विभीषण शरणागति; अंगद-रावण-संवाद; युद्ध; लक्ष्मण मूर्छा; सुषेण वैद्य द्वारा उपचार; हनुमान का जड़ी हेतु प्रस्थान; वापिसी में भरत-शर-विद्ध होकर कौशल्या सुमित्रा आदि से भेंट; भरत द्वारा हनुमान को तीर पर बैठाकर युद्ध भूमि पहुँचाना; संजीवनी जड़ी द्वारा लक्ष्मण का स्वस्थ होना; रावण वध; मन्दोदरी विलाप; विभीषण का राज-तिलक; सीता-अग्नि-परीक्षा; युद्ध-स्थल दर्शन; अयोध्या आगमन; वशिष्ठ, भरत, कैकेयी आदि से भेंट; हर्षोल्लास एवं उत्सव का आयोजन; विभिन्न देशों के राजाओं एवं पुरवासियों का राम-दर्शनार्थ आगमन ।

कथा-प्रस्तुत करने की शैली अथवा रूप श्रव्य-काव्य के समान है। कथा के सम्पूर्ण अंश वर्णनात्मक हैं। यद्यपि प्रमुख घटनाओं की प्रस्तुति संवाद-योजना द्वारा की गई है, तथापि लेखक ने उनके 'सुनने' की बात कह कर, 'दृश्य' के क्षेत्र से मुक्त कर दिया है। प्रमाण के रूप में कवि कथित कुछ अंश प्रस्तुत हैं :--

1: फुरै वाकपति सुनौसंत साधुमति तब ऐसे रघुपति के कछुक गुण गाइ हौं ।।[1]
(गुरुमुखी लिपि की प्रतियों में 'साधुमति' के स्थान पर 'साध मति' एवं 'कछुक' के स्थान 'कछुक' शब्द है ।)[2]

2: कान सुनै पहचान न काहु सौं साँच कहै कवि राम कहैया ।
जानत श्री रघुवीर के नामहि जा सुनिए सब होहिं सहैया ।।[3]
(गुरुमुखी लिपि की प्रतियों में भी अन्तर नहीं है)[4]

1-- हनुमन्नाटक भाषा, सं० नन्दकिशोर, देव, पृ० 1, पद्य 1 ।
2-- (क) हनूमान नाटक, टीकाकार योगी शिवनाथ, पृ० 2, पद्य 1 ।
(ख) हनूमान नाटक, हृदयराम, पृ० 1, पद्य 1 ।
3-- हनुमन्नाटक भाषा, सं० नन्द किशोर देव, पृ० 1, पद्य 2 ।
4-- (क) हनूमान नाटक, टीकाकार योगी शिवनाथ, पृ० 3, पद्य 2 ।
(ख) हनूमान नाटक, हृदयराम, पृ० 1, पद्य 2 ।

3: ताते सुनी रघुवीर कथा तुमसौं कहि कै तन ताप सिराऊं ।[1]

(गुरुमुखी प्रतियों में 'ताते' के स्थान पर 'तातें' शब्द है। 'तुमसौं' के स्थान पर 'तुमसो' शब्द है। शेष समान है ।[2]

4: सुनो संत मन दै सबै, ह्यां लौं है सुख शांति ।

अबहिं कथा रघुवीर की, चली और ही भाँति ।।[3]

गुरुमुखी लिपि की सटीक प्रति में प्रस्तुत पद्य निम्न प्रकार से है --

सुनहु संत मन दै सबै इहां लौं सुख सांति ।

अबहि कथा रघुवीर (नाथ) की चली और ही बात ।।[4]

('बात' के स्थान पर 'भांति' शब्द आना चाहिए था । सम्भवतः यह छापे की गलती है ।)

5: सुनहु दशा रघुवीर की ।

जिह जिह वन मैं जात, सोइ बतावत राम कवि ।।[5]

(गुरुमुखी लिपि की प्रतियों में यह पद्य समान है ।)[6]

1-- हनुमन्नाटक भाषा, सं० नन्दकिशोर देव, पृ० 4, पद्य 16 ।

2-- (क) हनुमान नाटक, टी० योगी मिश्र शिवनाथ, पृ० 18, पद्य 16 ।

(ख) हनुमान नाटक, हृदयराम, पृ० 3, पद्य 16 ।

3-- (क) हनुमन्नाटक भाषा, सं० नन्द किशोर देव, पृ० 22, पद्य 3 ।

(ख) हनुमान नाटक, हृदयराम, पृ० 22, पद्य 3 ।

4-- हनुमान नाटक, टी० योगी शिवनाथ, पृ० 106, पद्य 3 ।

5-- हनुमन्नाटक भाषा, सं० नन्द किशोर देव, पृ० 44, पद्य 49 ।

6-- (क) हनुमान नाटक, टी० योगी शिवनाथ, पृ० 200, पद्य 47 ।

(ख) हनुमान नाटक, हृदयराम भल्ला, पृ० 44, पद्य 47 ।

6:      संत सुनो मन लाय, कथा जु कछु आगे भई ।[1]

(गुरुमुखी लिपि की प्रतियों में भी यह पद्य समान है। सटीक प्रति में 'जु' के स्थान पर 'जो' पाठ मिलता है)।[2]

7:      अब आगे छल करैगो सीता के ढिग जाय ।

कथा जु आगे होयगी, संत सुनो मन लाय ।।[3]

(गुरुमुखी लिपि में 'जु' के स्थान 'सु' पाठ मिलता है) ।[4]

इस प्रकार के अनेक स्थल, जहाँ हृदयराम ने कथा सुनाने की बात कही है, 'रामगीत' में उपलब्ध है।[5] इस प्रकार बार बार कथा-वर्णन की स्पष्टत: घोषणा करने वाली कृति को, 'नाटक' कहना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।

1-- हनुमन्नाटक भाषा, सं० नन्द किशोर, पृ० 71, पद्य 94 ।

2-- (क) हनुमान नाटक, टी० योगी शिवनाथ, पृ० 323, पद्य 93 ।

(ख) हनुमान नाटक, हृदयनाथ भल्ला, पृ० 73, पद्य 94 ।

3-- हनुमन्नाटक भाषा, सं० नन्द किशोर देव, पृ० 135, पद्य 128 ।

4-- (क) हनुमान नाटक, टी० योगी शिवनाथ, पृ० 553, पद्य 128 ।

(ख) हनुमान नाटक, हृदयराम, पृ० 139, पद्य 128 ।

5-- (क) हनुमन्नाटक, हृदयराम, अंक 1, पद्य 4 ।

(ख) वही, अंक 1, पद्य 6 ।

(ग) वही, अंक 1, पद्य 17 ।

(घ) वही, अंक 6, पद्य 114 ।

(ङ) वही, अंक 10, पद्य 90-92 ।

(च) वही, अंक 11, पद्य 1 ।

(छ) वही, अंक 11, पद्य 5 ।

(ज) वही, अंक 11, पद्य 67 ।

(झ) वही, अंक 11, पद्य 69 ।

( ) वही, अंक 12, पद्य 57-58 ।

(ट) वही, अंक 13, पद्य 268-271 ।

(ठ) वही, अंक 14, पद्य 74 ।

(ड) वही, अंक 14, पद्य 142 ।

'रामगीत' को 'हनुमान नाटक' या 'हनुमन्नाटक' कहने से पूर्व नाम सम्बन्धी इन तथ्यों की प्रस्तुति आवश्यक है :-- लेखक ने प्रत्येक अंक के अन्त में 'रामगीत' नाम का उल्लेख किया है, 'हनुमन्नाटक' या हनुमान नाटक' का नहीं। यथा :--

1: (क) प्रति-- इति श्री रामगीते सीता वैवाहिको नाम प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ।
(ख) प्रति अनुपस्थित है ।
(ग) प्रति--इति श्री रामगीते सीता विवाहि नाम प्रथम अंक ।

2: (क) --इति श्री रामगीते श्री रामचन्द्र वियोगी नाम द्वितीयोऽङ्क ।
(ख) --इतिश्री रामगीते रामचन्द्र वियोग दुतियो अंकः ।
(ग) --इति श्री रामगीते रामचन्द्र वियोग दुतीया अंक ।

3: (क) -- इति श्री रामगीते कपटमृगागमनं नाम तृतीयोऽङ्कः ।
(ख) --इति श्री रामगीते बन को आइबो नाम तृतीयो अंकः ।
(ग) -- इति श्री रामगीते कपट मृग आइबो नाम तृतीय अंक ।

4: (क) --इति श्री रामगीते सीताहरणं नाम चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।
(ख) --अनुपस्थित है ।
(ग) --इति श्री रामगीते सीता हरन नाम चतुर्थो अंक ।

5: (क) --इति श्री रामगीते बालि वधो नाम पंचमांकः समाप्तः ।
(ख)-- इति श्री रामगीते बालि वध नाम पंचमो अंक समापतः ।
(ग) -- इति श्री रामगीते बाली बधह पंचमों अंक ।

6: (क) -- इति श्री रामगीते हनुमल्लंकादहनं नाम षाष्ठांकः समाप्तः ।
(ख) -- इति श्री रामगीते लंकाजार आइबो छठो अंक समापतः ।
(ग) -- इति श्री राम गीते हनुमान लंका जार आइबो छठमों अंक ।

7: (क) -- इति श्री रामगीतै सिंधु सेतु बंधनं नाम सप्तमांक: समाप्त: ।
(ख) -- इति श्री रामगीतै समुंद्र बांध पार जाइबौ नाम सपतमौ अंक समापतम् ।
(ग) -- इति श्री रामगीतै सिंधु सेतु बांधबौ सपतमौं अंक ।

8: (क) -- इति श्री रामगीतै रावणांगदसंवादो नामाष्टमोऽङ्क: ।
(ख) -- इतिश्री रामगीतै अंगद समौध असटमौ अंक समापत: ।
(ग) -- इति श्री रामगीतै अंगद रावन संबाद नाम अषाटमौं अंक ।

9: (क) -- इति श्री रामगीतै मंत्र्युपदेशो राम नवमोऽङ्क: ।
(ख) इ--इतिश्री रामगीतै मंत्री उपदेस नवमौ अंक: समापत: ।
(ग) -- इतिश्री रामगीतै मंत्री उपदेस नवमौ अंक ।

10: (क) इति श्री रामगीतै रावणप्रपंचरचनो नाम दशमोऽङ्क: ।
(ख) --इति श्री रामगीतै रावण छल बरननं नाम दसमौ अंक: ।
(ग)-- इति श्री रामगीतै रावन प्रपंच नाम दसमौं अंक ।

11: (क) -- इति श्री रामगीतै कुंभकर्ण वधो नाम एकादशोऽङ्क: समाप्त: ।
(ख) -- इति श्री रामगीतै कुंभकरन बध एकादसौ अंक: ।
(ग) -- इतिश्री रामगीतै कुंभकान बधह एकादसौ अंक ।

12: (क) -- इति श्री रामगीतै इन्द्रजीत वधो नाम द्वादशोऽङ्क: समाप्त: ।
(ख) -- इतिश्री रामगीतै मेघनाद वध द्वादशौ अंक समापत: ।
(ग)-- इति श्री रामगीतै इन्द्रजीत वध द्वादसमौं अंक ।

13: (क) -- इतिश्री रामगीतै लक्ष्मणजीवनं नाम त्रयोदशांक समाप्त: ।
(ख) -- इतिश्री रामगीतै लछमन ज्याइबौ तेरहवौं अंक ।
(ग)-- इति श्री रामगीतै लछमन ज्याइबौ नाम त्र्योषामौं अंकु ।

14: (क) ~~(ग)~~ इतिश्री कविवरहृदयराम कवि विरचिते भाषा हनुमन्नाटके

(ख) -- इति श्री रामगीते हनुमान नाटके रावन बध चौधवाँ अंक समापत:।

(ग) -- इतिश्री रामगीते हनुमान नाटक चौदसमों अंक सपूरण ।

(क) प्रति की अन्तिम पुष्पिका में ही 'हनुमन्नाटक' नाम प्रयुक्त हुआ है। पुष्पिका का प्रारम्भ ही इसे किसी अन्य प्रतिभावान् (?) की देन सिद्ध करता है। यह पुष्पिका कवि प्रदत्त नहीं है। इस प्रति के सम्पादक ने इसके 'रामगीत' नाम को यथार्थ मानते हुए भी अन्तिम पुष्पिका में प्राप्त हनुमन्नाटक शब्द के प्रयोग पर कोई टिप्पणी नहीं दी।[1]

(ख) एवं (ग) प्रति की अन्तिम पुष्पिकाओं में 'रामगीत' नाम के पश्चात् 'हनुमान नाटक' नाम व्यवहृत है । '(ख) प्रति में टीकाकार ने पुष्पिकाओं की टीका देते समय 'रामगीत' के स्थान पर 'हनुमान-नाटक' का प्रयोग समस्त अंकों के अन्त में किया है। देवनागरी-लिपि में प्रकाशित प्रति का आधार गुरुमुखी प्रति है, (परन्तु संपादक ने इसका निर्देश नहीं किया कि देवनागरी रूपान्तर का आधार कौन-सी गुरुमुखी लिपि की प्रति है।) सम्भवत: इसी कारण हिन्दी प्रति की अन्तिम पुष्पिका में 'रामगीत' नाम के स्थान पर 'हनुमन्नाटक' नाम प्रयुक्त हुआ है ।

प्रस्तुत कृति की हस्तलिखित प्रतियों में सैन्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला में प्राप्त, संवत् 1840 की प्रति की अन्तिम पुष्पिका के अनुसार, "इति श्री रामगीते रावण बधहि नाम चौदहमो अंक समाप्तं।।14।। इति श्री हनुमान नाटक सम्पूर्णम्।। लिखारी की भूल चूक बखस बाचणी ।[2]

1-- हनुमन्नाटक भाषा, सं० नन्दकिशोर देव, पृ० 1, प्रस्तावना ।

2-- (क) पंजाबी हथ लिखतां दी सूची (गुरुमुखी लिपि) 1, पृ० 614 ।

(ख) द्रष्टव्य मोतीबाग राजभवन लाइब्रेरी, पटियाला, क्रम संख्या 183 पर प्राप्त प्रति ।

(ग) भाषा विभाग पुस्तकालय पटियाला, क्रम संख्या 85 एवं 105 पर प्राप्त प्रति ।

भाषा विभाग पुस्तकालय, पटियाला में क्रमसंख्या 139 पर प्राप्त संवत् 1894 की प्रति के अनुसार अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है -- "इति श्री रामगीता रघुपति कुमार जीत धरि आइबौ नाम चौदहमौ अंक समापतम् ।। 14।।[1]

इसी पुस्तकालय में क्रम संख्या 52 पर प्राप्त प्रति में छठे अंक का नाम इस प्रकार है -- "इति श्री रामगीते हनुमान लंका फिरी आइबौ सप्तम अंक समाप्तम् ।"[2]

इन प्रतियों के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि अंक विशेष का नाम देने, प्रदत्त नाम में आंशिक परिवर्तन करने में प्रतिलिपिकारों ने अवश्य अपनी योग्यता (?) का प्रयोग किया है, परन्तु कृति का नाम 'रामगीत' ही रहने दिया। जन-सामान्य में इस कृति की हनुमन्नाटक नाम से प्रसिद्धि होने के कारण प्रारम्भ में, प्रतिलिपिकारों ने चौदहवें अंक की समाप्ति की घोषणा के उपरान्त 'इति श्री हनुमान नाटक सम्पूर्णम्' कहा। प्रकाशित गुरुमुखी लिपि की प्रतियों में रामगीत के साथ 'हनुमान नाटक' नाम का प्रयोग हुआ और गुरुमुखी लिपि से देवनागरी लिपि में परिवर्तित प्रति में, चौदहवें अंक में 'रामगीत' के स्थान पर 'हनुमन्नाटक भाषा' ही रह गया। 'हनुमान नाटक' या 'हनुमन्नाटक' नाम का यह क्रमिक प्रयोग कृति की इस नाम से प्रसिद्धि का ही परिणाम है। सन्तोष इसी बात का है कि प्रतिलिपिकारों या सम्पादकों ने 'हनुमान नाटक' या 'हनुमन्नाटक' नाम का व्यवहार प्रारम्भ में 'अथ हनुमान नाटक लिख्यते' के रूप में या अन्त में पूर्व-वर्णित पद्धति से ही किया है। कृति के मध्य कहीं भी 'हनुमन्नाटक' या 'हनुमाननाटक' नाम को 'रामगीत' नाम का स्थान नहीं दिया गया। कृति का वास्तविक नाम जिस प्रकार लुप्तप्राय: है, उसे देखते हुए कृति के मध्य से भी 'रामगीत' शब्द का हटना आश्चर्यजनक नहीं होगा। (यद्यपि पण्डित योगी

1-- पंजाबी हथ लिखतां दी सूची, भाग 1, भाषा विभाग, पटियाला, पृ॰ 617 ।

2-- वही, भाग 2, पृ॰ 324 ।

शिवनाथ ने टीका करते समय 'रामगीत' के स्थान पर 'हनुमान नाटक' शब्द का व्यवहार सभी पुष्पिकाओं में किया है। सम्भवत: इसी कारण प्रथम व चतुर्थ अंक की मूल पुष्पिकाओं का उल्लेख भी नहीं हुआ है।) कृति के साथ इतनी मनमानी किये जाने पर भी, उसका वास्तविक नाम लुप्त नहीं हो सकता, क्योंकि कवि ने कृति के मध्य कथा-वर्णन में भी 'रामगीत', 'रामचन्द्रगीत' का व्यवहार किया है। यथा --

1: सु ऐसौ रामचन्द्रगीत तुम्हैं है सुनायबौ ।[1]
2: रामगीत मन लाय, सुनौ सुनावत रामकैं ।[2]
3: रामचन्द्रगीत किये चौदही अंक ---- ।[3]

हृदयराम ने अपनी रचना को 'रामगीत' नाम दिया था, हनुमान नाटक या हनुमन्नाटक ~~पश्चात~~ पश्चात्वर्ती विद्वानों की देन है। 'रामचन्द्रगीत' एवं 'रामगीत' नाम का व्यवहार कवि की रुचि के परिचायक हैं। 'रामचन्द्रगीत' को 'रामगीत' एवं अपने नाम को भी 'हिरदै राम' के स्थान पर 'राम' कहना इस बात के सूचक हैं कि कवि का रुचि संक्षेप की ओर थी, यद्यपि कथा पर्याप्त विस्तार सहित वर्णित है। अत: इस कृति को 'रामगीत' कहना ही युक्तिसंगत एवं उचित है।

इस विवेचन द्वारा डा० सोमनाथ का यह कहना कि, "यह (हनुमन्नाटक) नाम रखते समय लेखक अपनी पुस्तक के मूल रूप को बिल्कुल भुला बैठा और उसे यह ध्यान ही नहीं रहा कि रचना किसी भी दृष्टि से नाटक नहीं कहला सकती।"[4] तथा डा० गोपीनाथ तिवारी की धारणा कि, " 'सुदामा चरित्र' और

1-- हनुमन्नाटक, हृदयराम भल्ला, अंक 1, पद्य 17 ।
2-- वही, अंक 11, पद्य 67 ।
3-- वही, अंक 14, पद्य 142 ।
4-- हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ, पृ० 8, द्वितीय संस्करण ।

'रुक्मिणी मंगल' को कवि नाटक नहीं कहता जबकि 'हनुमन्नाटक' को कहता है। दोनों में ऊपर से देखने पर शैली भेद प्रतीत नहीं होता है। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि ब्रजभाषा नाटककार जानबूझ कर ही अपनी किन्हीं कृतियों को नाटक नाम देते हैं।[1] इसके अतिरिक्त इसे गेय-शैली, स्वांग शैली या प्रबन्धात्मक शैली का नाटक कहने का औचित्य भी समाप्त हो जाता है। संक्षेप में यह श्रव्य काव्य है और कथावर्णन में प्राप्त नाटकीयता, सजीवता इसका अतिरिक्त गुण है।

रामगीत अर्थात् हनुमान नाटक की रचना क्योंकि लेखक ने प्रदर्शन अथवा नाटक के दृष्टिकोण से नहीं की इस कारण उसमें नाटकीय नियमों का पालन भी नहीं किया गया। कथावस्तु,-संगठन नाटकीय कृति के अनुरूप नहीं है। कार्यावस्थाओं का निर्वाह प्रस्तुत कृति में नहीं हुआ है। अर्थ-प्रकृतियों सन्धियों आदि की खोज करना ही व्यर्थ है। रामगीत में चार लघु कथाएँ प्राप्त होती हैं। चारों के नायक दशरथ-पुत्र राम ही हैं। प्रथम राक्षसों से पीड़ित विश्वामित्र का दशरथ के पास राम-हेतु आना और राम का विश्वामित्र के साथ जाकर राक्षसों का नाश करने में सफल होना। द्वितीय विवाहार्थी राम का सीता स्वयंवर में जाना, धनुष भंग कर सीता से विवाह करना। तृतीय परशुराम का मार्ग में राम से वाक् युद्ध करना राम का उसे पराजित करना। चतुर्थ कथा अभिषेक से लेकर वनवास, सीताहरण एवं पुनः अयोध्या आगमन तक की है। चार प्रसंग होने से प्रस्तुत कथा-वस्तु में बार बार कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों एवं संधियों को खोजना होगा जो नाटकीय कथावस्तु संगठन के अनुकूल नहीं है। वस्तुतः कृतिकार अपनी कृति को नाटकीय कृति के रूप में प्रस्तुत नहीं कर रहा था। संक्षेप में यह कहना असंगत न होगा कि प्रस्तुत कृति किसी भी प्रकार से नाटकीय कृति नहीं कही जा सकती।

1-- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, डा० गोपीनाथ तिवारी, पृ० 61, संस्करण 1959 ।

प्रश्न उठता है कि डा० दशरथ ओझा ने प्रस्तुत कृति को नाटक सिद्ध कर, नाटक-कोश में जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है, क्या वह उचित है ? उत्तर नकारात्मक है। स्वाभाविक उलझन होती है कि 'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास' पर शोधकर्ता, 'नाटक-कोश' प्रस्तोता ने प्रस्तुत कृति के सन्दर्भ में ऐसी मान्यता क्यों कर स्थापित की, जबकि वे इसके वास्तविक नाम 'रामगीत' से परिचित थे। सम्भवत: रामकथा के मंचन से परिचित एवं 'रामगीत' में प्राप्त संवाद-योजना के कारण, उन्होंने इसे नाटक सिद्ध करने का प्रयास किया। 'रामगीत' को नाटक मानने का उनका आग्रह, नाटक-कोश में विश्वास में परिणित हो गया। 'रामगीत' (हनुमन्नाटक) आदि नाटकों का उल्लेख करते हुए, उन्होंने लिखा, "हिन्दी के प्रथम उत्थान की कृतियाँ जिनका उल्लेख किया गया है, हिन्दी के मौलिक नाटक हैं। ऐसी कोई युक्ति नहीं प्रतीत होती, जिससे इनको नाटक न माना जाए।"[1] अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए वे आगे लिखते हैं, "आलोच्यकाल के नाट्यकारों ने समाज की स्थिति को समझा। उन्होंने अनुभव किया कि पण्डित समाज जन-नाट्य की शैली से पराङ्मुख हो रहा है और साधारण जनता संस्कृत नाटकों के भाव गाम्भीर्य से वंचित रह जाती है। अतएव ऐसे नाटकों की आवश्यकता जो दोनों वर्गों को रमणीय एवं उन्नायक सिद्ध हों।

श्री बनारसीदास, हृदयराम तथा गुरुगोबिन्द सिंह प्रभृति नाट्यकारों ने युग की इस मनोवृत्ति को समझा और तदनुकूल नाटक-साहित्य का सृजन किया। यही कारण है कि आलोच्य नाटकों में भावधारा तो संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर चलती रही किन्तु शैली जननाट्य की ही अपनाई गई।"[2] जननाट्य शैली, प्रबन्धात्मक शैली या स्वाँग लोक नाटक शैली का नाटक, 'रामगीत' (हनुमन्नाटक) को माने जाने का अनौचित्य स्पष्ट किया जा चुका है। अत: पुनरुक्ति अनावश्यक है।

1-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 134, सं० 1970 ।

2-- वही, पृ० 136 ।

हिन्दी-नाटक-कोश में आलोच्य कृति का परिचय इस प्रकार दिया गया है :--

हनुमन्नाटक भाषा (रामगीता) -- लेखक -- हृदयराम भल्ला
(सन् 1892, पृ० 525)
प्रकाशक -- भारत जीवन प्रेस, काशी ।
पात्र -- पुरुष 22, स्त्री 6, अंक 14 दृश्य रहित ।
घटनास्थल-- अयोध्या, विश्वामित्र का आश्रम, जनकपुरी, स्वयंवर सभा । [1]

हिन्दी नाटक कोश में डा० दशरथ ओझा प्रदत्त प्रस्तुत कृति का परिचय भी अनुचित है। नाटकानुरूप कृति का यह परिचय अपूर्ण ही नहीं असत्य भी है। कथा में 22 पुरुष पात्र तो प्रमुख ही हैं। सीता स्वयंवर में उपस्थित राजा, रावण के मन्त्री, सभा, युद्ध राज्याभिषेक के अवसर पर उपस्थित भाट आदि भी कथा-विकास में सर्वथा उपेक्षणीय नहीं हैं। स्त्री पात्र अत्यल्प होते हुए भी 6 से अधिक हैं। यथा-- कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता, मन्दोदरी, शूर्पणखा, त्रिजटा, सुशर्मा (सरमा), अगस्त्य मुनि की पत्नी, प्रभंजनी नामक राक्षसी ।

स्त्री-पुरुषों की भीड़ को, जो सीता स्वयंवर एवं राम वनवास तथा राम वनवासोपरान्त अयोध्या आगमन पर उपस्थित है, छोड़ दिया गया है। जटायु नामक ~~खग~~ पक्षी (गीध), हनुमान, अंगद, सुग्रीव, बाली नामक वानर एवं वानर-सेना का कथा-विकास में प्रमुख सहयोग है जिसे किसी प्रकार भी दृष्टि ओझल नहीं किया जा सकता।

हिन्दी नाटक कोश में मात्र चार घटनास्थलों का उल्लेख यह प्रकट करता है कि कथा सीता स्वयंवर के उपरान्त ही समाप्त हो जाती है। जबकि स्वयंवर

1-- हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, पृ० 635 ।

उपरान्त मार्ग में परशुराम-राम संवाद का स्थल, कोप-भवन, वन, अगस्त्य मुनि का आश्रय, पर्णकुटी, लंका, अशोक-वाटिका; रावण का सभा कक्ष; युद्ध-स्थल आदि अनेक घटना-स्थल कथा की पूर्णता के लिए आवश्यक है ।

कथा को '14 अंक' एवं 'दृश्य-रहित' कहना, ऐसा लगता है कि कवि की कृति का परिचय यथावत् दिया जा रहा है। जबकि सत्य इसके विपरीत है। अन्यथा पुरुष स्त्री पात्रों की मनमानी संख्या निर्धारित करना, अमानवीय पात्रों की उपेक्षा करना, सम्पूर्ण घटनाचक्र को विस्मृत कर मात्र प्रथम अंक के घटनास्थलों का उल्लेख करना और सबसे बढ़कर, इसे 'रामगीता' कहते हुए भी नाटक-कोश में उल्लिखित करना कृति को अनचाहा, अनावश्यक सम्मान (?) देना नहीं, तो और क्या है ?

नाटक, क के सम्बन्ध में डा० दशरथ ओझा का दृष्टिकोण सर्वस्वीकृत है। उनके शब्दों में, "सत्य तो यह है कि नट की क्रिया का नाम नाटक है। इसलिए नाटक का मुख्य लक्षण है क्रियाशीलता, जिसकी अभिव्यक्ति का साधन है अभिनय। अत: अभिनय नाटक का प्राण है।"[1] अपने दृष्टिकोण की व्यापकता का परिचय देते हुए वे कहते हैं, "यदि श्रव्य-काव्य का अभिनय के रूप में प्रदर्शन किया जाए तो उसे दृश्य-काव्य मानने में क्या आपत्ति हो सकती है ।"[2]

डा० ओझा स्वीकृत कसौटी पर भी 'रामगीत' नाटक सिद्ध नहीं होता। हृदयराम भल्ला ने इसकी रचना अभिनय के उद्देश्य से नहीं की, न ही कथा के प्रदर्शन या दर्शन का उल्लेख किया है। इस रचना के अभिनीत होने का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। रामकथा के यथामति वर्णन की बात लेखक ने अनेकबार

1-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० ओझा, पृ० 132, पाँचवाँ संस्करण ।
2-- वही, पृ० 83 ।

दोहराई है। रामकथा को 'श्रव्य-काव्य' सिद्ध करने वाले पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत कृति में उपलब्ध हैं। कथा कहने-सुनने के विस्तृत-विवेचन की चर्चा की जा चुकी है।

भाषा

'रामगीत' की भाषा शैली भी नाटकानुरूप नहीं है। श्रव्य-काव्य के अनुरूप भावों को अलंकृत अभिव्यक्ति प्रदान की गई। अलंकृत भाषा में विवेचित भावों का प्रदर्शन किसी प्रकार भी संभव नहीं। कृति की यह भाषा भी उसे प्रबन्ध-काव्य अथवा श्रव्य-काव्य बना देती है। कुछ उदाहरण प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत हैं--

(1) " काँप उठी सुनते अजनन्दन ज्यों जलवायु हुलावत इन्हें ।

-- -- -- -- -- -- -- -- --

यों ऋषि लै निकस्यो रघुवीरहि कंज की बास ज्यों एंव मलिन्दे ।"[1]

(2) "ता दिनते न सुहाय कछू बिन रामहि ज्यों वनमें जन लूट्यो ।।

शीश धुनै धुन बात कहै रवि के कुल ते सुख जानकु छूट्यो ।

नैन चुवात रहे निशि वासर जैसे रिसात रहे घट फूट्यो ।।[2]

(3) " मानहु पौन प्रचंड बली कदली बन से धरनी पर मै ।।"[3]

(4) राजऋषि आगे रघुवीर देख राजा जिते फीके सब लोग जैसे दीपरवि धामते ।

अंबर बनावत-स्वयंवर के राजा जितें कंबर से ह्वै गए पितंबर से रामते ।।"[4]

1-- हनुमन्नाटक भाषा, हृदयराम भल्ला, अंक 1, पद्य 25 ।

2-- वही, अंक 1, पद्य 26 ।

3-- वही, अंक 1, पद्य 34 ।

4-- वही, अंक 1, पद्य 53 ।

(5) "जैसे अहि मोरतै नशानी चोर भोरतै कुरंग सिंह शोरतै
तुषार जैसे घामतै ।
अन्धकार दीपतै वियोगी तिय समीपतै ज्यों कातिक के
मेघ नभ जात सुरधामतै ।।
दारिद ज्यों पारसतै काल ज्यों सुधारसतै पापनको जाल
जैसे एक हरिनाम तै ।
जैसे एक लोभतै अनेक गुन भाजें राम तैसे आज चल्यो है
परशुराम रामतै ।।"[1]

(6) "नैक न नयन सिराहिं, यों तड़कै लंकापति ।
ज्यों थोरे जलमाहिं, जेठ मीन दादुर बसै ।।"[2]

(7) "फिर बोली मन्दोदरी, कुम्हलानी सब गात ।
ज्यों रोवे तम रात को, जानत रवि की बात ।।"[3]

(8) "आय गयो ढिग ही कपटी जिय जानहु फूल कनेर फलासी ।
डीठ मिली फासों जबही तब राहु ग्रस्यो मनो चन्द्रकलासी ।।"[4]

(9) "मेघनाथ बिन यों भये, ज्यों केहर बिन पाय ।।"[5]

आदि अलंकृत वर्णन तथा अनेक अनात्मीय प्रसंग मिलकर भी रामगीत को पाठ्य सिद्ध करते हैं। उदाहरणतया--

(1) चाप कह्यो बड़े पाप के हाथ रह्यो शिव आप निकंदन जू ।"[6]

1-- (क) हनुमन्नाटक भाषा, हृदयराम भल्ला, अंक 1, पद्य 113 ।
(ख) वही, अंक 2, पद्य 70 । (ग) वही, अंक 7, पद्य 1 ।

2-- वही, अंक 3, पद्य 85 ।

3-- वही, अंक 3, पद्य 99 ।

4-- वही, अंक 4, पद्य 11 ।

5-- (क) वही, अंक 13, पद्य 5 । (ख) वही, अंक 14, पद्य 62 ।
(ग) वही, अंक 13, पद्य 2 ।

6-- वही, अंक 1, पद्य 63 ।

(2) "देवन जाइ कह्यो सुरराजहि राम भए जग लेहू बधाई ।"[1]

(3) "ताही दिन निरख्यो सबै, वरुण विरंचि सुरेश ।
मन हरखे बिलखे बहुरि, फणी कुबेर महेश ।।"[2]

(4) "पांय तो पताल धर शीश तो अकाश कर एक एक बांह कोस
डेढ़ डेढ़ सों गई ।।"[3]

(5) शिव विरंचि देखत सबै सुरगण अरु सुरराइ ।
अग्नि लपट में लपट-सी गई सिय लपटाई ।।"[4]

इस प्रकार के अनेक स्थल प्रस्तुत कृति में उपलब्ध हैं। नाम के अतिरिक्त कथा सुनाने एवं सुनने का आग्रह, अलंकृत वर्णन, अनाटकीय स्थल आदि इस बात के प्रमाण हैं कि हृदयराम ने रामकथा की आवृत्ति प्रदर्शन के दृष्टिकोण से नहीं की। इस कृति को नाटक कहना एवं नाटक सिद्ध करने का प्रयास करना औचित्य की सीमा का अतिक्रमण करना है। रामकथा का अंक-विभाजन भी रामगीत को अनाटकीय सिद्ध करता है। अंक-विभाजन शास्त्रानुकूल नहीं है। प्रथम अंक में अनेक दिनों की ही नहीं, वर्षों की कथा को हृदयराम ने प्रस्तुत किया है। विभिन्न अध्यायों को अंक कह देने मात्र से कृति नाटक नहीं बन जाती ।

प्रस्तुत कृति में नाटक-विरोधी इतने प्रमाणों के होते हुए भी डा० चन्द्रशेखर का यह कथन अनुचित नहीं माना जाएगा कि,- " हिन्दी-नाटक की नींव में यह हमारी पहली महत्वपूर्ण ईंट है, जिसका जवाब किसी भी पत्थर से नहीं दिया जा सकता। इस ईंट के आगे हर पत्थर हलका पड़ जाएगा और इतिहास

1-- हनुमन्नाटक भाषा, हृदयराम भल्ला, अंक 1, पद्य 35 ।

2-- वही, अंक 1, पद्य 30 ।

3-- वही, अंक 3, पद्य 79 ।

4-- वही, अंक 14, पद्य 110 ।

में तिरने की बजाय डूब जाएगा । यह कथन ईंट[1] 'पत्थर' जैसे ठोस तत्वों के होते हुए भी अत्यन्त हलका है। ईंट का जवाब पत्थर से तभी दिया जाएगा जब वह ईंट उपयुक्त स्थल पर होगी। अनुचित स्थल पर पड़ी ईंट को सही जगह पर रख कर ही गुण-दोष रूपी पुष्प या पत्थर ईंट को प्रदान किये जा सकते हैं। प्रथम आवश्यकता है, ईंट को ठीक स्थान पर लाने की एवं तत्पश्चात् आलोचना रूपी पत्थर का प्रयोग करने की ।

डा० चन्द्रशेखर का उक्त वक्तव्य उनके स्वयं के अध्ययन, मनन का परिणाम प्रतीत नहीं होता है। चर्चित विद्वानों के दृष्टिकोण के अन्धानुकरण के कारण ही वे इस भ्रान्ति का शिकार हुए हैं। उनकी भ्रान्ति का निराकरण करते हुए इतना ही कहा जा सकता है कि "हिन्दी' नाटक की नींव' में पंजाब की 'ईंट' किसी 'पत्थर' की अपेक्षा नहीं रखती। अपितु यह 'ईंट' स्वयं ही गलत नींव में रखे जाने का दावा कर रही है। अनेक गुणों से सम्पन्न होने पर भी निरन्तर उपेक्षित एवं अपमानित हो रही है। पंजाब की यह देन हिन्दी श्रव्य काव्य की परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है ।

कथा-वर्णन की प्रवृत्ति, भाषा, नामकरण आदि द्वारा यह स्पष्टत: प्रमाणित हो गया है कि प्रस्तुत कृति के मूल में प्रदर्शन या अभिनय की भावना नहीं है। 'संवाद-योजना' की सृष्टि करते हुए भी 'सोई बतावत रामकवि' 'रामगीत मन लाय सुनो सुनावत रामकहं' कहकर कवि ने उसे 'दृश्य' के क्षेत्र से सम्पृक्त नहीं होने दिया। कथा-दीर्घ अवधि की है, घटनाओं, दृश्यों की बहुतायत है, संकलनत्रय की खोज व्यर्थ है और रंग-संकेत ढूंढना तो पानी से मक्खन निकालने वाली बात है। अत: यह सिद्ध है कि प्रस्तुत कृति नाटक नहीं है।

1-- हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन, भाषा विभाग पंजाब, पृ० 96 । (7 मार्च, 1976 को भा० वि० द्वारा आयोजित गोष्ठी में पढ़ा गया शोध-पत्र) ।

(ग) निष्कर्ष

निष्कर्ष

'रामगीत' के इस विवेचन के उपरान्त यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कृति की रचना करते समय लेखक का दृष्टिकोण उसके नाटकीय प्रदर्शन की ओर नहीं था। वह 'जग-प्रसिद्ध' रामकथा का यथामति वर्णन कर रहा था। यह कृति वर्णन-प्रधान है। नाटकीय नियमों का पालन भी इस कृति में नहीं किया गया है। मंच-सज्जा, वेश-भूषा, प्रवेश-प्रस्थान आदि नाट्य के मूल संकेत भी इस कृति में उपलब्ध नहीं हैं। प्रतिवर्ष रामकथा के अभिनीत होने के कारण 'रामगीत' का मंचन दुष्कर प्रतीत नहीं होता, तथापि यदि हम रामकथा की प्रसिद्धि एवं अभिनय से अलग हट कर इस कृति का नाटकीय दृष्टि से मूल्यांकन करें तो अनेक घटनाएँ अरंगमंचीय प्रतीत होती हैं। 'रामचरितमानस' प्रत्येक वर्ष अभिनीत होते हुए भी नाटक नहीं कहलाता; 'साकेत' में यथोचित नाटकीयता विद्यमान होने पर भी उसे नाटक नहीं कहते; 'कामायनी', 'गोदान', 'शतरंज के खिलाड़ी' नाटकीय गुणों से युक्त एवं प्रदर्शन के धरातल का सफलतापूर्वक स्पर्श करने के उपरान्त भी नाटक-परम्परा में स्थान न पा सके। न जाने क्यों, श्रव्य-काव्य के प्रदर्शित होने के उपरान्त उसे दृश्य-काव्य में परिगणित करने के इच्छुक विद्वान् भी इन्हें नाटक-परम्परा में उल्लिखित न कर सके। इसका एक ही सम्भावित कारण दृष्टिगत होता है कि लेखक का दृष्टिकोण सर्वोपरि है। 'रामगीत' में संस्कृत नाटक का ढाँचा-साम्य होने के कारण, कवि के दृष्टिकोण को पूर्णतया अवहेलनाकर उसे नाटक साहित्य में परिगणित करना अनुचित है। सम्भवत: यह प्रथम कृति है जो 'लोक-रुचि' के कारण नाटक-साहित्य में स्थान पाने की अधिकारिणी बनी। सामान्य जन एवं मनीषियों ने, प्रस्तुत रचना को, अनुचित सम्मान प्रदान करके, न घर का रहने दिया न घाट का। वस्तुत: यह कृति नाटक नहीं है, श्रव्य काव्य है। मध्यकालीन कृतियों के प्रति साहित्य-जगत् की यह मनमानी असह्य है। मात्र जन-सामान्य के 'हनुमन्नाटक' अथवा 'हनुमान नाटक' नाम देने के आधार पर इसे नाटक-साहित्य में स्थान नहीं दिया जा सकता और

न ही नाटकीय संभावनाओं के कारण। इस कृति का नाम 'हनुमन्नाटक' नहीं, 'रामगीत' है। प्रतिलिपिकारों के योगदान (?) के फलस्वरूप प्रतियों के प्रारम्भ--- 'अथ हनुमन्नाटक लिख्यते' एवं अन्त में -- 'इति हनुमन्नाटके' विरचित कवि हृदयराम' के आधार पर आलोच्य कृति को 'हनुमन्नाटक' नाम देना दुराग्रह मात्र है। दूसरे मध्यकाल में 'गीत' 'नाटक' का पर्याय नहीं था। रास, यात्रा, सट्टक, लीला आदि शब्दों का प्रयोग नाटक के पर्याय रूप में व्यवहृत था। अत: 'रामगीत' नाम इसे नाटक सिद्ध नहीं करता। कवि की प्रतिभा के कारण प्रस्तुत कृति में प्राप्त सजीवता भी इस कृति को 'नाटक' के क्षेत्र से सम्बद्ध करने में असमर्थ है। इस कृति का कभी मंचन हुआ या नहीं, प्रमाणों के अभाव में, अनिश्चित है। अनेक कृतियाँ मंचित होने के पश्चात् भी, नाटक-साहित्य में उल्लिखित होने की अपेक्षा, कलाकार-प्रदत्त साहित्यिक-विधा-विशेष के अभिधान के कारण, नाटकीयता के अतिरिक्त गुणों सहित, अपनी विधा-विशेष में ही उल्लिखित होती रही है। तो फिर 'रामगीत' के सन्दर्भ में यह आग्रह, क्यों ?

यदि हिन्दी साहित्य-जगत् इतना व्यापक दृष्टिकोण अपना ले कि मात्र लेखक के 'नाटक' अभिधान से, (बिना उसका विशिष्ट अर्थ समझे) या कृति में उपलब्ध नाटकीय गुणों के कारण, अथवा मंचित होने के उपरान्त बिना किसी ऊहापोह के, सभी सम्बद्ध कृतियों को, नाटक-साहित्य में परिगणित करने लगे, तो सभी आपत्तियों का निराकरण अनायास ही हो जाएगा। यहाँ तक कि विवाद उठने की सम्भावनाएँ ही समाप्त हो जाएँगी। परन्तु, ऐसा होना न तो सम्भव ही है, और न समीचीन ही ।

तृतीय अध्याय

विचित्र नाटक

(क) गुरु गोबिन्द सिंह : जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व ।

(ख) विचित्र नाटक : नाटक के निकष पर ।

(ग) निष्कर्ष ।

(क) **गुरु गोबिन्द सिंह**

-- जीवन ।

-- व्यक्तित्व : कृतियों के आधार पर ।

-- कृतित्व : विकासात्मक अध्ययन ।

विचित्र नाटक

गुरु गोबिन्द सिंह: जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व

(क) जीवन

खालसा पंथ के संस्थापक दशमगुरु गुरु गोबिन्द सिंह एक क्रान्तिकारी युगपुरुष थे। उनका जन्म ऐसे समय में हुआ जब चतुर्दिक अव्यवस्था व्याप्त थी। परिस्थितियों के अनुरूप अपनी वाणी एवं क्रिया-कलापों द्वारा उन्होंने सन्तप्त, सुषुप्त मानवता को जागरण का अमर संदेश दिया। उनके आदर्श किसी विशिष्ट धर्म, जाति और राष्ट्र की सम्पत्ति नहीं हैं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति एवं विश्व की अद्वितीय धरोहर है। नि:स्वार्थ सेवा एवं रक्षा के भाव से प्रेरित गोबिन्द सिंह, इस तथ्य से सम्भवत: पूर्व परिचित थे कि मृतप्राय: व्यक्तियों में प्राण फूँकने के कारण वर्तमान अथवा भावी पीढ़ी उन्हें ईश्वर मान सकती है, इसीलिए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इसकी भर्त्सना करते हुए कहा— "जो हमको परमेसर उचरि हैं। ते सम नरक कुंड महि परि हैं।"[1] उनकी इस महिमा को धर्म-आचार्यों के लिए एक कसौटी माना जा सकता है। जीवन के प्रथम आश्रम में ही अन्तिम आश्रम की झलक देने वाले महान् नेता गुरु गोबिन्द सिंह वीर एवं तेजस्वी योद्धा, कुशल सेनानायक, धर्म-प्रवर्तक, समाजसुधारक, कर्मयोगी, दुष्ट संहारक, आशावादी चिन्तक थे। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में व्याप्त पाखण्डों एवं आडम्बरों

1-- विचित्र नाटक : अध्याय 6, पद्य 32 ।

का पूर्ण विरोध किया और मानव मात्र में समानता और परस्पर सेवा भाव का विस्तार किया। डा० धर्मपाल मैनी के शब्दों में, "आन्तरिक शक्ति ने ही उनकी बाह्य शक्ति को द्विगुणित कर दिया था। इसीलिए ये सशक्त योद्धा सारी उमर जूझते रहे, लेकिन हिम्मत न हारी; अत्याचार का विरोध करते रहे, पर अत्याचारियों के प्रति द्वेष दृष्टि न विकसित की, योद्धा बने रहे, पर भक्ति का संबल न त्यागा; नवीन धर्म की स्थापना की, पर पुरातन धर्म का परिहार न किया; समाज-सुधार किया पर समाज से दबे नहीं; धर्म का विकास किया, पर मात्र धर्म में रमे नहीं; कर्मण्य जीवन व्यतीत किया, लेकिन दुष्कर्मों से परिचय नहीं; बाह्याचारों का विरोध किया, लेकिन सदाचार त्यागा नहीं; बाह्याडम्बरों का परिचय पाया, लेकिन उनमें फँसे नहीं; गृहस्थ जीवन व्यतीत किया पर उसमें फँसे नहीं; गुरु पद को सँभाला, पर उसका अभिमान जताया नहीं; शिष्यों को 'सिक्ख बनाया, पर उनमें उलझे नहीं'; बहुत धन पाया, पर उसे अपनाया नहीं; और आदि ग्रन्थ को अपना गुरु बनाया पर उसमें अपना एक भी शब्द नहीं। जीवन की यह विषय-विविधता ही उनके महान् व्यक्तित्व की परिचायिका है।[1] महान संत, सफल योद्धा एवं आदर्श साहित्यकार का अनोखा संगम उनके जीवन में अभिव्यक्त हुआ है। गुरु जी का सम्पूर्ण जीवन, क्रिया-कलाप, विभिन्न रचनाएँ मानव मात्र को उद्वेलित करने में सहज समर्थ हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

~~(क) जीवन~~

गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म पौष 17 संवत् 1723 विक्रमी अर्थात् 1666 सन् में पटना में हुआ।[2] उस समय इनके पिता तेग बहादुर आसाम के

1-- गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व, डा० मैनी, पृ० 52 ।

2-- (क) सिख इतिहास-ठाकुर देसराज, पृ० 175 ।

(ख) हिन्दी साहित्य कोश-2, धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 126 ।

(क्रमशः

कामरूप नामक स्थान में थे। इनकी माता का नाम गुजरी था। इनके माता-पिता ने इनका नाम 'गोबिन्द राय' रखा था। खालसा पंथ में दीक्षित होने के पश्चात् इन्होंने अपना नाम 'गोविन्द राय' के स्थान पर 'गोविन्द सिंह' रख लिया। छठे गुरु का नाम हरगोबिन्द था। इसलिए इनकी माता इन्हें 'श्याम' नाम से सम्बोधित किया करती थी[1]।

बचपन से ही इनमें अभूतपूर्व तेज एवं आकर्षण विद्यमान था। जनश्रुति के अनुसार पटना निवासी पण्डित शिवदत्त राम का भक्त था, बालक गोबिन्द को देखकर वह उनकी ओर आकृष्ट हुआ और उन्हीं में राम के दर्शन करने लगा। राजा फतह चन्द और उनकी रानी भी बालक गुरु गोबिन्द को देखकर इतनी भावाभिभूत हो गई कि उसे अपना बच्चा समझने लगीं और गोद में लेने को व्याकुल हो उठीं।

एक दिन वे कुछ बालकों के साथ खेल रहे थे। उसी समय पटना के नवाब की सवारी निकली। चौबदार ने कहा, "बच्चो नवाब साहब आ रहे हैं। खड़े हो जाओ, सलाम करो, सिर झुकाओ।" बालकों के सरदार गोबिन्द राय ने कहा, "खड़े मत हो, सलाम मत करो, सिर मत झुकाओ।"[2] यह व्यवहार उनकी स्वतन्त्र एवं विद्रोही भावना का परिचायक है।

अ---- (ग) शिवसिंह सरोज, सं० किशोरी लाल गुप्त, पृ० 684।

(घ) संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक, गंगाराम गर्ग, पृ० 93।

(ङ) हिस्ट्री एण्ड फिलासफी आफ सिख रिलिजन, खाजनसिंह, पृ० 162।

(च) सिक्ख धर्म के दस गुरु, वी० एन० गुजराती, पृ० 82।

1-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 33।

2-- हिन्दी साहित्य कोश भाग-2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 126।

पाँच वर्ष की आयु में गुरु जी पटना से आनन्दपुर आ गए जहाँ उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया। गुरुमुखी पढ़ाने के लिए मुन्शी साहब चन्द को नियुक्त किया गया। फारसी की शिक्षा के लिए नूरपुर जिला हुशियारपुर निवासी काजी पीर मुहम्मद को नियुक्त किया गया। घुड़सवारी, तैराकी, तीर अन्दाजी एवं विभिन्न शस्त्र विद्या सीखने के लिए गुरु तेग बहादुर ने योग्य व्यक्ति नियुक्त किये।[1] डा० जयराम मिश्र के अनुसार, "माता गूजरी ने स्वयं गुरु गोबिन्द सिंह को गुरुमुखी सिखाई एवं बाल्यावस्था में ही उन्होंने बिहारी और बंगला भी सीख ली।"[2] अभिप्राय: यह कि बचपन में ही गुरु जी ने विभिन्न भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

नौ वर्ष की आयु में पिता गुरु तेग बहादुर को आत्मबलिदान की प्रेरणा देकर उन्होंने अपनी भावनाओं एवं भावी क्रियाओं का संकेत दिया।[3] नौ वर्ष के बालक से, सामान्यतया, इस प्रकार की आशा नहीं की जा सकती, परन्तु गुरु गोबिन्द तो जन्मजात सन्त एवं सुधारक थे जो मानव जाति की रक्षा-निमित्त अवतरित हुए थे। अपनी नौ वर्ष की आयु को गुरु गोबिन्द सिंह ने धर्म-कर्म समझने योग्य बताया है : "जब हम धर्म कर्म मो आए। देव लोक तब पिता सिधाए।"[4] बेटे की आज्ञा शिरोधार्य कर एवं उसे गुरु गद्दी कर गुरु तेग बहादुर ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। प्रसिद्ध इतिहासकार

1-- (क) हिस्ट्री एण्ड फिलासफी आफ सिख रिलिजन, खाजनसिंह, पृ० 163 ।
(ख) गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 37 ।

2-- हिन्दी साहित्य कोश-2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 128 ।

3-- (क) गुरु गोबिन्द सिंह (अंग्रेज़ी) लक्ष्मण सिंह, पृ० 1 ।
(ख) हिन्दी साहित्य कोश-2, धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 128 ।
(ग) सिक्ख धर्म के दस गुरु, बी० एस० गुजराती, पृ० 76 ।

4-- विचित्र नाटक, अध्याय 7, पद्य 3 ।

सर जदुनाथ सरकार ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि उन्होंने काश्मीर के हिन्दुओं को इस्लाम धर्म में जबरदस्ती परिवर्तित करने का खुला विरोध किया था। दिल्ली में बुलाए जाने पर उन्हें कारागार में डालकर इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए विवश किया गया और उनके विरोध करने पर पाँच दिनों के पश्चात् उनका वध कर दिया गया।"[1] डा० जयराम मिश्र के शब्दों में, "सन् 1675 ई० में गुरु तेग बहादुर हँसते-हँसते दिल्ली में शहीद हुए। उनकी शहादत से सारा देश थर्रा उठा। गुरु गद्दी का उत्तरदायित्व अल्पायु में ही गोबिन्दराय के ऊपर आ पड़ा। उन्होंने उस समय शक्ति-संगठन के लिए हिमालय की शरण ली और वहाँ पहाड़ियों को अपना निवास-स्थान बनाया तथा 20 वर्ष तक ऐकान्तिक साधना की। इस ऐकान्तिक साधना के अनेक शुभ परिणाम निकले -- (1) उन्होंने फारसी और संस्कृत के ऐतिहासिक पौराणिक ग्रन्थों का विशद अध्ययन कर लिया; (2) हिन्दी कवियों द्वारा उन्होंने पंजाब में प्रथम बार वीर रस के काव्य का प्रणयन कराया और स्वयं भी काव्य रचना की; (3) घुड़सवारी और तीर अन्दाजी में असाधारण निपुणता प्राप्त कर ली; (4) आखेट में दक्षता प्राप्त की और कठोर जीवन व्यतीत करने का अभ्यास किया; (5) हिन्दू जाति की दयनीय दशा को देखते हुए यह अनुभव किया कि परमात्मा ने मुझे देश, जाति और धर्म का उत्थान करने के लिए भेजा है। इसी समय उन्होंने अपना भावी कार्यक्रम बना लिया।"[2]

इसी एकान्त साधना-काल में वे परिणय सूत्र में भी बाँध दिये गये, जिसका संकेत 'विचित्र नाटक' में उन्होंने 'सुख-भोग' द्वारा किया है।[3] प्रो०

1-- हिस्ट्री आफ औरंगजेब, जदुनाथ सरकार, पृ० 313 ।
(गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य-- प्रसन्नी सहगल, पृ० 37-38 से उद्धृत ।

2-- हिन्दी साहित्य कोश 2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 126 ।

3-- विचित्र नाटक, अध्याय 8, पद्य 2 ।

खाजन सिंह के अनुसार, "गुरु गोबिन्द सिंह के तीन विवाह हुए । प्रथम जीतो जी से जेठ पन्द्रह संवत् 1730 (1673 सन्) जो लाहौर के एक सिक्ख की कन्या थी। संवत् 1741 (सन् 1684) में लाहौर के निवासी राम सरन खत्री ने अपनी कन्या माता सुन्दरी जी से इनका दूसरा विवाह किया। रोहतास के खत्री ने अपनी पुत्री साहिब देवी गुरु को सौंप दी। यह तीसरा विवाह वैसाख 18 संवत् 1751 में सम्पन्न हुआ ।[1] जीतो जी एवं सुन्दरी जी गुरु गोबिन्द सिंह की दो पत्नियों के नाम थे। एक ही पत्नी के दो नाम नहीं जैसा कि ठाकुर देसराज ने लिखा है कि जीतो का नाम ही बाद में सुन्दरी रख लिया गया था।[2] इसका स्पष्ट संकेत इस बात से भी द्योतित होता है कि बड़े पुत्र अजीत सिंह का जन्म माघ संवत् 1744 (सन् 1688) में माता सुन्दरी से हुआ । अन्य तीन पुत्रों जोरावर सिंह (21 चैत्र संवत् 1747, सन् 1691), जुझार सिंह (6 मघर संवत् 1753 सन् 1696) और फतेह सिंह (4 फाल्गुन संवत् 1755 सन् 1699) का जन्म माता जीतो जी से हुआ ।[3] माता साहिब देवी के सन्तान की कामना करने पर उन्होंने कहा कि समस्त खालसा उसकी सन्तान है। वह खालसा की माता है।[4] सम्भवत: प्रथम पत्नी जीतो जी से सन्तान उत्पन्न न होने के कारण उनकी माता एवं अन्य वृद्धजनों ने उन्हें दूसरे विवाह के लिए विवश किया, जिसका संकेत लछमण सिंह ने भी किया है।[5] गुरु गोबिन्द सिंह की प्रथम संतान, अजीत सिंह, उनकी दूसरी पत्नी सुन्दरी देवी से उत्पन्न हुई। माता एवं दादी की

1-- हिस्ट्री एण्ड फिलासफी आफ सिक्ख रिलिजन भाग-1, खाजन सिंह, पृ० 165-66 ।

2-- सिक्ख इतिहास, ठाकुर देसराज, पृ० 179 ।

3-- हिस्ट्री एण्ड फिलासफी आफ सिक्ख रिलीजन 1, खाजनसिंह, पृ० 165-66 ।

4-- (क) सिक्ख इतिहास, ठाकुर देसराज, पृ० 180 ।

(ख) हिस्ट्री एण्ड फिलासफी आफ सिक्ख रिलीजन 1, खाजन सिंह, पृ० 165-66 ।

5-- गुरु गोबिन्द सिंह, लछमण सिंह (अंग्रेजी), पृ० 60 ।

भावनाओं का सम्मान करने के कारण उन्होंने दूसरा विवाह कर तो लिया था परन्तु प्रथम पत्नी का भी तिरस्कार नहीं किया था। अन्य तीन सन्तानें मात्र प्रथम पत्नी से होना इसका प्रमाण है। उनके आदर्श व्यक्तित्व एवं आचरण के कारण तीन विवाहों की बात युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती परन्तु उनके व्यवहार ने इस असंगतता को दूर कर दिया। दूसरा विवाह किया परन्तु प्रथम पत्नी की उपेक्षा नहीं की; तीसरा विवाह किया परन्तु शारीरिक सम्बन्धों से परे रह कर। सन्तान-सुख की कामना करने पर उसे खालसा की माता घोषित कर गौरवान्वित किया।[1]

इस प्रकार तीन विवाह गुरु गोबिन्द सिंह की नारी के प्रति कमजोरी को व्यक्त नहीं करते अपितु उनके चरित्र की दृढ़ता एवं उच्चता को व्यक्त करते हैं। उनके चरित्र के इस धरातल को शायद ही कोई मनुष्य स्पर्श कर सके। बड़ों की भावनाओं का यथोचित आदर करते हुए भी उन्होंने किसी को कष्ट नहीं पहुँचाया। सुन्दर से विवाह करके भी जीतो से अलग न हुए। साहिब कौर को अपना नाम देकर भी, नहीं दिया। पत्नी मान कर भी पत्नीत्व प्रदान नहीं किया। उसकी सन्तानेच्छा बलवती होने पर उसे खालसा की माता बना दिया। इसके द्वारा उन्होंने अपनी चारित्रिक दृढ़ता एवं नारी-भावना को समुचित सम्मान प्रदान किया। डा० प्रसन्नी सहगल ने तीसरे विवाह को प्रथम असंदिग्ध घोषित किया[2] परन्तु खालसा पंथ की चर्चा करते हुए उन्होंने अपने पूर्व प्रतिपादित मत की स्वयं अवहेलना की और साहिब कौर एवं गुरु गोबिन्द सिंह को पति-पत्नी माना।[3] वस्तुत: तीन पत्नियों को एकदम स्वीकृति देने में उत्पन्न संकोच का प्रधान कारण गुरु गोबिन्द सिंह का दृढ़ चरित्र ही है। तीन पत्नियों के होते हुए भी गुरु जी वैरागी थे।

1-- जीवन कथा श्री गुरु गोबिन्द सिंह, प्रो० करतार सिंह, पृ० 239 ।
(गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य--प्रसन्नी सहगल, पृ० 46 से उद्धृत ।

2-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 47 ।

3-- वही, पृ० 50 ।

वैशाख वदी एक संवत् 1756 अर्थात् सन् 1699 ई० में आनन्दपुर के केशगढ़ नामक स्थान पर उन्होंने खालसा पंथ का निर्माण किया एवं 'पंच प्यारे' बनाए। ये पाँच प्यारे थे-लाहौर के दयाराम खत्री, दिल्ली के धर्मदास जाट, द्वारिका के धोबी हुकुम चन्द, जगन्नाथ के कहार हिम्मतराय एवं बिदर के नाई साहब चन्द। इन पाँच सिक्खों को मृत्युंजयी बना कर सिंह बनाया और[1] स्वयं उनसे दीक्षा लेकर[2] गोविन्द राम से गोविन्द सिंह बने। डा० प्रसन्नी सहगल, लक्ष्मणसिंह एवं डा० जयराम मिश्र ने 'हुकुम चन्द' के स्थान पर 'मोहकम चन्द' नाम लिखा है।

खालसा पंथ की स्थापना द्वारा उन्होंने अपने आदर्शों को व्यावहारिक रूप दिया और धर्म रक्षार्थ सेना संगठित की। एक ईश्वर में विश्वास, भ्रातृत्व की भावना, तम्बाकू आदि नशीले पदार्थों का त्याग, केश, कड़ा, कृपाण, कच्छा और कंघा धारण का निर्देश दिया। खालसा-पंथ के ये पाँच 'कक्कार' सिंहों को सामान्य स्त्री-पुरुषों से अलग दर्शाते हैं एवं दुर्बल चिड़ियों को जो शक्तिशाली बाज से भिड़ने के लिए तैयार हैं प्रकट करते हैं। 'आन्तरिक दृष्टि से इस प्रकार सिंहों को दृढ़ करने के लिए उन्होंने घोषित किया है --- (1) प्रत्येक सिंह के ऊपर परमात्मा की छत्रछाया है, जहाँ कहीं भी उनकी जमात एकत्र होगी, वहीं परमात्मा और गुरु रहेगा; (2) प्रत्येक सिंह विजय प्राप्ति के लिए उत्पन्न हुआ है और उसका नारा है -- "वाह गुरु जी का खालसा, वाह गुरु जी की फतह।"

1-- (क) ए हिस्ट्री आफ सिक्ख, भाग 1, खुशवन्त सिंह, पृ० 96-97 ।
(ख) सिख इतिहास, ठाकुर देसराज, पृ० 181 ।
(ग) दशमेश पिता गुरु गोविन्द सिंह, राजेन्द्र सिंह आहलूवालिया, पृ० 5 ।
(घ) हिन्दी साहित्य कोश भाग 2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 126 ।
(ङ) गुरु गोबिन्द सिंह, लक्ष्मण सिंह (अंग्रेजी), पृ० 33 ।
(च) गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 49 ।

2-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 73 ।

वीर रस के साहित्य का अध्ययन प्रत्येक सिंह के लिए आवश्यक है।'[1] इस प्रकार 'सिंह' बनाकर गुरु गोबिन्द सिंह ने जातिपाति की संकीर्ण विचारधारा का खण्डन किया। उन्होंने कहा, "जिसने यह अमृत पिया है वह शेर की तरह बलवान बनेगा और साथ में उपदेश दिया कि आज से तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है। जन्म से तुम जिस जाति में उत्पन्न हुए थे वह समाप्त हो गई है, अब जन्म से नहीं, कर्म से जाति की परीक्षा होगी। जो वीरता का कार्य करेगा वही क्षत्री हो सकेगा। निर्बलों, निःसहायों की सहायता करना तुम सबका पवित्र कर्तव्य है। शस्त्रों का अभ्यास करना प्रत्येक दिन का कार्य-क्रम होगा। सम्मिलित भोजन करना, अधिकार सम्मत आय तथा ईश्वर का भजन करना यही जीवन का लक्ष्य होगा। अपनी आय का दसवाँ भाग ईश्वरोपासना में व्यय करना। ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी की पूजा न करना, गुरु और ईश्वर के बिना किसी के सामने सम मस्तक न झुकाना, देवी-देवता, पत्थर, मूर्ति किसी की पूजा न करना सभी का परम कर्तव्य होगा।"[2] गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म 'धर्म हेत' हुआ था। उन्होंने पददलित, पीड़ित मानवता की रक्षा के लिए अपना ही नहीं, अपने परिवार का जीवन भी उत्सर्ग कर दिया। अजीत सिंह और जोरावर सिंह चमकौर युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। अन्य दोनों पुत्र गंगू ब्राह्मण के विश्वासघात के कारण जीवित दीवार में चिने जाने को विवश हुए।[3]

गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने जीवनकाल में 14 के लगभग लड़ाइयाँ लड़ीं।[4] यथा, भंगाणी का युद्ध, नादौन का युद्ध,[5] हुसैनी युद्ध, पहाड़ी राजाओं से युद्ध,

---

1-- हिन्दी साहित्य कोश भाग 2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 126 ।

2-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 49-50 ।

3-- सिक्ख रिव्यू, वोल्युम-23, सितम्बर 1975, पृ० 23 ।

4-- वही, जनवरी, 1975, पृ० 7 ।

5-- ए हिस्ट्री आफ सिक्ख, भाग 1, खुशवन्त सिंह, पृ० 78-79 ।

चमकौर एवं मुक्तसर युद्ध आदि। भंगाणी युद्ध में विजयी होने के पश्चात् उन्होंने लोहगढ़, आनन्दगढ़, केशवगढ़ और फतेहगढ़ का निर्माण कराया।[1] नादौन एवं हुसैनी युद्ध में भी गुरु गोबिन्द सिंह विजयी हुए। पहाड़ी राजाओं से युद्ध कराने का श्रेय राजा भीमचन्द को है। डा० प्रसन्नी सहगल के शब्दों में, "राजा भीमचन्द ने राजा भूपचन्द, राजा अजमेरचन्द आदि सभी पहाड़ी राजाओं को लिखकर भेज दिया कि गुरु गोबिन्द सिंह भी औरंगजेब की भाँति उनके हिन्दू धर्म के विरोधी हैं और उनकी शक्ति का बढ़ना हिन्दू धर्म के लिए अहितकर होगा और उन्हें आमन्त्रित भी किया। यह समाचार मिलते ही जम्मू, नूरपुर मण्डी, कैथल, कुल्लू, चम्बा, गुलेर, गढ़वाल, श्री नगर आदि के राजा अपनी-अपनी सेना लेकर भीमचन्द के पास आ गए।[2] गुरु गोबिन्द सिंह का पहाड़ी राजाओं से युद्ध, जो औरंगजेब से सहायता प्राप्त थे, दीर्घ अवधि तक चला परन्तु भोजन, अस्त्रशस्त्र, व्यवस्था के भंग हो जाने के कारण गुरु जी ने आधी रात को आनन्दपुर से प्रस्थान किया। यह अत्यधिक रक्तरंजित युद्ध था।[3] अजीत सिंह एवं अन्य सिक्खों सहित गुरु जी सरसा नदी पार कर रोपड़ पहुँच गए। जब वे माजरपुर गाँव में पहुँचे तो उन्हें यह सूचना मिली कि शाही सेना सामने से आ रही है। गुरु गोबिन्द सिंह चमकौर की ओर बढ़े। वहीं एक बाग में अपना डेरा डाला, एक जाट किसान की ऊँची हवेली को किला बनाया और उसी में सिक्खों सहित रहने लगे।[4] गुरु गोबिन्द सिंह ने अपनी मुट्ठी भर सेना से शत्रु की विशाल सेना का सामना किया।[5] अन्त में केवल पाँच सिक्ख शेष रहे। इन सिक्खों के आग्रह

1-- गुरु गोबिन्द सिंह, लछमण सिंह (अंग्रेजी), पृ० 75 ।

2-- (क) गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 72-73 ।

(ख) श्री दशमेश चमत्कार, भाई ज्ञानसिंह, पृ० 308 ।

(ग) दि सिक्ख रिलिजन भाग-5, मैकालिफ, पृ० 127 ।

3-- सिक्ख रिव्यू, सितम्बर, 1975, पृ० 24 ।

4-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्न सहगल, पृ० 80 ।

5-- सिक्ख रिव्यू, सितम्बर 1975, पृ० 24 ।

से गुरु जी हवेली के दूसरे फाटक से बाहर निकल गए। शत्रु सेना निराश होकर तितर-बितर हो गई।[1]

सन् 1701 तथा सन् 1703-4 में आनन्दपुर की लड़ाइयाँ और दिसम्बर सन् 1704 में चमकौर की लड़ाई के पश्चात् उन्होंने वर्तमान जिला फिरोजपुर में खिदराना के स्थान पर मुगलों से अन्तिम लड़ाई लड़ी और उन्हें पराजित किया।[2]

गुरु गोबिन्द सिंह को विजय प्राप्त हुई। जिस तालाब पर वे जाकर ठहरे थे उसका नाम उन्होंने मुक्तसर रखा जो आज भी सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है।[3] जब वे बघौर नगर में पहुँचे तो वहाँ के लोग भयभीत हुए कि कहीं यह लूटने के लिए तो नहीं आए हैं। वहाँ उनका बघौर के नवाब से युद्ध हुआ। बघौर-नरेश को पराजित और वध करके वे शाहजहानबाद की ओर बढ़ गये। बघौर नगर में ही उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिल चुका था। सन् 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी ताराआज़म और बहादुरशाह में संघर्ष हुआ। -- -- -- -- उन्होंने बहादुर शाह को ताराआज़म के विरुद्ध सहायता करने के लिए धर्मसिंह को विश्वसनीय सैनिकों के साथ भेजा। घमासान युद्ध के पश्चात् बहादुर शाह विजयी हुआ।[4] बहादुर शाह के पिता औरंगजेब से कट्टर दुश्मनी होते हुए उन्होंने उसके पुत्र की सहायता की। बहादुरशाह के साथ नागपुर, पूना आदि से होते हुए नदेड़ नगर के पास गोदावरी पर डेरा लगा कर रहने लगे। नदेड़ शहर पहुँचकर उन्होंने बहादुरशाह का साथ छोड़ दिया। यहाँ उनकी भेंट बन्दा-बैरागी से हुई जिसे उन्होंने सिक्ख बना कर उसका नाम

1-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 83 ।

2-- सिक्ख धर्म के दस गुरु, बी० एस० गुजराती, पृ० 84 ।

3-- दि सिक्ख रिलिजन, भाग 5, मैकालिफ, पृ० 214 (गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य प्रसन्नी सहगल, पृ० 85 से उद्धृत)

4-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 56-57 ।

गुरु बख्श सिंह रखा किन्तु वह अपने पूर्व प्रचलित 'बन्दा बैरागी' नाम से ही प्रसिद्ध है। इसने गुरु जी के पुत्रों के वध का प्रतिशोध लिया।[1]

दक्षिण भारत के नदेड़ नामक स्थान पर गुलखाँ नाम का एक पठान रहता था। वह पैंदा नामक पठान का पोता था जिसका वध गुरु गोबिन्दसिंह के पूर्व छठे गुरु ने कर दिया था। उसने अपने दादा के वध का बदला लेने का निश्चय किया। वह गुरु जी के पास प्रतिदिन चौपड़ खेलने आता था। वे उसे प्रतिदिन पाँच मोहरें दिया करते थे। अवसर पाकर उसने गुरु जी पर दो बार वार किया और वे घायल हो गये, किन्तु घायल अवस्था में भी उन्होंने उस पठान का वध कर दिया। बहादुर शाह के कुशल चिकित्सकों से गुरु जी का उपचार कराया और वे 15 दिनों में ही स्वस्थ हो गए।[2] एक दिन तीर-संधान करते समय उनके घाव का एक टाँका टूट गया। इस बार वे स्वस्थ न हो सके। मृत्यु से पहले उन्होंने सिक्खों को गुरु का उत्तराधिकारी चुनने के स्थान पर खालसा को गुरु बना दिया। ग्रन्थ साहब और खालसा में ही उन्होंने अपनी आध्यात्मिक भावना और शारीरिक आत्मा तिरोहित कर दी। और खालसा को सम्बोधित करके कहा कि जो मुझे देखना चाहे वे ग्रन्थ साहब में देखें।[3] यह महान् संत 42 वर्ष की अल्पायु में कार्तिक सुदी 5 संवत् 1765 वि० सन् 1708 में इस संसार से विदा हो गया। जहाँ इन्होंने देह त्यागी वहाँ 'हजूर साहिब' नामक गुरुद्वारा है।[4]

(ख) व्यक्तित्व

गुरु गोबिन्द सिंह का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। उनमें अपूर्व तेज वर्तमान था। सच्चे सन्त, सफल योद्धा और साहित्यकार की त्रिवेणी

1-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 57-59 ।

2-- वही, पृ० 59 ।

3-- वही, पृ० 60 ।

4-- गुरु गोबिन्द सिंह, लक्ष्मण सिंह (अंग्रेज़ी), पृ० 130 ।

का अनोखा संगम उनके व्यक्तित्व की अद्वितीय विशेषता है। उन्होंने मनुष्य की सुषुप्त शक्ति को जागृत किया और मृत-प्राय: जाति में जीवन-संचार कर आत्मरक्षा का अदम्य उत्साह भरा। उन्होंने मात्र उपदेश ही नहीं दिए वरन् अपने व्यवहार द्वारा सबके समक्ष उदाहरण भी प्रस्तुत किया। इनका व्यक्तित्व मात्र वन्दनीय नहीं अनुकरणीय भी है ।

अब्दुल लतीफ के शब्दों में, "उनमें एक धार्मिक नेता और योद्धा के गुण विद्यमान थे। वह पीड़ितों को न्याय दिलाने वाला था, युद्ध के मैदान में सेनानी था, अपने मसंद में राजा था और खालसा समाज में वह फकीर था।"[1]

बाल्यकाल में पण्डित शिवदत्त और राजा फतेह सिंह व उसकी रानी गुरु गोबिन्द के प्रति आकर्षित होना एवं क्रमश: उन्हें राम का साकार रूप और अपना बालक समझना; युवावस्था में विभिन्न व्यक्तियों का अपनी कन्याओं का गुरु जी से विवाह करने के लिए इच्छुक होना; भीरु एवं मृतप्राय: हिन्दुओं का उनकी ~~का~~ वाणी के वशीभूत हो तलवार धारण करना आदि घटनाएँ उनके प्रभाव-शाली एवं तेजस्वी व्यक्तित्व की परिचायक हैं। उनके व्यक्तित्व का आकर्षण ईश्वर-प्रदत्त था जिसे अपने सद्-व्यवहार द्वारा उन्होंने बनाए रखा।

गुरु गोबिन्द सिंह ने आत्मकथा में अपने जन्म का उद्देश्य धर्म-रक्षा स्पष्ट किया है। अल्पायु में ही उनकी यह प्रवृत्ति स्पष्टत: परिलक्षित थी। नौ वर्ष की अवस्था में काश्मीर के पण्डितों को दु:खी देखकर, अपने पिता से इसका उपाय जानकर, पिता को आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देना; चार पुत्रों को धर्म-रक्षा हेतु न्यौछावर कर देना और अपना सम्पूर्ण जीवन हिन्दुत्व की रक्षा में अर्पित कर देना, उनके जन्म के उद्देश्य को क्रियारूप प्रदान करते हैं। वे सच्चे अर्थों में

1-- सिक्ख रिव्यू, वॉल्यूम 22, मार्च, 1974, आवरण पृष्ठ ।

धर्म के रक्षक थे। धर्म में प्राप्त आडम्बरों एवं अन्धविश्वासों का उन्होंने स्पष्टत: विरोध किया।[1] मूर्ति पूजा,[2] जप-तप,[3] कंठी, जटा आदि धारण करने, सुन्नत कराने,[4] से ईश्वर नहीं मिलता, ये अन्धविश्वास मात्र हैं।

गुरु गोबिन्द सिंह ने ईश्वर की शक्ति के रूप में उपासना की। विभिन्न शस्त्रों की उन्होंने पूजा की और उन्हें ही ईश्वर माना। गुरु गोबिन्द कृत समस्त साहित्य और उनका क्रिया-व्यवहार इसका प्रमाण है।

गुरु गोबिन्द सिंह ने चौदह के लगभग लड़ाइयाँ लड़ीं, वे तीर चलाने में अत्यन्त निपुण थे। वे कुशल-योद्धा एवं सेना-नायक के गुणों से युक्त थे। युद्ध में सैन्य संचालन वे इस कुशलता से करते थे कि दुश्मन की विशाल सेना उनके मुट्ठी भर सिपाहियों के समक्ष टिक नहीं पाती थी।

योद्धा होते हुए भी वे मानवतावादी थे क्योंकि उनका युद्ध स्वार्थ-प्रेरित नहीं था अपितु स्व-रक्षार्थ था। किसी मनुष्य से उनका द्वेष नहीं था वरन् दलित एवं पीड़ितों की रक्षा के लिए शोषकों का नाश करना था। युद्ध में आहत सैनिकों की मरहम-पट्टी एवं पानी-पिलाने के लिए जो कर्मचारी नियुक्त थे वे दोनों पक्षों के सैनिकों की निष्पक्ष भाव से सेवा करते थे। मनुष्य मात्र में भ्रातृत्व की

1-- (क) विचित्र नाटक, अध्याय 7, पद्य 34 से 37 ।
(ख) विचित्र नाटक, अध्याय 6, पद्य 55 ।
2-(क) विचित्र नाटक अध्याय 1, पद्य 99 ।
(ख) विचित्र नाटक, अध्याय 6, पद्य 13 ।
3-- विचित्र नाटक, अध्याय 1, पद्य 97 ।
4-- (क) विचित्र नाटक अध्याय 1, पद्य 100 ।
(ख) विचित्र नाटक, अध्याय 6, पद्य 23 से 27 तक ।

भावना विकसित करना उनका लक्ष्य था। खालसा की स्थापना द्वारा उन्होंने वर्गहीन समाज की स्थापना की। लंगर द्वारा समानता का भाव दृढ़ किया और पंज प्यारों से अमृत ग्रहण कर समस्त भेद भाव मिटा दिए ।

गुरु गोबिन्द सिंह ने मनुष्य के श्रम को अत्यधिक सम्मान प्रदान किया। जिस व्यक्ति ने किसी की सेवा नहीं की, कोई परिश्रम नहीं किया वह अपवित्र है, ऐसा उनका विचार था। उन्होंने अपने एक शिष्य के हाथ से पानी ग्रहण करने से मना कर दिया, क्योंकि उसके हाथ अपवित्र थे, क्योंकि उसने कभी किसी की सेवा नहीं की थी।[1] विचित्र नाटक में उन्होंने स्पष्ट लिखा कि जो हँसी-हँसी में भी उद्यम करेगा नौ निधियाँ उसके पास आ जाएँगी ।[2]

संघर्षों से निरन्तर जूझते रहने पर भी उन्होंने आशा का संबल नहीं त्यागा। वे दृढ़ आस्थावादी थे। उनकी उक्तियाँ 'निश्चय कर अपनी जीत करों' तथा चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ' उनकी दृढ़ आस्था की परिचायक हैं। आनन्दपुर में चालीस सिक्खों के साथ छोड़ देने पर भी वे विचलित नहीं हुए। उनका कहना था-सिक्ख हार स्वीकार नहीं करता, विजय प्राप्त करता है । वह 'सिंह' है ।

गुरु गोबिन्द सिंह के व्यक्तित्व की एक अन्य विशेषता थी-उनका स्पष्ट वक्ता होना। धार्मिक आडम्बरों की उन्होंने खुले शब्दों में निन्दा की और उन्हें भगवान मानने वाले या कहने वाले शिष्यों और भक्तों को स्पष्टत: 'नरककुंड' में गिरने का संकेत दिया।

गुरु गोबिन्द सिंह का ज्ञान बहुत व्यापक था। विभिन्न पुराणों में उल्लिखित कथाओं के वे ज्ञाता थे। राम, कृष्ण, दुर्गा, चौबीस अवतार चरित्रोपाख्यान आदि रचनाएँ उनके व्यापक ज्ञान पर प्रकाश डालती हैं ।

1-- सिक्ख रिव्यू, वोल्यूम 23, जनवरी 1975, पृ० 8 ।

2-- विचित्र नाटक, सं० ओम प्रकाश आनन्द, 13|15, पृ० 93 ।

गुरु गोबिन्द सिंह ने बहुत अधिक परिमाण में साहित्य का सृजन किया, जो युगानुरूप होते हुए भी युगयुगीन है। उन्होंने सोलह के लगभग ग्रन्थ लिखे। उनका एक विद्यादरबार था जिसमें बावन कवि थे। जो शास्त्रों का अध्ययन व रचनाएँ किया करते थे।

गुरु गोबिन्द सिंह के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता यह थी कि वे समय को पहचानने की अनोखी सूझ रखते थे। यही कारण है कि उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में सफलता मिली। तद्‌युगीन हिन्दू समाज ईश्वर को ही एकमात्र सम्बल समझता था। उन्हें उस 'जड़' ईश्वर से विमुख करना अत्यधिक कठिन था। अवतारवाद में जनता का विश्वास था। सम्भवत: इसीकारण उन्होंने स्वयं को ईश्वर का पुत्र कह कर राम-वंश से अपना सम्बन्ध प्रकट किया और अपने कार्यों को ईश्वर की आज्ञा बताया। इस प्रकार तत्कालीन समाज को अपने प्रभाव में लिया। ईश्वर-भक्त होने के कारण कहीं हिन्दू उन्हें ही ईश्वर न कहने लगें इसलिए उन्होंने पहले ही इसकी घोषणा कर दी कि उन्हें ईश्वर कहने वाला नरकगामी होगा। गुरु ग्रन्थ को गुरु पद सौंप कर, गुरु-गद्दी की परम्परा समाप्त करके, उन्होंने गुरु-गद्दी के लिए होने वाले संघर्ष को समूल समाप्त कर दिया। ये कार्य उनकी समय के अनुकूल, युग के अनुकूल चलने की सूझ-बूझ के परिचायक हैं।

गुरु जी एक महान् संत थे। तीन पत्नियों के होते हुए भी वे सन्त कहलाने के अधिकारी हैं। दूसरे की आज्ञा का सम्मान करते हुए भी उन्होंने किसी को कष्ट नहीं पहुँचाया। सबको यथोचित आदर प्रदान किया। पिता एवं पुत्रों के बलिदान से उन्होंने शक्ति ग्रहण की, कमजोरी नहीं। संतों के समान वे निर्लिप्त रहे, कोई सम्बन्ध उनको बाँध नहीं सका, कमजोर नहीं बना सका। माया का प्रबल आकर्षण भी उन्हें नहीं छू सका। बहादुरशाह द्वारा दिए गए हीरे को उन्होंने सहज भाव से गोदावरी में फेंक दिया।[1] पर-दु:ख कातरता, पीड़ितों की रक्षा आदि भाव उनमें गहन रूप से व्याप्त थे।

1-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्न सहगल, पृ० 59 ।

उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे विभिन्न भावधाराओं के संगम-स्थल थे। वे धर्म के रक्षक थे, परन्तु आडम्बरों के विरोधी। महान संत थे, पर युद्ध को निंद्य नहीं मानते थे। वे योद्धा थे, परन्तु द्वेष भावना से दूर थे। युद्ध में उन्होंने अनेकों को हताहत किया फिर भी वे संत थे। कारण उनका उद्देश्य धर्म को, दीनों की रक्षा करना था। दिनकर की शब्दावली में उन्होंने 'पुण्य' किया था।[1] वे दृढ़-आस्थावान, मानवतावादी, बहुज्ञ और साहित्य-सर्जक थे। मोह-माया, राग-द्वेष से कोसों दूर थे। उनका लक्ष्य सत्य की प्रतिष्ठा, और दुष्टों का दलन था।

हरिकिशन लाल के शब्दों में, "गुरु गोबिन्द सिंह वाज़ ए सेंट, स्कॉलर, सोल्ज़र, स्टेट्समैन एंड ए सेवियर, दि लाइक आफ विच मे नाट कम अगेन।"[2] गुरु गोबिन्द सिंह का तेजस्वी व्यक्तित्व आज भी अविस्मरणीय एवं अद्वितीय है।

(ग) कृतित्व

गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु तन-मन के साथ अपनी लेखनी का प्रयोग भी किया। उनका समस्त जीवन मानव-मात्र को प्रेरणा देने में जितना सक्षम है उतना ही उनका साहित्य भी। उनकी लेखनी में मानव हृदय में स्पंदन उत्पन्न करने की क्षमता है। यहाँ पर ध्यातव्य है कि साहित्य-सृजन उनका लक्ष्य नहीं था वरन् लोगों को प्रेरणा देना था। डा० धर्मपाल मैनी के शब्दों में, "गुरु ने काव्य-निर्माण का बीड़ा कभी नहीं उठाया था, लेकिन कभी-कभी वैयक्तिक आह्लाद में गाने पर विवश हो गए थे। इस आन्तरिक विवशता में अनुभूति की जो अभिव्यक्ति हुई अथवा जनसमाज को उन्होंने जिस वाणी में

1-- "छीनता हो स्वत्व कोई और तू - - -" दिनकर ।

2-- गुरु गोबिन्द सिंह, लक्ष्मण सिंह, पृ० 1 ।

संदेश दिया, उसे हम उनका काव्य समझ बैठे। मूलत: काव्यत्व तो उनके संदेश का बहुत गौण तत्व था। इसीलिए साहित्यिक दृष्टि से इसका मूल्यांकन करना इनके साथ न्याय (न) कर सकें। (न्याय होगा) उनके सम्पूर्ण काव्य का प्रेरणा स्रोत वैयक्तिक आनन्द, राजनैतिक अत्याचार का विरोध तथा सामाजिक जागरण का संदेश रहा है।"[1]

प्रकाशित और प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थों के अनुसार गुरु गोबिन्द सिंह-रचित निम्नलिखित कृतियाँ प्रामाणिक कही जा सकती हैं।

1: जापु ,	2: अकाल स्तुति ,
3: विचित्र नाटक ,	4: चंडी चरित्र उक्ति विलास ,
5: चंडी चरित्र,	6: वार श्री भगवती जी दी,
7: चौबीस अवतार,	8: मीर मेंहदी,
9: ब्रह्मा अवतार,	10: रुद्र अवतार,
11: शस्त्र नाममाला,	12: ज्ञान प्रबोध,
13: पाख्यान चरित्र,	14: हजारे दे शब्द,
15: सवैये,	16: जफरनामा और
17: हिकायतें ।[2]	

डा० प्रसन्नी सहगल के अनुसार, "गुरु गोबिन्द सिंह का रचनाकाल संवत् 1740 के कुछ वर्ष पूर्व से लेकर संवत् 1763 तक के लगभग माना जा सकता है।"[3]

1-- गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व, डा० भैनी, पृ० 128-129 ।

2-- (क) गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 113 ।

(ख) सोधक कमेटी, सन् 1952 में खालसा दीवान अमृतसर की ओर से प्रकाशित रिपोर्ट ।

(ग) हिस्ट्री आफ सिक्ख, जे० डी० कनिंघम, पृ० 461 ।

(घ) विचित्र नाटक, सं० ओम प्रकाश आनन्द, पृ० 22 ।

3-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 117 ।

गुरु गोबिन्द सिंह ने साहित्य की श्री-वृद्धि हेतु साहित्य-सृजन नहीं किया अपितु अपने विचारों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए, जन-मानस को फकफोरने के लिए अपने विचारों को लिपि-बद्ध किया। यह और बात है कि भाव और भाषा-सौन्दर्य के कारण उनकी रचनाएँ साहित्य जगत् में सम्मान की अधिकारिणी बनीं। साहित्य के मनीषियों ने औरंगजेब को लिखे गए 'विजय-पत्र' एवं 'हिकायतों' को भी उनकी साहित्यिक रचनाओं में सम्मिलित कर दिया जबकि ये मात्र औरंगजेब को सम्बोधित करके लिखी गई थीं।

गुरु जी ने तीन भाषाओं -- हिन्दी (ब्रज), पंजाबी और फारसी में अपने भावों को अभिव्यक्त किया। वार भगवती या चण्डी दी वार पंजाबी भाषा में है। जफरनामा व हिकायतें फारसी भाषा में और शेष सभी रचनाएँ हिन्दी भाषा में हैं।

गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन का लक्ष्य दुष्ट-दलन, धर्म की रक्षा था। धर्म की रक्षा के लिए वीरता आवश्यक है। शक्ति के बिना सफलता संदिग्ध है। शक्ति द्वारा ही अधिकार प्राप्ति, आत्म-रक्षा, धर्म-रक्षा, जाति एवं देश-रक्षा सम्भव है। शक्तिहीन के लिए कुछ भी कर पाना सम्भव नहीं। ईश्वर जड़ नहीं, शक्ति रूप है। संस्कृत में कहावत है कि "दैव भी दुर्बल का घातक होता है।" तीव्र वायु या तूफान में अग्नि प्रज्वलित होती है परन्तु दीप बुझ जाता है। गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने साहित्य-सर्जन का श्रीगणेश शक्ति पूजा से किया है विभिन्न शस्त्रों को ईश्वर रूप मान कर उनकी आराधना की है। उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में वीर-रस का भाव आद्यन्त व्याप्त है। संघर्षों का वर्णन उन्होंने विशेष तन्मयता से किया है।

गुरु गोबिन्द सिंह की समस्त कृतियों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनकी लेखनी शक्ति की भक्ति में विचरण करती हुई ऐतिहासिक, पौराणिक एवं प्रचलित लौकिक-कथाओं के क्षेत्र में रमी है।

'जापु', 'अकाल-स्तुति', 'स्फुट पद अर्थात् शब्द हजारे' और 'सवैये' एवं 'शस्त्रनाममाला' विशुद्ध भक्ति-परक ग्रन्थ हैं जिनमें ईश्वर की भिन्न नामों से उपासना की गई है ।

'जफरनामा' और कुछ अंश में 'विचित्र नाटक' ऐतिहासिक रचनाएँ हैं । 'जफरनामा' में चमकौर-युद्ध में मुसलमान सैनिकों द्वारा वचनभंग करते हुए गुरु गोबिन्द सिंह के सैनिकों पर किये गए अत्याचारों का वर्णन है और औरंगजेब को वास्तविकता जानने के लिए पंजाब आने का निमन्त्रण दिया गया है। 'विचित्र नाटक' में अपने जन्म एवं भंगाणी एवं नादौन, के स्थानों पर हुए युद्ध तथा दिलावर खान, हुसैनी आदि पहाड़ी राजाओं से युद्ध का वर्णन है। पौराणिक अर्थात् पुराणों पर आधृत रचनाओं में 'चंडी चरित्र (उक्ति विलास)', 'चंडी-चरित्र', 'चंडी दी वार (वार भगवती दी)', 'ज्ञान प्रबोध', 'चौबीस-अवतार', 'मेंहदी मीर', 'ब्रह्मा अवतार', 'रुद्र अवतार', 'हिकायतें' सम्मिलित की जा सकती हैं ।

पौराणिक रचनाओं का प्रारम्भ 'विचित्र-नाटक' के आरम्भिक अध्यायों से माना जा सकता है। यह रचना पुराण और इतिहास का अनोखा संगम है। अपने जन्म एवं वंश-परम्परा को गुरु गोबिन्द सिंह ने सूर्य वंश से सम्बन्धित कर पुराण-पुरुष से अपना ऐक्य प्रकट किया है। इस प्रकार पौराणिक कृतियों का प्रारम्भिक चरण विचित्र-- नाटक ही है। इस रचना में कुल 14 अध्याय हैं एवं 471 छंद हैं ।'चण्डी चरित्र (उक्ति विलास)' और 'चंडी चरित्र' दुर्गा सप्तशती' पर आधृत रचनाएँ हैं। डा० महीप सिंह के शब्दों में, "चंडी चरित्र उक्ति विलास मार्कण्डे पुराण के 'देवी महात्म्य' (दुर्गा सप्तशती) का स्वतन्त्र अनुवाद है।"[1] क्योंकि मूल सप्तशती तो तेरह अध्यायों में है परन्तु चंडी चरित्र केवल आठ अध्यायों

1-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, डा० महीप सिंह, पृ० 106 ।

में वर्णित है। सप्तशती की कुछ घटनाओं की चर्चा इस रचना में नहीं है और कुछ घटनाओं में कल्पना को आधार बनाया गया है।[1] इसमें कुल 233 छन्द हैं।

'चंडी चरित्र' द्वितीय में दुर्गा द्वारा महिषासुर, धूम्रलोचन, चंड-मुंड, रक्तबीज, शुंभ-निशुंभ, के वध का उल्लेख है। अन्त में देवी की स्तुति एवं चंडी चरित्र के पठन-पाठन का महात्म्य वर्णित है।

'चंडी दी वार' में उपरोक्त कथानक के प्रारम्भ में अपनी पूर्व गुरु परम्परा का स्मरण एवं अन्त में इन्द्र को राजसिंहासन दिलाने का प्रसंग जोड़ दिया गया है। आकार में यह कृति चंडी चरित्र की तुलना में अत्यन्त लघु है। चंडी चरित्र में कुल 262 छन्द हैं जबकि चंडी दी वार में कुल 55 छंद हैं।

'ज्ञान प्रबोध' की रचना भी पौराणिक पृष्ठभूमि के आधार पर की गई है। इसमें कुल 336 छन्द हैं। पूर्व भाग में 125 छन्द हैं जिनमें अकाल पुरुष की स्तुति की गई है एवं उत्तर भाग में ईश्वर के स्वरूप, कलियुग के प्रारम्भिक काल के राजाओं, राजा परीक्षित के पश्चात् जनमेजय के सर्पमेध यज्ञ तथा अश्वमेध यज्ञ, जनमेजय के तीन पुत्रों (असमेध, असमेधान तथा अजै सिंह) का वर्णन है। अजै सिंह के पुत्र 'जग' और फिर 'मुनी' इन राजाओं का वर्णन है। राजा मुनी अत्यन्त पराक्रमी था। एक विशाल यज्ञ का इसने आयोजन किया। यहीं पर ज्ञान-प्रबोध की कथा समाप्त हो जाती है।[2]

"चौबीस अवतार" की रचना कुल 4335 छन्दों में हुई है। इसमें लगभग सभी पौराणिक अवतारों का वर्णन है, परन्तु विशेषता यह है कि विष्णु के अवतारों के साथ ही ब्रह्मा और रुद्र द्वारा धारण किये गये अवतारों के सम्बन्ध

1-- विचित्र नाटक, डा० ओम प्रकाश आनन्द, पृ० 26 ।

2-- गुरु गोबिन्द सिंह का काव्य तथा दर्शन, डा० विनोद तनेजा, पृ० 81 ।

में भी वर्णन करके रचना को पूर्ण रूप से अवतारकाव्य बना दिया है।[1] इसमें मच्छ, कच्छ, नर, नारायण, मोहिनी, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, ब्रह्म, रुद्र, जालंधर, विष्णु, शेषशायी, अर्हन्तदेव, मनु राजा, धन्वन्तरि, सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण, अर्जुन, बुद्ध तथा कल्कि का क्रमश: वर्णन किया गया है।

हिन्दुओं के कल्कि अवतार के समान मुसलमानों में मेंहदी मीर के अवतार की कल्पना की गई है। यह 11 छन्दों में वर्णित है। कथानक इस प्रकार है जब कल्कि अवतार शक्ति के मद से उठेगा तब मीर मेंहदी अवतार धारण कर उसका वध करेगा और जब मीर मेंहदी अभिमान ग्रस्त होगा तो काल पुरुष कीड़े के रूप में उसके कान में प्रविष्ट कर उसका नाश कर देगा।

ब्रह्मावतार में कुल 342 छन्द हैं। इसमें ब्रह्मा के सात अवतारों --- बाल्मीकि, कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, व्यास षट्ऋषि एवं कालिदास का वर्णन है।

रुद्रावतार में रुद्र के दो अवतारों दत्तात्रेय और पारसनाथ का वर्णन किया गया है। इसकी रचना कुल 856 छन्दों में की गई है।

'हिकायतें' संख्या में ग्यारह हैं। इसमें पौराणिक एवं अन्य कथाओं के आधार पर औरंगजेब को नसीहतें दी गई हैं।

चरित्रोपाख्यान में पौराणिक एवं लौकिक कथाओं का वर्णन किया गया है। इसमें कुल 7555 छन्द हैं एवं 405 कथाओं का वर्णन है। 'डा० मोहन सिंह के अनुसार, "यह कथाकाव्य मध्यकालीन भारत में ज्ञात एवं प्रसिद्ध पंजाबी या गैर-पंजाबी, भारतीय अथवा गैर भारतीय कथाओं का विश्वकोश है। "इस कथा-काव्य की अधिकतर कथाओं का विषय तो 'काम' है, तथापि अनेक कथाओं में शूरवीर नारियों द्वारा अपने सतीत्व तथा परिवार के सम्मान की रक्षार्थ

1-- विचित्र नाटक, सं० डा० ओम प्रकाश आनन्द, पृ० 27 ।

किए गए युद्धों की चर्चा भी है ।"[1]

चरित्रोपाख्यान में संकलित कथाओं को विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से विभाजित किया है। डा० धर्म पाल आष्टा ने इनको तीन वर्गों में विभाजित किया है -- (1) वीरता सम्बन्धी कथाएँ (2) प्रतिष्ठा हेतु आत्मत्याग की कथाएँ तथा (3) शृंगारपरक कथाएँ । डा० प्रसन्न सहगल ने छः शीर्षकों के अन्तर्गत इनका विभाजन किया है -- (1) धार्मिक, (2) पौराणिक, (3) ऐतिहासिक, (4) शृंगारिक, (5) सामाजिक तथा (6) विविध । डा० सत्येन्द्र ने इन्हें मुख्य और गौण दो भागों में बाँट कर, मुख्य रूप के अन्तर्गत प्रेमाख्यान तथा युद्ध कथाएँ एवं गौण रूप में 'काम कथाएँ' और 'विनोद कथाएँ' में विभाजित किया है। डा० हरिभजन सिंह ने विषय की दृष्टि से इन कथाओं को चार वर्गों -- (1) प्रेम कथाएँ, (2) शौर्य कथाएँ, (3) विनोद कथाएँ और (4) काम अथवा छल कथाएँ में विभाजित किया है। गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा प्रस्तुत कृति के प्रणयन का मूल उद्देश्य तत्कालिक लोगों के भ्रष्ट आचरण की भर्त्सना तथा उचित नैतिक मूल्यों की स्थापना करना था।[2]

गुरु गोबिन्द सिंह ने रचनाओं द्वारा अपने विचारों को शाश्वत रूप प्रदान किया। वे चाहते थे कि मनुष्य बाह्य आडम्बरों, धार्मिक पाखण्डों से दूर रह कर मानव धर्म का पालन करें। जड़-ईश्वर के स्थान पर अकाल पुरुष एवं शक्ति की उपासना करें। दुर्गा एवं विभिन्न अवतारों की शक्ति द्वारा राक्षसों का नाश दिखा कर उन्होंने शक्ति की महत्ता प्रतिपादित की। धर्म-प्राण जनता के लिए इससे अलग कोई उपाय नहीं था।

शक्ति की भक्ति एवं कथाओं द्वारा लोगों में वीरता का संचार किया। वीर एवं सर्वशक्तिशाली बन जाने पर भी मनुष्य को विनम्र रहना चाहिए ।

1-- विचित्र नाटक, सं० डा० ओम प्रकाश आनन्द, पृ० 29-30 ।

2-- गुरु गोबिन्द सिंह का काव्य तथा दर्शन, डा० विनोद तनेजा, पृ० 103-104 ।

अभिमानी बनने पर वह नष्ट हो जाएगा। मनुष्य को भ्रातृत्व-भाव एवं समानता के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। समाज में भ्रष्टाचार व्याप्त है। इससे बच कर रहना एवं नष्ट करना ही श्रेयस्कर है अन्यथा यह समाज को ही नष्ट कर देगा। धर्म-रक्षा, आत्म-सम्मान की रक्षा, जाति एवं देश की रक्षा के लिए हर समय तैयार रहना चाहिए। सांसारिक आकर्षणों, सम्बन्धों एवं भावनाओं के बन्धनों में न बँध कर कर्तव्य का पालन करना एवं समय की माँग को पूरा करना चाहिए। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, शक्ति एवं विनम्रता का प्रवाह उनकी वाणी में सहज ही उपलब्ध है।

गुरु गोबिन्द सिंह की वाणी में यद्यपि वीर एवं शान्त रस की प्रधानता है तथापि अन्य रसों --- शृंगार, भयानक, वीभत्स, रौद्र, हास्य, अद्भुत, वात्सल्य एवं करुणा की भी उपेक्षा नहीं की गई है ।

अभिव्यक्ति पक्ष में गुरु गोबिन्द सिंह ने मात्रिक एवं वर्णिक दोनों छन्दों का प्रयोग किया है। विभिन्न अलंकार : शब्दालंकार एवं अर्थालंकार, मुहावरे लोकोक्तियाँ, ओज, माधुर्य और प्रसाद आदि काव्य के गुण, शब्द-शक्तियाँ, संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्द, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी एवं पंजाबी के शब्द भी उनकी रचनाओं में सहज प्राप्य हैं।

सारांशत: यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि गुरु गोबिन्द अद्वितीय प्रतिभा के धनी एवं अद्भुत व्यक्तित्व के स्वामी थे। पंकिल वातावरण में पंकज-सदृश रूप और गुण उनमें वर्तमान थे। युग-प्रवर्तक की क्षमता लेकर वे उत्पन्न हुए थे; युग-परिवर्तन ह उन्होंने किया, अन्याय और अधर्म का यथा शक्ति उन्होंने विरोध किया। धर्म की रक्षा हेतु और अन्याय के प्रतिकार के लिए, उन्होंने अपना ही सम्पूर्ण जीवन नहीं, वरन् पिता एवं समस्त पुत्रों का बलिदान भी कर दिया। चारों पुत्रों की मृत्यु के समाचार ने उन्हें अशक्त न बना कर और अधिक

शक्तिसम्पन्न बनाया । मानव के कल्याण के लिए उन्होंने जो कुछ किया वह निश्चय ही अनुकरण-योग्य है। अपना तन-मन-धन उन्होंने मानवता की रक्षार्थ समर्पित कर दिया। उनकी वाणी, उनका व्यक्तित्व आज भी संसार के सम्मुख एक उदाहरण है। भाषा पर उनका जबरदस्त अधिकार था। उनकी भाषा में इतनी शक्ति थी कि आज भी उनका साहित्य यथेष्ट प्रभाव डालने में सक्षम है। मृत में प्राण फूंकने में आज भी उनका संदेश पर्याप्त सशक्त है। व्यक्तित्व और वाणी ने मिलकर जो सामूहिक प्रभाव उत्पन्न किया वह युगीन नहीं, युग-युगीन है। उनके उदात्त-विचार और गम्भीर व्यक्तित्व, संत्रस्त मानव को आज भी संबल प्रदान करते हैं।

(ख) विचित्र नाटक : नाटक के निकष पर

विचित्र-नाटक : नाटक के निकष पर

विचित्र नाटक के काव्य-रूप को लेकर हिन्दी साहित्य जगत् में पर्याप्त मतभेद है। इस रचना की 'विचित्र-नाटक' संज्ञा से, इसे हिन्दी साहित्य की विधा-विशेष 'नाटक' से सम्बन्धित किये जाने का प्रयास किया गया। यहाँ तक कि इसे 'नाटक' सिद्ध किये जाने के लिए ठोस कदम भी उठाए गए। 'नाटक' शब्द सुनते ही कृति का जो नाटकीय बिम्ब उभरता है वह इस नाटक को पढ़ते ही तिरोहित हो जाता है। वस्तुत: गुरु गोबिन्द सिंह ने नाटक शब्द का प्रयोग विचित्र क्रिया-कलापों से आपूरित इस सृष्टि के सन्दर्भ में किया है। सांसारिक आकर्षण, आडम्बर एवं संघर्ष, वैराग्यवान् ज्ञानी पुरुष को 'तमाशा' सा प्रतीत होते हैं। संसार की इन विचित्र क्रियाओं को गुरु गोबिन्द सिंह ने स्वयं देखा और संसार में निरन्तर हो रहे इस आश्चर्यजनक तमाशे को विचित्र-नाटक के माध्यम से समाज को दिखाने का प्रयास किया। कृति के नामकरण की यही सार्थकता प्रतीत होती है। नाम की गहराई में न जाकर, आलोचकों ने यह कहने का दावा किया कि 'ब्रजभाषा नाटककार अपनी किन्हीं कृतियों को जानबूझ कर नाटक नाम दे दिया करते थे[1], अथवा नाटक का नामकरण करते हुए, कवि ने, औचित्य पर गम्भीरता से विचार नहीं किया।' अपने वक्तव्य की सत्यता प्रमाणित करने के लिए उदाहरण भी दिया : इससे पूर्व भी हनुमन्नाटक प्रभृति ऐसी ही रचनाएँ प्रणीत हो चुकी थीं[2]। गुरु जी ने परम्परा का पालन करते हुए ही यह नामकरण किया। हमारा विनम्र निवेदन है कि मत-स्थापना से पूर्व मनीषी आलोचकों को अपने मन्तव्य का परीक्षण अवश्य कर लेना चाहिए। हनुमन्नाटक के प्रसंग में भी यही बात कही जा सकती है। इसका विवेचन सम्बन्धित अध्याय

1-- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, डा० गोपीनाथ तिवारी, पृ० 61 ।

2-- विचित्र नाटक, देवेच्छा, पृ० 118 ।

में किया जा चुका है। 'विचित्र-नाटक' में नाटक संज्ञा के होते हुए भी अनेक विद्वानों ने 'नाटक' शब्द से कवि के वास्तविक अभिप्राय: को समझ कर, इसे पाठ्य काव्य की श्रेणी में परिगणित किया, जबकि अन्य विद्वानों ने इसे नाटक माना एवं कुछ विद्वानों ने तो नाटक सिद्ध करने का विशेष प्रयास किया। 'विचित्र-नाटक' गुरु गोबिन्द सिंह कृत एकमात्र नाटक नामधारी कृति है। आत्म-विस्मृति प्रधान युग में आत्मकथा लेखन का प्रयास निश्चय ही विचित्र था, और आत्मकथा के आवरण में, आत्मकथा लिखने का नाटक करना, कहीं अधिक विचित्र। 'विचित्र-नाटक' गुरु गोबिन्द सिंह की आत्मकथा है। प्रस्तुत कृति के सृजन के मूल में लेखक का उद्देश्य आत्म-कथा कहना नहीं था, आत्म-कथा लेखन तो बहाना मात्र था। लक्ष्य था-सुषुप्त, संत्रस्त, पीड़ित समाज को सही दिशा दिखाना एवं उनमें जागृति का मन्त्र फूंकना; अन्याय के प्रतिकार हेतु उन्हें कटि-बद्ध करना। प्रश्न उठता है कि इस उद्देश्य के लिए लेखक ने आत्मकथा-लेखन का नाटक क्यों किया ? इसका कारण धार्मिक एवं राजनैतिक अव्यवस्था अनुभव होता है। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का बोलबाला था। जनसमाज भाग्यवादी था, और अपनी रक्षा के लिए, वह ईश्वर के सम्मुख करबद्ध खड़ा था। अत्याचार एवं अन्याय को वह भाग्य की देन समझता था और उसका विश्वास था कि मात्र ईश्वर ही इसका प्रतिकार कर सकता है; अपनी रक्षा में स्वयं तत्पर होना तो दूर की बात थी। ईश्वर में, उसे पाने के लिए किए गए आडम्बरों में, अटूट आस्था रखने वाले धर्मप्राण एवं धर्मभीरु समाज को प्रत्यक्ष रूप से जगा पाना असम्भव था। इसके अतिरिक्त मुगल साम्राज्य में, वह भी औरंगजेब के काल में, जहाँ विद्रोही का सिर उठने से पहले ही कुचल दिया जाता था, स्पष्ट रूप से विद्रोह का स्वर उठाना, मौत को बुलावा देना था। इन कठिन परिस्थितियों में लक्ष्यसिद्धि का उपाय गुरु गोबिन्द सिंह को आत्मकथा लेखन अनुभव हुआ। अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं प्रभावशाली रीति से, उन्होंने अपने उद्देश्य को पाने के लिए आत्मकथा का प्रणयन किया। धार्मिक पाखण्डों एवं अवतारों की असत्यता सिद्ध की, स्वयं को राम का वंशज बताया, अपना उद्देश्य 'दुष्ट-दलन संत-उबारन' कहा, तत्पश्चात् तेग बहादुर के बलिदान एवं अपनी युद्ध-कथाओं द्वारा समाज में रोष उत्पन्न कर,

वीरता का संचार किया। धर्म-प्राण जनता का विश्वास पाने के लिए स्वयं राम के वंशज बने। धर्म-भीरु समाज को लिए ईश्वर के दूत बने । इस विचित्र रीति से उन्होंने अपने उद्देश्य का प्रतिपादन किया एवं उद्देश्य-सिद्धि भी की। अपनी इस कृति को यदि वे 'विचित्र-नाटक' अभिधान में 'नाटक' के स्थान पर कोई और शब्द दे देते तो साहित्य जगत् में इसके काव्य-रूप सम्बन्धी विवाद की उत्पत्ति न होती।

पाश्चात्य विचारक कनिंघम ने सिक्ख इतिहास लिखते समय, "विचित्र-नाटक" नाम का अनुवाद 'वन्डूस टेल' किया है 'वन्डूस ड्रामा' नहीं,[1] जो उनकी प्रस्तुत कृति की काव्यरूप-सम्बन्धी मान्यता का परिचायक है ।

डा० जयभगवान गोयल[2] एवं डा० हरिभजन सिंह[3] ने विचित्र नाटक को 'ऐतिहासिक प्रबन्ध' की संज्ञा दी है ।

डा० प्रसन्नी सहगल[4] एवं डा० पवन कुमार जैन[5] ने इसे प्रबन्ध काव्य की श्रेणी में परिगणित किया है। जबकि डा० विनोद तनेजा के अनुसार प्रस्तुत रचना प्रबन्धात्मकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती।[6] कहने का अभिप्राय यह है कि उद्धृत समालोचकों ने विचित्र-नाटक को दृश्य-काव्य न मान कर श्रव्य अर्थात् पाठ्य-काव्य माना ।

1-- हिस्ट्री आफ सिक्स, जे० डी० कनिंघम, पृ० 120 ।

2-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका वीरकाव्य, डा० जयभगवान गोयल, पृ० 5, (भूमिका) ।

3-- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, डा० हरिभजन सिंह, पृ० 189 ।

4-- गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, पृ० 190-91 ।

5-- रीतिकालीन काव्य-विधाओं का शास्त्रीय अध्ययन, डा० पवन कुमार जैन, पृ० 388 ।

6-- गुरु गोबिन्द सिंह का काव्य तथा दर्शन, डा० विनोद कुमार, पृ० 167 ।

डा० चन्द्रकान्त बाली ने इस कृति को गेय-नाटक माना,[1] डा० नित्यानन्द शर्मा ने इसे नाट्य काव्य की संज्ञा दी।[2] डा० राजनारायण मौर्य ने भी इसे नाटक की श्रेणी में परिगणित किया।[3]

इस काव्य-रचना को नाटक मानने एवं मनवाने का विशेष आग्रह डा० दशरथ ओझा[4] एवं डा० चन्द्रशेखर[5] का है। इस कृति को नाटक सिद्ध करने का प्रयास इतना सशक्त है कि यह निर्णय-अनिर्णय के मध्य पाठक को उलझने नहीं देता वरन् उसे अनायास ही अपने विश्वास में ले लेता है। उल्लेखनीय है कि यह सशक्त प्रतिपादन-शैली, दिग्भ्रमित एवं अनजान पाठक को तो विश्वास में ले सकती है, परन्तु सत्य के समीप खड़े व्यक्ति को विचलित नहीं कर सकती। 'विचित्र-नाटक' को 'नाटक' सिद्ध करने का प्रयास स्वयं में किसी नाटक से कम नहीं ।

डा० दशरथ ओझा के शब्दों में, "नाटक के रूप में आत्मकथा लिखने की यह शैली निराली है। यह नाटक रस-विचार, काव्यत्व की दृष्टि से बड़ा आकर्षक है। गुरु गोबिन्द सिंह का नाटक के क्षेत्र में इस प्रकार का योगदान सराहनीय है।"[6] अपने वक्तव्य को पुष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं, "श्री बनारसी दास, हृदयराम तथा गुरु गोबिन्द सिंह प्रभृति नाट्यकारों ने युग की इस मनोवृत्ति (जननाट्य शैली) को समझा और तदनुकूल नाटक साहित्य का सृजन किया।[7]

1-- पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० चन्द्रकान्त, पृ० 277-78 ।

2-- हिन्दी साहित्य का मध्यकाल, डा० नित्यानन्द, पृ० 327 ।

3-- हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास-7, सं० भगीरथ मिश्र, पृ० 543 ।

4-- हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास, डा० ओझा, पृ० 123 (1970)

5-- हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन-- भाषा विभाग पंजाब, पृ० 96-98 ।
(7 मार्च 1976 को अमृतसर में आयोजित गोष्ठी में पढ़ा गया शोध प्रबंध)

6-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 123, पाँचवां संस्करण ।

7-- वही, पृ० 136 ।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने- "हमारा यह मत है कि हिन्दी के प्रथम उत्थान की कृतियाँ, जिनका उल्लेख किया गया है, हिन्दी के मौलिक नाटक हैं। ऐसी कोई युक्ति नहीं प्रतीत होती, जिससे इनको नाटक न माना जाए।"[1] -कहकर विचित्र-नाटक आदि कृतियों को नाटक सिद्ध किया।

डा० कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह (कुंवर) ने अपने शोध-प्रबन्ध में डा० ओझा के मत पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखा है, "गुरु गोबिन्द सिंह का 'विचित्र-नाटक' भी ऐसी ही रचना है जिसमें नाटक के किसी तत्व की छाया भी नहीं छू गई है, पर नाट्य-समीक्षकों द्वारा वह नाटक समझा और कहा गया है। डा० ओझा जैसे विद्वान् भी इसे नाटक समझ बैठे हैं।"[2]

डा० चन्द्रप्रकाश सिंह आदि के मत की आलोचना एवं डा० दशरथ ओझा के मत को सशक्त बताते हुए डा० चन्द्रशेखर का कहना है, "कुछ विद्वानों (चन्द्रप्रकाश) को इस प्रयोग में नाटकीयता की अपेक्षा प्रबन्धात्मकता के दर्शन होते हैं। कुछ (अमर सिंह 'चक्कर') इसे नाटक तक मानने को प्रस्तुत नहीं हो पाए हैं। कुछ (धर्मपाल आष्टा) इसे लीला का पर्याय मान कर बैठ गए हैं। कुछ आलोचकों ने इसके बारे में अजीबो गरीब गलत फहमियाँ खड़ी की हैं।

आज हम बैठे हुए को उठाने पर और सोए हुए को जगाने पर आमादा हैं। -- -- -- -- हमारा विनम्र निवेदन है कि गुरु गोबिन्द सिंह का "विचित्र नाटक" विशुद्ध नाटक है। 'बीज-नाटक' की भूमिका से लिखा हुआ "अनाटक" की सम्भावनाओं से संगर्भित प्रयोग है। यार-दोस्तों को शिकायत है : अजी उस में न संवाद है, न पात्र, यह कैसा नाटक है ? कैसा 'विचित्र' नाटक है ? हमारी इल्तमास है कि आपकी " हुज्जत " में ही जवाब

1-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 134 पांचवां संस्करण।

2-- हिन्दी नाट्य-साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा० चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ० 158-59 ।

है। भले मानसो ! "विचित्र-नाटक" इस युग की विधा-संकरता में किया हुआ एक रचनात्मक नाट्य-प्रयोग है। एक ओर संस्कृत नाटकों की विच्छृंखल हो रही परम्परा दूसरी ओर हिन्दी की फैल रही प्रबन्धात्मकता। क्राइसिस के उस बिन्दु पर हिन्दी नाटक के ऐसे ही प्रयोगधर्मी रूप सामने आ रहे थे, ठीक उसी प्रकार जैसे आज के विधा-संक्रमण-बिन्दु पर नाटक के नए चेहरे-मोहरे उभर रहे हैं। "विचित्र नाटक" में आत्मकथा, जीवनी, रिपोर्ताज जैसी विधाओं का सामासिक अन्वयन एक नए नाट्यरूप में होता है। उस की तबीयत औरपूरा मिज़ाज नाटक का है, शख्सीयत नाटकनुमा है। वह निश्चित ही एक ऐसा प्रातिभ-प्रयोग है, जो न केवल पंजाब की देन को अनन्य बनाता है, बल्कि सम्पूर्ण हिन्दी नाटक में प्रयोगशीलता की आणविक ऊर्जा निष्पन्न करता है।"[1]

डा० चन्द्रशेखर ने संवाद एवं पात्रों के न होते हुए भी प्रस्तुत कृति को नाटक सिद्ध करने का जो प्रयास किया है वह स्वयं में 'नाटक सिद्ध हुआ है। कृति की वास्तविकता को जाने बिना, 'नाटक' शब्द देख कर किसी कृति को नाटक सिद्ध करने पर आमादा हो जाना, (जबकि वह कृति नाटक न हो) नाटक नहीं तो और क्या है ?

'नाटक' के सम्बन्ध में विभिन्न शास्त्रीय नियमों, रूढ़ियों एवं अपेक्षाओं की अवहेलना करने पर भी इतना तो निश्चित है कि 'नाटक' शब्द का प्रयोग जहाँ किया जाएगा, वहाँ 'नट की क्रिया/प्रदर्शन' अपेक्षित होगा। कृति की रचना करते समय लेखक का ध्यान उसके प्रदर्शन-पक्ष से अवश्य सम्बन्धित रहेगा। प्रदर्शन के धरातल पर उतरे बिना भी कृति प्रदर्शन की सम्भावनाओं से युक्त होगी। रचना-विशेष में यह सब तभी उपलब्ध होगा यदि लेखक ने 'नाटक' शब्द का प्रयोग साहित्यिक-विधा-विशेष के रूप में किया होगा।

1-- हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन, भाषा विभाग पंजाब, पृ० 96-98 ।
(7 मार्च 1976 को अमृतसर में आयोजित गोष्ठी में पढ़ा गया शोध-पत्र)

'विचित्र-नाटक' में 'नाटक' शब्द का प्रयोग साहित्यिक विधा के रूप में नहीं, वरन् संसार में अच्छे-बुरे लोगों की क्रियाओं को प्रकट करने के लिए किया गया है। यह सृष्टि परमेश्वर कृत एक विचित्र नाटक है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी भूमिका को प्रदर्शित करता है। संसार रंगमंच है, समस्त मानव पात्र-रूप हैं, और उनकी क्रियाएँ नाटक हैं। निर्देशक है-अकालपुरुष, जिसके निर्देशन पर संसृति का यह नाटक परिचालित होता है। विचित्रताओं से भरी यह सृष्टि ईश्वर का विचित्र-नाटक ही है। गुरु गोबिन्द ने स्वयं को रघुवंश से जोड़ने, अकाल-पुरुष से बातचीत करने एवं आत्मकथा वर्णित करने के 'नाटक' द्वारा जन-सामान्य में वीरता और उत्साह का मन्त्र फूँका है। विचित्र संसार में विचित्र पुरुष के कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने वाली इस कृति का नाम 'विचित्र-नाटक' सार्थक ही है।

'विचित्र-नाटक' में नाटकीय नियमों का निर्वाह भी नहीं किया गया है। कथावस्तु-संगठन की दृष्टि से ही यह कृति अनाटकीय प्रमाणित हो जाती है। कार्यावस्थाओं का पालन इस कृति में नहीं हुआ है। अन्य नाटकीय नियमों को खोजना ही व्यर्थ है। विचित्र नाटक, कवि की आत्म-कथा है परन्तु चौदह अध्यायों में विभाजित इस कृति में गुरु गोबिन्द सिंह ने अपना जन्म सातवें अध्याय में प्रकट किया है और इसके पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह ने भंगाणी युद्ध, नादौन युद्ध खानजादे, हुसैनी खान एवं विभिन्न पहाड़ी राजाओं से हुए युद्ध का वर्णन किया है। प्रारम्भ के छः अध्यायों में सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अपने पूर्व जन्म की कथा कही है जो मिथकीय होने के कारण अयथार्थ है। जन्मपूर्व की होने के कारण यह प्रसंग आत्म-कथा का अंश नहीं बन सकते। आत्म-कथा के नाम पर युद्ध-प्रसंगों का वर्णन है। वह भी अपूर्ण है। जिस कारण कथा-विकास विभिन्न अवस्थाओं प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम को प्राप्त नहीं होता, जो कथा की पूर्णता के लिए आवश्यक है। संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि विचित्र-नाटक नाटकीय कृति नहीं है। लेखक ने इस कृति का सृजन नाटकीय कृति के रूप में नहीं किया, न ही उसका

दृष्टिकोण विचित्र-नाटक की कथा के प्रदर्शन की ओर था। 'नाटक' शब्द मात्र साहित्यिक विधा का वाचक नहीं है ।

नाटक न होते हुए भी प्रस्तुत कृति को नाटक सिद्ध करने के सन्दर्भ में उठाया गया ठोस कदम निश्चय ही असहनीय है। 'हिन्दी नाटक कोश' में 'विचित्र-नाटक' को स्थान देना ऐसा ही है, जो भारतीय मनीषा के प्रति विद्यमान आस्था को झकझोर देता है। हिन्दी नाटक-कोश में 'विचित्र-नाटक' का परिचय इस प्रकार दिया गया है :--

विचित्र नाटक-(सन् 1700 के आसपास, पृ० 76)

लेखक	--गुरु गोबिन्द सिंह ।
प्रकाशक	--गुरुद्वारा शिरोमणि प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर ।
पात्र	--पुरुष 5, स्त्री -- नहीं । अंक के स्थान पर अध्याय ।
घटनास्थल	--युद्ध क्षेत्र ।[1]

उल्लेखनीय है कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा प्रकाशित 'विचित्र-नाटक' की प्रस्तावना में अमर सिंह 'चाकर' ने स्पष्ट लिखा है,- "वास्तव में यह नाटक ग्रन्थ नहीं जैसा कि इसके नाम से प्रकट होता है, वरन् साहित्यिक दृष्टि से इसे महाकाव्य कहना चाहिए। तो भी इसे नाटक नाम दिया गया है, तो केवल इसलिए कि इसमें अपनी आत्मकथा का वर्णन करते हुए गुरु जी ने कतिपय पारलौकिक घटनाओं का उल्लेख इस प्रकार से किया है, जिससे अगम्य एवं आध्यात्मिक प्रतिपादित विषय लौकिक-बुद्धि-गोचर हो गया है। मानव-बुद्धि तो लौकिक उपकरणों को लेकर संगठित हुई है, वह पारलौकिक विषय उसके लिए सर्वथा अगम्य होता है, किन्तु गुरु जी ने इस ग्रन्थ द्वारा हमें उस अगम्य के वेह चित्र दिखाए हैं जिन्हें यथार्थ घटनाओं का अभिनय ही कहा

1-- हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, पृ० 439 ।

जा सकता है। यह अभिनय अद्भुत और विचित्र होने से ग्रन्थ का नाम दिया गया है -'विचित्र नाटक'। * संपादक का यह कथन विचित्र-नाटक के पाठ्य होने की बात कहता है। चाहे उक्त कथन को डा० ओझा महत्वपूर्ण न समझें, तथापि आलोच्य नाटक के सन्दर्भ में वास्तविकता जानने की जिज्ञासा की सृष्टि करने में यह कथन अवश्य समर्थ है। नाटक-साहित्य के विशेषज्ञ डा० दशरथ ओझा के मत के परीक्षण से पूर्व विचित्र-नाटक की कथा-वस्तु का संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है।

'विचित्र-नाटक' में कुल 471 छन्द हैं और यह 14 अध्यायों में विभक्त हैं। कथा का प्रारम्भ खड्ग, खड्गपाणि और काल की स्तुति से हुआ है। (सोढ़ी वंश (अपने वंश) की उत्पत्ति बताने के लिए गुरु गोबिन्द ने पुराणाश्रृत कथा वर्णित की है। 'ओंकार' से विष्णु, ब्रह्मा, शिव और महाविष्णु की उत्पत्ति, महाविष्णु के एक कान की मैल से मधु-कैटभ नामक दो राक्षसों एवं दूसरे कान की मैल से संसार की उत्पत्ति हुई। काल-पुरुष ने मधु-कैटभ का वध किया, जिनकी मज्जा ने समुद्र पर तैर कर 'मेदिनी' का निर्माण किया। फिर अनेक राजा हुए जिनमें एक 'दक्ष' भी थे। दक्ष की दस हजार में से चार कन्याओं के साथ कश्यप कश्यप ऋषि ने विवाह किया। अदिति और कश्यप से सूर्य का जन्म हुआ। सूर्य वंश में 'रघु' नामक राजा हुए जिनसे रघुवंश चला। 'रघु' के 'अज' नामक पुत्र थे। 'अज' से 'दशरथ' उत्पन्न हुए। 'दशरथ' के चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुए। दशरथ-पुत्र राम और सीता से लव और कुश नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ। कालान्तर में कुशवंश में कालकेतु नामक बली राजा हुआ, जिसने लववंशी राजा कालराम को उसके नगर से निकाल दिया। काल राय भाग कर सनौढ देश चला गया, जिससे सोढी वंश प्रचलित हुआ। एकबार फिर लव और कुशवंश में विरोध हुआ। कुश-वंशी हार गए और काशी जाकर वेदाध्ययन करने लगे, वे वेदी ---कहलाए। कुछ कालोपरान्त लव वंशिय (सोढी वंश) राजा ने वेदी (कुश) वंशजों को वेद पाठ के लिए आमन्त्रित किया। वेद पाठ हुए। तीसरा वेद सुनने के उपरान्त सोढी राजा ने अपना राजपाट वेदियों को सौंप दिया। वेदियों के सरदार ने कहा "तुमने तीन वेद सुने, कलियुग में जब मैं 'नानक' के रूप में जन्म

लूंगा। तीन जन्म धारण करने के उपरान्त चौथे जन्म में तुम्हें गुरुपद सौंप दूंगा।' कालान्तर में विरोधों के पुन: बढ़ने पर चारों और अमर्यादा फैल गई। तभी 'नानक' के जन्म का समय आया। जन्म लेकर नानक ने धर्म की स्थापना की, फिर अंगद और अमरदास का रूप धारण करने के उपरान्त चौथा गुरु सोढी वंशी रामदास को बनाया। रामदास के बाद अर्जुनदेव, हरिगोबिन्द, हरिराम, हरिकृष्ण और तेग बहादुर क्रमश: गुरु गद्दी के अधिकारी बने।

अपने जन्म के वर्णन का उपक्रम करते हुए गोबिन्द सिंह के अनुसार, 'मैं सप्तशृंग पर तपस्या-मग्न था तभी अकाल पुरुष ने मुझे पृथ्वी पर जाने का आदेश दिया और बताया कि पृथ्वी पर जितने भी दैत्य एवं देवता भेजे गए सबने ईश्वर की उपासना नहीं की। लोग महादेव, अष्टवसु, सूर्य, चन्द्र, अग्नि और यहाँ तक कि पत्थर को ही प्रभु मानने लगे। तब प्रभु ने सिद्ध और साधुओं, दत्तात्रेय, गोरखनाथ, रामानन्द और मुहम्मद महादीन को भेजा, पर उन्होंने भी अपना-अपना पंथ चलाया। इसलिए तुम पृथ्वी पर जाकर धर्म-प्रचार करो और कुबुद्धि का नाश करो। उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैंने जन्म लिया।'

गुरु गोबिन्द सिंह के जन्म से पूर्व, उनके पिता ने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया और त्रिवेणी पर दान-पुण्य करते हुए समय व्यतीत करने लगे। वहीं पर गुरु जी का गर्भ में प्रवेश हुआ एवं पटना में उन्होंने शरीर धारण किया। बाद में ये पंजाब आ गए। जब गुरु जी धर्म, कर्तव्य समझने योग्य हुए तो पिता गुरु तेगबहादुर का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् गोबिन्द सिंह ने राज्य-भार संभाला एवं पांवटा में रहकर विभिन्न जंगली, हिंसक पशुओं का शिकार किया एवं सुखोपभोग किया। अपने जन्म के पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह ने भंगाणी, नादौन, खानजादे, हुसैनी खान एवं विभिन्न पहाड़ी राजाओं से हुए युद्धों का वर्णन किया। तत्पश्चात् चालीस सिक्खों के साथ छोड़ देने, उनकी दुर्गति के वर्णन, गुरु एवं शुभ कर्मों की महत्ता, ईश्वर स्तुति एवं 'चंडी चरित्र' की रचना का संकेत करते हुए कथा समाप्त की है।

गुरु गोबिन्द सिंह ने इस कृति के रचना-काल का उल्लेख नहीं किया। इसमें सन् 1698 तक की घटनाओं का वर्णन है जिसके आधार पर इस ग्रन्थ का निर्माण काल सन् 1698-99 के लगभग माना जा सकता है। इस प्रकार यह गुरु के जीवन के लगभग 32 वर्षों की कथा है।

'विचित्र-नाटक' की कथा के दो आधार हैं -- रहस्यात्मक अतीत एवं वर्तमान। कथा का पूर्वार्ध जितना मिथकीय है, उत्तरार्ध उतना ही यथार्थ। कथा का पूर्वार्ध श्रद्धालु एवं धर्म-प्राण भक्त के लिए विश्वसनीय है, उत्तरार्ध इतिहासवेत्ता के लिए। प्रथम भाग की सच्चाई सन्देह का विषय हो सकती है परन्तु द्वितीय में सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं। प्रथम और अन्तिम अध्याय स्तुतिपरक है। दूसरे से छठे अध्याय तक की कथा पूर्व-जन्म की है। सातवें अध्याय में जन्म का संक्षिप्त वर्णन है एवं आठवें से तेरहवें अध्याय तक भंगाणी नादौन आदि युद्धों का वर्णन है। इस तरह चौदह में से सात अध्याय कवि के जीवन से सम्बन्धित हैं। यही सात अध्याय 'विचित्र-नाटक' को आत्मकथा सिद्ध करते हैं। इस नाटक से तीन तथ्य हमारे समक्ष आते हैं --- गुरु का जन्म-पूर्व का पौराणिक इतिहास, उसके जन्म का उद्देश्य एवं पहाड़ी राजाओं एवं शाही सेनाओं से हुए युद्ध का ऐतिहासिक विवरण। इस प्रकार 'विचित्र-नाटक' की कथा को प्रख्यात, उत्पाद्य या मिश्र में से किसी भी श्रेणी में सफलतापूर्वक नहीं रखा जा सकता। अर्ध कथानक पौराणिक एवं अर्ध-कथानक ऐतिहासिक है। अपनी कल्पना द्वारा गुरु गोबिन्द सिंह ने सृष्टि की कथा को पुराणों के आधार पर विकसित करते हुए, सूर्य एवं रघुवंश से अपना सम्बन्ध सिद्ध किया है। यह प्रसंग पुराणाधारित होते हुए भी उनकी उर्वर कल्पना का परिचायक है। अकाल-पुरुष एवं गुरु गोबिन्द सिंह का वार्तालाप तथा युद्ध-प्रसंगों के वर्णन में की गई कल्पनाएँ इस कथानक को कल्पना-मिश्रित पौराणिक-ऐतिहासिक सिद्ध करती हैं।

नाटक की कथा दृश्य एवं सूच्य दो रूपों में प्रस्तुत की जाती है। परन्तु विचित्र-नाटक की सम्पूर्ण कथा का 'सूच्य' के अन्तर्गत आना, इसे अनाटकीय

बना देता है। कथा के सम्पूर्ण सूत्र वर्णित रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। जन्म-पूर्व की कथा, अकाल पुरुष का गुरु को आदेश एवं युद्ध-प्रसंग सभी को लेखक ने अतीत की कथा के रूप में वाणी दी है; उन्हें वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया। 'कथा-वर्णन' की बात को कवि ने अनेक बार दोहराया है। यथा--

--कहाँ बुद्धि प्रभु तुच्छ हमारी । बरनि सकै महिमा जु तिहारी ।।
हम न सकत करी सिफत तुमारी। आप लेहु तुम कथा सुधारी ।।[1]

--अब मैं कहौं सु अपनी कथा । सोढी बंस उपजिआ जथा ।।[2]

--प्रथम कथा संछेप तै कहौं सु हितु चितु लाइ ।
बहुरि बडो बिसथार कै कहि हौं सभो सुनाइ ।।[3]

--बहु बिथार कहँ लगै बखानत । ग्रन्थ बढ़न तै अति डर मानत ।।[4]

इस तरह ~~[illegible]~~ कृतिकार बारबार कथा के कहने की बात करता है; ~~[illegible]~~ इसे दृश्य के क्षेत्र से जोड़ने का प्रयास करना उचित नहीं। इसके अतिरिक्त कथावस्तु-संगठन से ही प्रस्तुत कृति को 'नाटक' मानने में संकोच होने लगता है। ~~[illegible] के [illegible]~~ है।

1-- विचित्र नाटक, गुरु गोबिन्द सिंह, अध्याय 2, पद्य 3 ।

2-- वही, अध्याय 2, पद्य 8 ।

3-- वही, अध्याय 2, पद्य 9 ।

4-- वही, अध्याय 2, पद्य 16 ।

विस्तार के लिए द्रष्टव्य -- वही, (1) अध्याय 2, पद्य 19 ।
(2) ,, 2, ,, 26 ।
(3) ,, 3, ,, 51 ।
(4) ,, 4, ,, 10 ।
(5) ,, 5, ,, 3 ।
(6) ,, 14, ,, 7 ।
(7) ,, 14, ,, 10 ।
(8) ,, 6, ,, 33 ।

नाटक-रूप में परिचय देते हुए डा० दशरथ ओझा ने इसके पात्रों की संख्या पाँच बताई है। येई पाँचों पुरुष पात्र माने गए हैं।

पात्रों के सम्बन्ध में यह कहना अत्युचित नहीं कि नाटक में पाँच नहीं पाँच सौ के लगभग पात्र हैं। स्पष्ट नहीं हो पाया कि डा० साहब ने पात्रों की संख्या पाँच किस प्रकार निर्धारित की है। कवि ने पात्रों की संख्या के सम्बन्ध में कोई सीमा नहीं बाँधी; वह नाटक नहीं आत्मकथा कह रहा था, और आत्म-कथा का लक्ष्य अपना जीवन वर्णित करना नहीं था। इस कारण उद्देश्य-सिद्धि के लिए जिन-जिन प्रसंगों का चयन किया, उन प्रसंगों से सम्बन्धित पात्रों की संख्या की, उन्होंने चिन्ता नहीं की। यदि ओझा जी ने, कथा का पूर्वार्ध, जो गुरु जी के जन्म पूर्व से सम्बन्धित है, 'सूच्य' माना है तो भी उत्तरार्ध युद्धों से सम्बन्धित होने के कारण मात्र पाँच पुरुषों से युक्त नहीं हो सकता। यदि उन्होंने युद्ध के प्रमुख पात्रों की ही गणना की है तो भी पात्र-संख्या अधिक हो जाती है। प्रमाणस्वरूप--प्रथम युद्ध प्रसंग-- श्री संग्रामशाह और उसके चारों भाई गुलाबराय, जीतमल, संगतियाराम, और लाल चन्द युद्ध भूमि में बढ़े हैं। माहरीचन्द, गंगाराम ने फतेहशाह की सेना को जीत लिया। दयाराम ने क्रोध-पूर्वक युद्ध किया। विभिन्न सैनिकों एवं शत्रु पक्ष के पठान अफसरों को छोड़ देने पर भी प्रथम युद्ध की यह संख्या पाँच से अधिक हो जाती है। जिसमें प्रमुख सेना-नायक गुरु गोबिन्द सिंह सम्मिलित नहीं हैं। इसके अतिरिक्त हयातखान, नन्दचन्द, कृपालचन्द, साहबचन्द, गोपालचन्द, हरीचन्द, केसरशाह, जसवालिया, मधुकरशाह, गाजीचन्द, निजाबत खान, अलिफखान, राजसिंह, भीमचन्द, रामसिंह, पृथीसिंह, हुसैनी खान, जुझारसिंह, चन्दनराय चन्देला, अहदिया दल तथा गुरु विमुख विभिन्न सिक्ख आदि ~~पात्र~~, युद्ध से सम्बन्धित सेनाएँ आदि पात्र भी पात्र-संख्या निर्धारित करते समय नितान्त उपेक्षणीय नहीं हैं।

यदि पूर्वार्ध प्रसंग को भी इसमें सम्मिलित कर लिया जाए तो पात्र-संख्या को सीमा में बाँधना कठिन हो जाएगा। वह सृष्टि की उत्पत्ति से गुरु

गोबिन्द सिंह के जन्म तक की है। इस तरह सम्पूर्ण कथावस्तु के आधार पर पात्र संख्या पाँच निर्दिष्ट करना उपहासास्पद ही है।

विचित्र नाटक के सम्बन्ध में डा० दशरथ ओझा द्वारा प्रस्तुत अगला तथ्य दृश्य-योजना से सम्बन्धित है। इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है :-- घटना स्थल : युद्ध क्षेत्र । दीर्घ-कालिक कथानक होने के कारण, कथा में आयोजित विभिन्न प्रसंग इस प्रकार हैं --- (1) ईश्वर आराधना (2) ओंकार द्वारा विष्णु, ब्रह्मा, शिव और महाविष्णु की उत्पत्ति (3) मधुकैटभ एवं संसार की उत्पत्ति (4) मधुकैटभ वध : पृथ्वी की उत्पत्ति (5) विस्तार भय से कथासूत्र छोड़ कर राजा दक्ष से अज और अज से दशरथ, दशरथ से राम, राम-सीता से लव कुश की उत्पत्ति (6) लवपुर (लाहौर) एवं कुशपुर (कुसूर) नगरियों का निर्माण (7) कालराय एवं कालकेतु राजा एवं उनका राज्य (8) कालकेतु द्वारा कालराय को देश निकाला (9) सनौढ देश (10) लव-कुश वंशजों का युद्ध : कुश वंशजों की पराजय (11) कुश वंशजों का काशी में वेदाध्ययन करना (12) लव वंशजों का कुश वंशजों को वेद सुनाने का निमन्त्रण देना, कुश वंशजों का पंजाब आना, लव वंशजों का कुश वंशजों को राजपाट दान (13) लव वंशजों का ऋषिवेश धारण (14) नानक के बाद आठ गुरुओं का जन्म (15) पृथ्वी पर अवतरित होने के लिए दशम गुरु को अकाल पुरुष का, हेमकूट पर्वत पर, निर्देश देना (16) प्रयागराज में तेगबहादुर का दान पुण्य करना। (17) पटना में गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म (18) पटना से पंजाब आगमन (19) पाँवटा में निवास, शिकार खेलना (20) भंगाणी, नादौन आदि युद्ध (21) औरंगजेब के पुत्र, बार अहदिया दलों द्वारा गुरु विमुखों सिक्खों का अपमान करते हुए शहर में घुमाना (22) पुन: प्रथम प्रसंग अर्थात् ईश्वर स्तुति ।

प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या उपर्युक्त सभी प्रसंग 'युद्ध-स्थल' से सम्बन्धित हैं ? उत्तर नकारात्मक है। सम्पूर्ण कथा का मुख्य एवं युद्धों को दृश्य-कथा के अन्तर्गत संकलित करने का आधार क्या है। गुरु गोबिन्द सिंह ने समस्त

कथा वर्णित की है फिर इसे इच्छानुसार दृश्य-सूच्य विभागों में कैसे बाँटा जा सकता है। यदि इस कृति को 'नाटक' ही मानना है तो सम्पूर्ण कथा को स्वीकार करना होगा। पात्र-संख्या एवं घटनास्थल का विवेचन पूर्ण कथानक के अनुसार होना चाहिए। इतनी विस्तृत कथा को मात्र पाँच पुरुष पात्रों एवं युद्ध स्थल तक सीमित करके कृति के साथ न्याय नहीं किया जा सकता।

वस्तु-संगठन, पात्र-योजना एवं दृश्य-विधान के अतिरिक्त संवाद-योजना, चरित्र-चित्रण एवं भाषा-शैली भी विचित्र-नाटक को अनाटकीय सिद्ध करती है।

संवाद-योजना नाटक-रचना का प्रमुख आधार मानी जाती है। नाटक की कथा संवादों के माध्यम से ही अनावृत की जाती है। विचित्र नाटक के चौदह अध्यायों में से मात्र एक अध्याय, छठे अध्याय, में संवाद-योजना प्राप्य है। यह ~~बत~~ वार्तालाप अकाल पुरुष एवं गुरु गोबिन्द सिंह के मध्य हुआ है। जन्म से पूर्व गुरु गोबिन्द सिंह सप्तशृंग पर तपस्या मग्न थे। तपस्या करते हुए गुरु जी को अकाल पुरुष ने बुलाया एवं पृथ्वी पर जाने का निर्देश दिया। यहाँ कुछ उत्तर-प्रत्युत्तर संवादों के रूप में उपलब्ध हैं। यथा ---

(क) जिउं तिउं प्रभु हमको समझायो । इमि कहि कै इह लोक पठायो ।।[1]

।। अकाल पुरुष उवाच इस कीट प्रति ।।

जब पहले हम सृष्टि बनाई । दैत रचे दुष्ट दुखदाई ।।[2]

(ख) तप साधत हरि मोहि बुलायो । इमि कहि कै इह लोक पठायो ।।[3]

।। अकाल पुरुष उवाच ।।

मैं अपना सुत तोहि निवाजा पंथ प्रचुर करिबे को साजा ।।[4]

1-- विचित्र नाटक, गुरु गोबिन्द सिंह, अध्याय 6, पद्य 5 ।

2-- वही, अध्याय 6, पद्य 6 ।

3-- वही, अध्याय 6, पद्य 28 ।

4-- वही, अध्याय 6, पद्य 29 ।

(ग) ।। कवि उवाच ।।

ठाढ़ भयो मैं जोरि कर वचन कहा सिर नाइ ।
पंथ चलै तब जगत मैं जब तुम करहु सहाइ ।। [1]

शेष सम्पूर्ण कथानक वर्णित है। संवाद-योजना का रूप भी वर्णनात्मक-सा है। इस प्रकार विस्तृत कथा-वस्तु पर आधारित यह नाटक अपनी संवाद-योजना द्वारा भी अपनी अनाटकीयता की घोषणा करता है ।

नाटक में नाटककार को प्रत्यक्ष रूप से चरित्र-चित्रण तो क्या, कुछ भी कहने का अवकाश नहीं होता। वह पात्र-विशेष के क्रिया-कलापों, कथनों एवं दूसरे पात्रों द्वारा उसके चरित्र का प्रकाशन करता है। परन्तु विचित्र-नाटक में नाटककार स्वयं सब कुछ ~~कह-गये~~ कहता है। अपना चरित्र, अन्य पात्रों का चरित्र स्वयं व्यंजित करता है।

भावों को एवं प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त की गई भाषा-शैली भी आलोच्य नाटक की नाटकीयता पर प्रश्न-चिन्ह लगाती है। उदाहरणतया --

(1) कृपालं कुपीयं कुतक्की सँभारी । हठी खान हय्यात के सीस झारी ।।
उठी छिच्छ इच्छं कढा भेझ जोरं । मनो माखनं मट्टकी कान्ह फोरं ।। [2]

(2) बहुत दिवस इह भाँति बिताए । संत उबार दुष्ट सब घाए ।।
टाँग टाँग कर हने निदाना । कूकर जिमि तिन तजे पराना ।। [3]

(3) तब बल इहाँ न पर सकै बरवा हना रिसाइ ।
सालन रस जिमि बानियो रोरन खात बनाइ ।। [4]

1-- विचित्र नाटक, गुरु गोबिन्द सिंह, अध्याय 6, पद्य 30 ।

2-- वही, अध्याय 8, पद्य 7 ।

3-- वही, अध्याय 8, पद्य 38 ।

4-- वही, अध्याय 10, पद्य 10 ।

(4) जैसे रवि के तेज ते, रेत अधिक तपताइ ।
रवि बल कुछ न जानई, आपन ही गरबाइ ।।[1]

(5) जो साधुन सरणी परे तिनके कवन विचार ।
दंत जीभ जिमि राखि है दुष्ट अरिष्ट संहार ।।[2]

इस प्रकार कवि के अनेक भावों को दृश्य के स्तर पर उतारना सम्भव नहीं। भाषा-शैली की यह प्रकृति भी इसे नाटक के क्षेत्र से बहिष्कृत करती है ।

साहित्यिक विधा 'नाटक' विरोधी इतने प्रमाण उपस्थित होने पर भी प्रस्तुत कृति को 'नाटक' मानना युक्तिसंगत नहीं । यह 'नाटक' संसार रूपी नाटक का प्रस्तोता है, साहित्यिक विधा नाटक का वाचक नहीं। इतना सब स्पष्ट रूप से अनुभव होने पर भी नाटक-कोश में इसका उल्लेख एवं डा० राजनारायण मौर्य का यह कहना कि "ऐसे नाटक रंगमंच पर खेले जाते थे" उचित नहीं ।

प्रस्तुत नाटक में दृश्य-विधान या मंच-सज्जा-सम्बन्धी कोई निर्देश उपलब्ध नहीं, न ही प्रवेश-प्रस्थान तथा पात्र-वेश-भूषा आदि से सम्बन्धित संकेत ही उपलब्ध हैं ।

1-- विचित्र नाटक, गुरु गोबिन्द सिंह, अध्याय 11, पद्य 7 ।
2-- वही, अध्याय 13, पद्य 25 ।

(ग) निष्कर्ष

निष्कर्ष

विचित्र-नाटक के अध्ययन के उपरान्त यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि गुरु गोबिन्द सिंह कृत 'नाटक' नामधारी यह रचना नाटक साहित्य का अंग नहीं है। लेखक ने अपनी कृति को 'नाटक' संज्ञा से अवश्य अभिहित किया है, परन्तु 'नाटक' शब्द मात्र साहित्यिक विधा का वाचक नहीं है। इस कृति में नाटकीय नियमों का पालन भी नहीं किया गया है। गुरु गोबिन्द सिंह ने जानबूझ कर अपनी रचना को नाटक नहीं कहा था, और न ही नामकरण के औचित्य पर विचार किए बिना, इसे नाटक कहने का दु:साहस किया। वस्तुत: ईश्वर द्वारा अच्छे-बुरे तत्वों के सृजन द्वारा, उनके संघर्ष के द्वारा संसार में जो 'तमाशा' विद्यमान है वह विचित्र ही है। ईश्वर यदि परस्पर विरोधी तत्वों का सृजन न करे तो संसार में व्याप्त संघर्ष समाप्त हो जाएं। यह सृष्टि परमेश्वर कृत एक नाटक है जहाँ प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी भूमिका प्रदर्शित करता है। संसार रंगमंच है, समस्त प्राणी इसके पात्र हैं, उनकी क्रियाएं नाटक है और निर्देशक है अकाल पुरुष जिसके निर्देशन पर संसृति का यह नाटक परिचालित है। विचित्र संसार के विचित्र कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने वाली इस कृति का विचित्र नाटक उपयुक्त ही है। वैराग्यवान, ज्ञानी पुरुष को समस्त सांसारिक प्रपंच एवं क्रियाकलाप नाटक सा प्रतीत होते हैं। इस प्रकार कृति का यह नामकरण बिना सोचे समझे नहीं किया गया वरन् लेखक के गहन चिन्तन का परिणाम है। गुरु गोबिन्द सिंह अपनी इस कृति का नामकरण करते समय विचित्र नाटक में 'नाटक' शब्द के स्थान पर किसी अन्य संज्ञा का प्रयोग कर लेते तो साहित्य जगत् में विवाद के लिए अवकाश ही न रहता। विचित्र नाटक का विस्तृत कथा-फलक; कथावस्तु-संगठन भी इसे नाटक के क्षेत्र से बहिष्कृत करता है। लेखक ने कथा-विस्तार के भय से प्रसंगों को बीच-बीच में छोड़ा भी है। इस कारण कथा में बिखराव-सा आ गया है। जो प्रभावान्विति एवं संकलनत्रय की दृष्टि से अनुचित है। पात्र-सृष्टि की कोई सीमा नहीं है, चरित्र-चित्रण का ढंग भी नाटक के

अनुकूल नहीं है। सम्पूर्ण रचना में संवाद-योजना नाम मात्र को उपलब्ध है, और वह भी वर्णनात्मकता-प्रधान है। कथा-वर्णन की प्रवृत्ति, भाषा का आलंकारिक प्रयोग दृश्य-विधान आदि भी इस कृति को पाठ्य घोषित करते हैं। लेखक का उद्देश्य कृति के प्रदर्शन से नहीं था। यही कारण है कि नाटकीय गुण इस कृति में अनुपस्थित हैं।

साहित्यिक-विधा-नाटक विरोधी इतने प्रमाण प्राप्त होने पर भी प्रस्तुत कृति को नाटक मानना एवं मनवाने का आग्रह करना उचित नहीं। यह रचना न तो नाटक के क्षेत्र में एक प्रयोग है और न विशुद्ध नाटक ही है। हिन्दी नाटक कोश में ऐसे नाटकों को स्थान देना औचित्य की सीमा का अतिक्रमण है। लक्ष्य-भ्रष्ट हो कर कार्य करने वाले लोगों की क्रियाओं से सम्बन्धित विचित्र नाटक नामक इस रचना में संसार के विचित्र क्रिया-कलापों का ही नहीं वरन् गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन से सम्बन्धित विचित्र प्रसंगों का भी वर्णन है। आत्म-कथा के आवरण में लेखक ने आत्मकथा लिखने का नाटक मात्र किया है। स्वयं को रघुवंश से जोड़ने के लिए पुराणों का सहारा लेते हुए, अकाल पुरुष से अपने वार्तालाप द्वारा लोगों के समक्ष नाटक किया। आत्मकथा के अन्तर्गत मात्र युद्धों को वाणी देकर जन-सामान्य में उत्साह एवं वीरता का मन्त्र फूंका। इस प्रकार संत्रस्त, सुषुप्त समाज को उत्साहित एवं जागृत करने के लिए आत्मकथा लेखन का नाटक, आत्मकथा के साथ संसार के विभिन्न आडम्बरों, अन्धविश्वासों, अवतारों आदि का वास्तविक रूप दिखा कर एवं उनका खण्डन करके जन-समाज को सही मार्ग दिखाया तथा उनमें आत्म-विश्वास एवं वीरता का मन्त्र फूंका। राजनैतिक अत्याचारपूर्ण एवं सामाजिक रूप से अव्यवस्थित परिस्थितयों में विद्रोह का स्वर उठाना एवं धर्म-प्राण जनता को आत्म-विश्वास, आत्म-सम्मान आदि भावों से आपूरित कर देने का यह दुरूह प्रयास सफल होने के कारण एक नाटक -सा प्रतीत होता है। विरोधी परिस्थितियों में भी गुरु गोबिन्द सिंह ने इस 'नाटक' द्वारा, अपने लक्ष्य को सफलतापूर्वक पा लिया। विचित्र-नाटक में अनेक स्तरों के नाटकीय प्रसंग हैं अवश्य, परन्तु इन प्रसंगों की योजना संश्लिष्ट नाटकीय

कृति के रूप में नहीं की गई। कथा का उद्देश्य पठन एवं श्रवण है, प्रदर्शन नहीं । विचित्र नाटक को आज के विकसित रंगमंच पर भी सफलतापूर्वक प्रदर्शित कर पाना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है और रंगमंच पर प्रस्तुति से पूर्व इसकी वस्तु-योजना में अनेक परिवर्तन करने होंगे। हमारा तो यह निश्चित मत है कि विचित्र नाटक को नाटक (विशुद्ध नाटक) मानना दुराग्रह से अधिक नहीं ।

चतुर्थ अध्याय : देवमायाप्रपंच नाटक

(क) महाकवि देव : जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व ।

(ख) देवमायाप्रपंच नाटक : कर्तृत्व ।

(ग) देवमाया प्रपंच नाटक : नाटक के निकष पर ।

(घ) निष्कर्ष ।

(क) महाकवि देव

-- जीवन

-- व्यक्तित्व : कृतियों के आधार पर ।

-- कृतित्व : विकासात्मक अध्ययन ।

महाकवि देव

(क) जीवन

रीतिकालीन बहु-प्रतिभा सम्पन्न महाकवि देव का पूरा नाम देवदत्त था। अपनी रचनाओं में उन्होंने 'देव' नाम का प्रयोग किया है।

इनका जन्म संवत् 1730 -31 माना जाता है। डा० नगेन्द्र के अनुसार, "ठाकुर शिव सिंह ने देव का जन्मकाल संवत् 1661 लिखा है। परन्तु देव की साक्षी के सामने इनका जनश्रुति पर आश्रित वह मत सर्वथा निराधार ठहरता है।"[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि देव की यह साक्षी भाव-विलास में प्राप्त वे दोहे हैं जिन्हें डा० लक्ष्मीधर मालवीय ने प्रक्षिप्त प्रमाणित किया है।[2] देव के सम्बन्ध में जितने भी लेख या पुस्तकें मिलती हैं सभी में देव का जन्म संवत् प्राय: 1730 ही वर्णित है। इस प्रकार लक्ष्मीधर मालवीय द्वारा इस जन्मसंवत् से सम्बन्धित अन्त:साक्ष्य के प्रक्षिप्त प्रमाणित कर दिये जाने के उपरान्त हिन्दी साहित्य जगत् में देव का जन्म-काल विवादास्पद होते हुए भी निश्चित-सा हो गया था।

डा० रमानाथ त्रिपाठी ने इस सम्बन्ध में नवीन शोध द्वारा कुछ प्रश्न उठाए हैं। 'अष्टयाम' की एक प्राचीन प्रति के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि, "देव कवि ने अष्टयाम की रचना सं० 1717 पौष शुक्ल सप्तमी शुक्रवार तदनुसार 28 दिसम्बर 1660 ई० में की थी। उस समय उनकी आयु कम से कम 17-18 वर्ष की होनी चाहिए। अत: उनका जन्म संवत् 1699 अथवा मोटे रूप से 1700 माना जा सकता है।"[3] सन् 1904 की खोज-रिपोर्ट में देव का

1-- देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 17, चतुर्थ संस्करण ।

2-- द्रष्टव्य -- देव-ग्रन्थावली, डा० लक्ष्मीधर मालवीय, पृ० 56 ।

3-- देवकवि : अष्टयाम, डा० रमानाथ त्रिपाठी, पृ० 20 ।

जन्म संवत् 1697 लिखा है ।[1]

डा० रमानाथ त्रिपाठी को देव के वंशजों से देव के जिस मृत्यु संवत् का पता लगा है उसके आधार पर भी उन्हें प्रस्तुत जन्म संवत् ठीक प्रतीत होता है। डा० नगेन्द्र आदि विद्वानों ने देव की आयु 90-95 वर्ष स्वीकार की है, एवं देव का मृत्यु संवत् 1824 के आसपास माना है। उनके अन्तिम आश्रय दाता अकबर अली खाँ थे, जिनका समय संवत् 1824 है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में, इनसे "उचित पुरस्कार प्राप्त कर वह तभी कुसमरा लौट आया और वहीं आकर एक-आध साल में उसकी मृत्यु हो गई।"[2]

संवत् 1700 को जन्म-काल मानने एवं 1824 को मृत्यु संवत् पाकर कहीं पाठक उलझन में न पड़ जाएँ, इसलिए इस उलझन का समाधान करते हुए डा० रमानाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "संवत् 1717 को अष्टयाम का रचनाकाल मान लेने पर अन्य कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। अभी तक विद्वान यह मानते आए हैं कि देव ने अपना अन्तिम ग्रन्थ ---'सुखसागर-तरंग' (जो कि एक संग्रह ग्रन्थ है) पिहानी के अकबर खाँ को समर्पित किया था। खाँ साहब का आदिम युग संवत् 1824 बताया गया है। देव कवि इस समय तक तो जीवित थे ही, आगे भी रह सकते हैं। संवत् 1730 में उनका जन्म मान लेने पर उनकी पूर्णायु 94 वर्ष का औचित्य सिद्ध हो जाता है, किन्तु संवत् 1717 के लिपिकाल के आधार पर वे लगभग सवा सौ वर्ष की आयु भोगते दिखाई देते हैं जो असम्भव है। असम्भव हो सकता है यदि यह मान कर चला जाए कि सुख-सागर-तरंग 1824 वि० में ही भेंट की गई। देव कवि कुशल सिंह, भोगी लाल, उद्योत सिंह, सुजान मणि

1-- खोज में प्राप्त हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, सन् 1904, क्रम संख्या 35बी० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

2-- देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 27 ।

आदि कई छोटे-छोटे राजाओं और जमींदारों से भेंट करते रहे और ग्रन्थ समर्पित करते रहे। यह क्यों न माना जाए कि वे खाँ साहब के सत्तारूढ़ (1824 वि०) होने से पहले ही मिले थे। यहाँ यह भी विचारणीय है कि मिश्रबन्धुओं ने देवका मृत्यु संवत् 1802 माना है। देव के वंशज स्व० मातादीन और रत्नाकर जी भी यही संवत् स्वीकार करते हैं ।[1] इस प्रकार डा० नगेन्द्र आदि द्वारा स्वीकृत देव की आयु 90-95 वर्ष से 102-103 वर्ष तक सिद्ध करने का प्रयास डा० त्रिपाठी ने किया। प्रस्तुत मतों से इतना तो स्पष्ट है कि देव अल्पायु नहीं वरन् दीर्घायु भोग कर मृत्यु को प्राप्त हुए थे ।

प्राचीन साहित्यकार अपने विषय में प्राय: मौन रहे हैं। यदि वे अपने सम्बन्ध में उल्लेख करते, तो विवादों के लिए कोई अवकाश न रह जाता। सम्भवत: इसी कारण कुछ व्यक्तियों ने प्राचीन रचनाओं के साथ जन्म आदि से सम्बन्धित सूत्र संलग्न किये जिन्होंने इस विवाद को समाप्त करने के अतिरिक्त और तीव्र कर दिया--- वे प्रामाणिक और प्रक्षिप्त सिद्ध किए जाने लगे। अत: प्राचीन साहित्य और साहित्यकारों के विषय में की गई स्थापनाएँ अधिकतर अनुमान पर आधारित हैं ।

आज मनुष्य की औसत आयु घट रही है, लैकिन पहले मनुष्य दीर्घायु भोग कर काल कवलित होते थे। रोगों अथवा आकस्मिक दुर्घटनाओं के कारण ही असमय मृत्यु का ग्रास बनते थे। विदेशों में आज भी 100 वर्ष की आयु से अधिक बुजुर्ग अच्छे भले हैं ।[2] विदेश ही क्यों, अपने ही देश में महात्मा कबीर[3] एवं शंकर देव[4]

1-- देवकवि : अष्टयाम, डा० रमानाथ त्रिपाठी, पृ० 20 ।

2-- Guiness Book of Records 1981, Norris Mc. Whirter, P. 15.

3-- हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० 144 ।

4-- प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, सं० माता प्रसाद गुप्त, पृ० 152 (भूमिका)

सवा सौ साल की आयु भोग कर पंचतत्व में लीन हुए थे। इसलिए डा० रमानाथ त्रिपाठी का यह कहना कि, "वे सवा सौ साल की आयु भोगते दिखाई देते हैं, जो असम्भव है।"— समीचीन नहीं जान पड़ता। देव के रोगी होने अथवा दूसरों द्वारा सेवा करवाए जाने की भी कोई सूचना नहीं मिलती। दूसरे अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने देव द्वारा 'सुखसागर-तरंग' अकबर अलीखाँ को सत्तारूढ़ होने से पूर्व ही भेंट किये जाने का अनुमान किया है। इस अनुमान का खण्डन देव द्वारा भेंट किए गए ग्रन्थ के समर्पण से हो जाता है। अकबर अलीखाँ का वंश-वर्णन करते हुए कवि ने स्पष्ट लिखा है :--

तिहि पुत्र अबदुल्लह खान जू जाकी महिमा भली ।
तिहि तनय महमदी महीपति खान वली अकबर अली ।।

(सुखसागर-तरंग, पद्य संख्या 5)

कवि ने 'महिपति' शब्द द्वारा स्पष्ट ही उनके राजा बन जाने की घोषणा की है। अत: यह कहना असंगत न होगा कि अगर डा० रमानाथ आज के मनुष्य की औसत आयु को मानदण्ड मानकर न चलते तो सम्भवत: उन्हें ऐसा अनुमान न करना पड़ता ।

इसके अतिरिक्त डा० रमानाथ ने 'अष्टयाम' के 'चढ़त सोरहीं वर्ष' में रचे जाने पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखा, "एक बालक ने 15 वर्ष की आयु में दो-दो ग्रन्थों की रचना कर डाली। इस किशोर-वय में वह अष्टयाम के केलि-विलास भी सीख गया"[1] । परन्तु स्वयं अष्टयाम की संवत् 1717 की प्रति प्राप्त कर लेने पर भी देव का जन्म संवत् अधिक पीछे न ले जाकर 1700 पर ही रुक गए। 15 और 17 वर्ष के बालक में कोई विशेष अन्तर दृष्टिगत नहीं होता, शर्त यह है कि वह विलासी आश्रम में न हो। देव उस समय किसी के 'आश्रम' में थे या नहीं-यह विचारणीय विषय है। देव के प्रथम आश्रय दिल्ली के आजमशाह

1-- देवकवि : अष्टयाम, डा० रमानाथ त्रिपाठी, पृ० 17 ।

बताए जाते हैं। देव के प्रचलित पद्य के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 'अष्टयाम' सहित 'भावविलास' इन्हीं को सुनाया गया। इसी आधार पर विद्वानों ने यह कल्पना की कि आजमशाह देव के प्रथम आश्रयदाता थे। प्रस्तुत पद्य की प्रामाणिकता संदिग्ध होने के कारण आजमशाह को उनका आश्रयदाता मानने में संकोच होता है। भाव-विलास एवं अष्टयाम किसी भी आश्रयदाता को समर्पित नहीं है।[1] अत: 15 वर्ष के बालक के 'अष्टयाम' वर्णन पर आश्चर्य प्रकट करने वाले विद्वान, 17 वर्ष के बालक को बिना किसी विलासी आश्रय के केलि-विलास का ज्ञाता स्वीकार करें, आश्चर्य का विषय है। देव के 'काव्य' में यह केलि-विलास राधावल्लभ संप्रदाय के अनुयायी व्यास जी की माधुर्य-भक्ति का प्रभाव था।

इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देव संवत् 1700 से 1824 के लगभग वर्तमान थे एवं वे सवा सौ साल की दीर्घायु भोग कर पंचतत्व में लीन हुए थे।

कवि देव इटावा के रहने वाले थे। सम्भवत: इटावा में ही इनका जन्म हुआ था। इस विषय में प्रामाणिक अन्तसाक्ष्य उपलब्ध है :--

द्यौसरिया कवि देव को नगर इटाए वास ।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास ।।

(भाव विलास : पंचम विलास, पद्य संख्या 80)

देव कश्यप गोत्र के कान्यकुब्ज बाह्मण थे। इनके पिता का नाम बिहारी लाल दूबे था। इनके कोई भाई नहीं था। भवानी प्रसाद और पुरुषोत्तम नामक दो पुत्र थे। देव के प्रपौत्र भोगी लाल ने भी उक्त मत का प्रतिपादन किया है।[2]

1-- देव ग्रन्थावली, डा० लक्ष्मीधर मालवीय, पृ० 128 ।

2-- देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 18-19 ।

पं० बालदत्त ने देव को राधावल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी एवं गोस्वामी हितहरिवंश का शिष्य माना। परन्तु, डा० नगेन्द्र ने इस तथ्य को भ्रामक मानते हुए लिखा है, "देव की राग विराग की कविता पर भी राधावल्लभीय सम्प्रदाय की कोई विशेष छाप नहीं है। देव के वंशज भी निश्चित ही इस सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं हैं और न वृन्दावन आदि में पूछताछ करने से ही उक्त मत की पुष्टि होती है। अतएव यह मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं होती कि किसी जनश्रुति पर आधृत होने के कारण ये शब्द ही भ्रान्त हैं।"[1]

यह सत्य है कि कवि देव गोस्वामी हित हरिवंश जी के शिष्य नहीं थे। गोस्वामी हितहरिवंश जी के शिष्य हरिराम व्यास देव के गुरु थे।[2] इस प्रकार देव गोस्वामी हितहरिवंश की शिष्य परम्परा में आते हैं। देव के काव्य पर व्यास जी के विचारों एवं भावों की छाप स्पष्टतः परिलक्षित है। व्यास जी का स्मरण देव ने गुरुवत् किया है, जिसने विद्वानों के मन में यह सन्देह उत्पन्न कर दिया कि रीतिकालीन कवि देव एवं व्यास शिष्य देव दो भिन्न व्यक्ति हैं। वस्तुतः रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि देव ही व्यास-शिष्य देव हैं जिसका विस्तृत विवेचन 'देवमाया प्रपंच नाटक' के रचयिता के सन्दर्भ में किया गया है।

देव ने विद्यालय की शिक्षा कहाँ तक प्राप्त की इस विषय में कोई सूचना प्राप्त नहीं है। वैसे जीवन-संघर्षों से, चतुर्दिक व्याप्त वातावरण से ये आजीवन शिक्षा ग्रहण करते रहे; इन्होंने विपुल ज्ञान अर्जित किया। इनकी साहित्य-सम्पदा इनके विस्तृत ज्ञान की ही प्रामाणिक अभिव्यक्ति है।

1-- देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 24-25।

2-- (क) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण-1, सं० श्याम सुन्दर दास, पृ० 162।

(ख) एनुअल रिपोर्ट आन द सर्च आफ हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट फार द इयर 1904, सं० श्याम सुन्दर दास, पृ० 33।

देव की ससुराल कुसुमरा थी। कुसुमरा में ही देव की मृत्यु हुई। इनके गृहस्थ जीवन के विषय में इतना अनुमान किया जा सकता है कि देव और उनकी पत्नी में वैमनस्य नहीं था। कुसुमरा में ही उनका परिवार रहता था। सम्भवत: आर्थिक कष्टों एवं अन्य सम्भावित कारणों से, आश्रयदाताओं की खोज में निरन्तर रत रहने वाले देव ने परिवार को कुसुमरा छोड़ना ही उपयुक्त समझा हो।

(ख) व्यक्तित्व

देव का कोई चित्र उपलब्ध नहीं है। इस कारण उनकी आकृति एवं कद आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके वंशज उन्हें सुन्दर मानते हैं। भावनात्मक सम्बन्धों में बंधे व्यक्ति एक दूसरे को प्राय: सुन्दर एवं आकर्षक लगा ही करते हैं। आकर्षण और सुन्दरता सापेक्ष शब्द हैं। देव वास्तव में सुन्दर थे या नहीं, संदिग्ध है, परन्तु उनके काव्य पर सर्वत्र सुन्दरता की छाप है। सौन्दर्य के प्रति इतना आग्रह व्यक्त करने वाले कवि देव को सुन्दर कहना अनुचित नहीं।

देव के वंशजों (स्व० रामप्रसाद शास्त्री एवं श्री अवध बिहारी द्विवेदी से प्राप्त विवरण) में प्रचलित धारणा के अनुसार उनकी वेशभूषा में निम्न वस्तुएं आती हैं :--

1: गोखुर के बराबर चोटी,
2: बीस हाथ की पाग़,
3: गाढ़े का अंगरखा,
4: लाल किनारी की लम्बी धोती,
5: धवल दुपट्टा, ~~त्रिपुण्ड~~,
6: त्रिपुण्ड,
7: हाथ में दण्ड अथवा छड़ी।[1]

1-- देव कवि : अष्टयाम, डा० रमानाथ त्रिपाठी, पृ० 23 ।

डा० नगेन्द्र ने किम्बदन्ती के आधार पर लिखा है कि 'वे जो जामा पहनते थे वह इतना विशाल और घेरदार होता था कि राजदरबारों में जाते समय कई सेवक घसीटने से बचाने के लिए उठाए रखते थे।[1]

किम्बदन्तियों पर आधृत होने के कारण ये धारणाएँ कहाँ तक सत्य हैं, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता; लेकिन इतना निश्चित है कि वेशभूषा के प्रति वे बहुत सतर्क थे। सुन्दर वेशभूषा के प्रति सुरुचि, उनकी रचनाओं से स्पष्टत: प्रमाणित होती है।

देव स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। आत्म-सम्मान की भावना ने ही कदाचित उन्हें एक 'आश्रय' में स्थायी रूप से न रहने दिया। भिन्न-भिन्न आश्रयदाताओं की खोज में भटकना देव का 'चाटुकारिता की कला' से नफरत करना एवं स्पष्टवक्ता होना भी प्रमाणित करता है। --

' अपनी बड़ाई जाहि भावै सो हमैं न भावै, राम की बड़ाई सुनि
टेइगो सु देइगो ।।'[2]

आत्म सम्मान के प्रति जागरूक देव दूसरों का भी उचित सम्मान करते थे। अपने आश्रयदाताओं[3] को एवं 'कविवर केसो गंग की सुकविताई गाई रस पाथी नै'[4] कहकर पूर्ववर्ती कवियों को आदर प्रदान किया गया है। गुरु को भी उन्होंने यथोचित आदर प्रदान किया है।[5]

1-- देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 7 ।

2-- देव ग्रन्थावली, डा० पुष्पा रानी, पृ० 30 ।

3-- सुखसागर तरंग, देव, पद्य संख्या 6 ।

4-- (क) जगदर्शन पच्चीसी (वैराग्य शतक), देव, पद्य संख्या 5 ।

(ख) रस विलास, देव, चतुर्थ प्रकाश, पद्य संख्या 38 ।

5-- जगदर्शन पच्चीसी (वैराग्य शतक), देव, पद्य संख्या 10 ।

रीतिकाल के विलासमय वातावरण में जीवन-यापन करते हुए भी विलासी प्रकृति से वे कोसों दूर थे। जिस वातावरण में पर-नारी गमन साधारण सी बात थी, वहाँ भी उन्होंने स्वकीया का महत्व प्रतिपादित किया।[1] नारी के इन्होंने अत्यन्त मांसल चित्र खींचे हैं और नायिका-भेद के साथ-साथ विभिन्न प्रदेशों की नारियों को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है। इतना ही नहीं, शृंगार के मिलन पक्ष में नारी का वासनापरक चित्रण किया है; ऐसा लगता है कि देव का चरित्र अवश्य कुछ खराब रहा होगा। परन्तु जब उनके काव्य में प्रेम और कर्तव्य को शृंगार से उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित पाते हैं तो लगता है कि वे दृढ़ चरित्र के व्यक्ति थे। शृंगार रस में डूब कर भी वे शृंगारी न हुए। अत: उन पर कामाध्यात्म के महात्म्य से सम्बन्धित उक्ति -- 'पानी पर चलो मगर दाग न लगे' --- चरितार्थ होती है।

देव वैभव-प्रिय व्यक्ति थे।इसका प्रमाण उनकी रचनाओं में कदम-कदम पर मिलता है। वर्णनात्मक प्रसंगों में स्थान आदि का वर्णन करते हुए उन्होंने 'फटिक सिलानि',[2] 'कंचन-रचित-कोट',[3] 'फटिक की भीतिनु'[4] एवं नारियों के बनाव-शृंगार, आभूषणों आदि द्वारा अपनी इस वैभव-प्रियता का परिचय दिया है। उनकी यह वैभव-प्रियता ही कदाचित् उन्हें भिन्न-भिन्न आश्रयों में ले जाती रही। लेकिन,कोई ऐसा गुण-ग्राहक न मिला जो उनके जीवन को आगामी भटकन से मुक्त कर सकता। जीवन-संघर्षों ने उन्हें 'झूठो सुख संसार को, सपने को सो रूप'[5] समझने पर बाध्य किया। देव ने ऐसा शायद सोचा भी न था; वे तो

1-- सुमिल विनोद, देव, द्वितीय प्रकाश, पद्य संख्या 10 ।

2-- सुखसागर तरंग, देव, पद्य संख्या 24 ।

3-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 1, पद्य संख्या 1 ।

4-- वही, अंक 6, पद्य संख्या 7 ।

5-- वही, अंक 6, पद संख्या 94 ।

'बानी को सार बखान्यो सिंगार, सिंगार को सार किसोर किसोरी'[1] मानते वाले थे। इसी 'किसोर-किसोरी' की शृंगार लीला,[2] उनका हास-परिहास[3] देखने वाले थे।

जीवन के कठोर-धरातल पर उन्होंने देखा-जीवन-संघर्ष। तब वे कह उठे-'हाय कहा कहाँ चंचल या मन की गति में, मति मेरी भुलानी।'[4] उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की। यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। 'साहिब अंध मुसाहिब मूक, सभा बहिरी रंग रीझ को माच्यो'।[5] ऐसे समाज में मनुष्य 'लोभ की लपेट, काम-क्रोध की दपेट बीच, पेट की चपेट लागे चेटकी भयो फिरे।'[6] ज्ञान के बिना मनुष्य-जीवन व्यर्थ है। देव के शब्दों में 'नारी बिन गेह, जैसे ज्ञान बिन देह, मैल मल मूतहू ते थैली मलमूत की।'[7] ईश्वर भक्ति, ज्ञान, प्रेम आदि द्वारा व्यक्ति को सत्पथ पर चलना चाहिए। पैसा दुखों का मूल है, 'सेई जिहि संपति, विपति परी ताके हाथ'[8] दूसरों की भलाई द्वारा ही जीवन का फल मिलता है।[9] विषय-वासनाएँ व्यर्थ हैं।[10] देव ने स्वयं को भी धिक्कारा है[11] और मन को 'राधा

1-- सुखसागर तरंग, देव, पद्य संख्या 10 ।

2-- वही, पद संख्या 179, 181 ।

3-- (क) भाव विलास, देव, द्वितीय विलास, पद्य संख्या 103 ।

(ख) वही, चतुर्थ विलास, पद्य संख्या 60 ।

4-- आत्मदर्शन पच्चीसी (वैराग्य शतक), देव, पद्य संख्या 2 एवं 12 ।

5-- वैराग्य शतक (जगदर्शन पच्चीसी), देव, पद्य संख्या 25 ।

6-- वही, पद संख्या 24 ।

7-- वही, (आत्मदर्शन पच्चीसी), पद संख्या 19 ।

8-- वही, (जगदर्शन पच्चीसी), पद संख्या 7 ।

9-- वही, (जगदर्शन पच्चीसी), पद संख्या 7 ।

10-- वही, (जगदर्शन पच्चीसी), पद संख्या 11 ।

11-- वही, (प्रेम पच्चीसी), पद संख्या 25 ।

वर विरद के बारिध में बोरते बोरते 'स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग में[1] 'स्याम रंग' हो जाने पर उन्हें स्पष्टत: प्रतिभासित हुआ कि धर्माडम्बर व्यर्थ है। ईश्वर अनुभूति का विषय है।--

कथा में न कंथा में न तीरथ के पंथा में न पोथी में न पाथ में,
न साथ की बसीति में।
जटा में न मुंडन, न तिलक त्रिपुंडन, न नदी कूप कुंडन, अन्हान
दान रीति में ।
पीठ मठमंडल, न कुंडल कमंडल में, माला दंड में न देव देहरे मसीत में।
आप ही अपार, पारावार प्रभु पूरि रह्यो, पाइये प्रगट परमेसुर
प्रतीति में ।।[2]

ईश्वर अवतार भी लेता है।[3] उन्होंने अंध विश्वासों का भी खण्डन किया।[4]

देव संवेदनशील व्यक्ति थे। हर परिस्थिति की अनुभूति उन्होंने तीव्रता से की है। जीवन के रस का भोग किया तो पूरी भावना, संवेदना के साथ। इसीलिए उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र हुई। उनकी संवेदना की पराकाष्ठा कवि के सम्पूर्ण जीवन से देखी जा सकती है। रस-सिक्त जीवन की विभिन्न झाँकियाँ यह सोचने पर विवश कर देती हैं कि कवि ने यह सब देखा नहीं वरन् भोगा है। इस 'रस' की प्रतिक्रियास्वरूप वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्होंने इसे स्वयं भोगा था। यह एक प्रमाणित सत्य है कि व्यक्ति जिन बातों को प्रकटतया स्वीकार नहीं करते; उनके विपरीत स्थिति आने पर वे स्वयं कहते या सोचते हैं कि 'यदि मुझे ऐसा पता होता तो मैं अमुक काम न करता।' ऐसी ही प्रतिक्रिया में देव ने स्वीकारा है, 'ऐसा जो हौं जानती कि जैहै तू विषै के

1-- वैराग्य शतक (तत्वदर्शन पच्चीसी), देव, पद्य संख्या 24 ।

2-- सुमिल विनोद, देव, अष्टम प्रकाश, पद्य संख्या 7 ।

3-- देवचरित्र, देव पद्य संख्या 11 ।

4-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 5, पद्य संख्या 4 ।

संग, है है मन मेरे हाथ पाइ तेरे तोरतो[1] । स्पष्ट है कि स्थूल-शृंगार में जो चित्र उभरे हैं वे मात्र काल्पनिक नहीं थे ।

इसके अतिरिक्त संवेदनशीलता ने 'प्रेम' से भी उनका पूर्ण परिचय कराया है। प्रेम में अपना वश नहीं चलता,[2] कुल-नेम सब कुछ छूट जाता है।[3] एक मन दूसरे में उसी प्रकार डूब जाता है जैसे बूंद कूप में।[4] प्रेमी को पाने के लिए व्यक्ति अनेक दु:ख सहता है, तपस्या करता है,[5] और जब उसे प्रेमी दृष्टिगत होता है तो वह सब कुछ छोड़ बदनामी सहता हुआ उसके पीछे चल देता है ।[6] प्रेम की यह अनुभूति कुछ न कुछ सत्य अवश्य रही होगी अभिव्यक्ति की यह मार्मिकता उनके व्यक्तित्व का ही प्रकाश है : 'मन ते अन ते जु बसी तब जानी ।'[7]

जीवन के प्रति देव सकारात्मक दृष्टि रखते थे। वे सोचते थे, हर आने वाला अच्छा होगा। तभी तो वे अपनी रचनाएँ भिन्न व्यक्तियों के पास लेकर जाते रहे। उन्हें लगता होगा कि यह नवीन व्यक्ति अवश्य गुण-ग्राहक होगा पर अन्त में उनकी आस्था डगमगा गई। - 'आज लौं हो कैते, नरनाहन की नाहीं सही'[8] इसलिए उन्होंने इस आस्था को ईश्वरोन्मुख कर दिया क्योंकि वहाँ निराशा नहीं, 'जो हो लौं न जान्यो अनजान रहो तो हो लौं सु अब मेरो मन बहकाए बहकत

1-- प्रेम पच्चीसी, देव, पद्य-संख्या 25 ।

2-- प्रेमचन्द्रिका, देव, प्रथम प्रकाश, पद्य-संख्या 51 ।

3-- वही, प्रथम प्रकाश, पद-संख्या 52 ।

4-- वही, द्वितीय प्रकाश, पद-संख्या 30 ।

5-- वही, प्रथा प्रकाश, पद-संख्या 13 ।

6-- देवचरित्र, देव, पद्य-संख्या 79 ।

7-- भाव-विलास, देव, द्वितीय विलास, पद्य-संख्या 46 ।

8-- वैराग्य-शतक (प्रेम पच्चीसी), देव, पद्य-संख्या 25 ।

नाहि ।।[1] उन्होंने आगे कहा, 'होइ हरि चाकर, तो चाकर जगत् होइ, जगत् को चाकर ह्वै कूकर भयो फिरै ।'[2]

देव की प्रकृति सुन्दर के प्रति आकर्षित होने की थी। नारी-सौन्दर्य, भाव-सौन्दर्य के साथ-साथ प्रकृति सौन्दर्य के प्रति भी वे अनुरागवान थे। इसका पता उनकी रचनाओं में प्राप्त प्रकृति-चित्रण से चलता है;[3] जहाँ 'हेरत' ही उनका 'हिय' प्राकृतिक सौन्दर्य ने 'हर' लिया।

देव अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न एवं बहुत विषयों के ज्ञाता कवि थे। अल्पायु में ही ऐसे ग्रन्थों की रचना कर देना, जो आज भी विद्वानों को आश्चर्य में डाल देती है, उनकी प्रतिभा की परिचायक है। देव को मात्र हम युगानुरूप शृंगारी ही नहीं पाते वरन् विभिन्न दर्शनों के ज्ञाता भी पाते हैं। काव्य के शास्त्रीय ~~विभिन्न दर्शनों-क~~ पक्ष पर भी उन्होंने लिखा है। काव्य ही नहीं, 'नाटक' रचना भी की है। साधारण विषयों को अपनी कल्पना द्वारा[4] ऐसा वर्णित किया है कि पाठक उनकी प्रतिभा की सराहना किये बिना नहीं रह सकता। विषय के शृंगारी होने के कारण, बुद्धि, चाहे बाद में, उस सराहना को, नकारने लगे, परन्तु, एक बार तो उनकी प्रतिभा अपनी स्वीकृति ले लेती है ।

प्रतिभा-सम्पन्न होते हुए भी देव में विनम्रता प्रचुर मात्रा में मौजूद थी। अपनी बुद्धि, अपने गुणों को अति अल्प समझते थे --

अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार ।
तातें मोपर करि कृपा लेहँ सुमति सुधार ।।

1-- सुमिल विनोद, देव, अष्टम प्रकाश, पद्य-संख्या 10 ।

2-- वैराग्य शतक (आत्मदर्शन पच्चीसी), देव, पद्य-संख्या 20 ।

3-- भाव विलास, देव, प्रथम विलास, पद्य-संख्या 21, 22 ।

4-- (क) द्रष्टव्य-- सुमिल विनोद, देव, तृतीय प्रकाश, पद्य-संख्या 11 ।
(ख) वही, अष्टम प्रकाश, पद्य-संख्या 13 ।

या साहित्य समुद्र को बढ़ेन न पायो पार ।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार ।।[1]

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि देव प्रतिभासम्पन्न रसिक-प्रकृति के व्यक्ति थे, परन्तु शृंगारी, रसिक एवं सौन्दर्य-प्रेमी होते हुए भी उनके विचार छिछले (हलके) नहीं थे। विलासी वातावरण में रहते हुए, उसे भोगते हुए भी वे विलासी प्रकृति के नहीं कहे जा सकते । उन्होंने सर्वत्र स्वकीया के प्रेम को उचित ठहराया है। परकीया एवं सामान्या के प्रेम को निन्द्य माना है। प्रेम और वासना पृथक् है। वे प्रेम को अत्यन्त उदात्त एवं पवित्र मानते थे। देव के व्यक्तित्व में उदात्तता, नैतिकता का यह अंश प्रारम्भ से ही विद्यमान था।

उनके व्यक्तित्व की एक अन्य विशेषता यह थी कि संसार के आकर्षणों के प्रति वे आकर्षित हुए पर उनसे बंधे नहीं, बल्कि यह प्रमाणित कर दिया कि सांसारिक आकर्षण एवं सुख मृग-मरीचिका के समान है ।

ईश्वर-भक्ति, प्रेम, परोपकार, ज्ञान आदि द्वारा मनुष्य अपने जीवन को सफल बना सकता है। आडम्बरों, अंधविश्वासों का खण्डन कर उन्होंने अपने विवेक का परिचय दिया।

देव की रसिकता जीवन-संघर्षों से टकराकर उन्हें आदर्श की ओर ले गई। और उन्होंने अपने अनुभवों का सार दूसरों को बता कर उनका पथ-प्रदर्शित किया । अगर मनुष्य चाहें तो उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं । उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रेरणास्रोत बन सकता ।

1-- भाव-विलास, देव, पंचम विलास, पद्य-संख्या 78-79 ।

(ग) कृतित्व

देव का 'कृतित्व' आज भी हिन्दी साहित्य में विवादास्पद विषय समझा जाता है। तथापि उनका विपुल-साहित्य, विभिन्न भाव-भूमियों के स्पर्श और गम्भीर दृष्टि-सम्पन्न होने के कारण, निर्विवाद रूप से उन्हें महाकवि रूप में सहज स्वीकृति प्राप्त कराता है।

मिश्रबन्धुओं ने इनके ग्रन्थों की संख्या 72 या 52 सुनी थी और 27 ग्रन्थों का नामोल्लेख किया।[1] आचार्य शुक्ल के अनुसार, 'कोई इनकी रची पुस्तकों की संख्या 52 और कोई 72 बतलाते हैं। जो हो, इनके निम्न ग्रन्थों का तो पता है --

(1) भाव विलास ,
(2) अष्टयाम ,
(3) भवानी-विलास,
(4) सुजान विनोद,
(5) प्रेमतरंग,
(6) रागरत्नाकर,
(7) कुशल विलास,
(8) देव चरित्र,
(9) प्रेमचन्द्रिका,
(10) जाति-विलास
(11) रस-विलास
(12) काव्य रसायन या शब्द रसायन,
(13) सुखसागर-तरंग,
(14) वृन्दा-विलास,
(15) पावस-विलास,
(16) ब्रह्मदर्शन पच्चीसी,
(17) तत्वदर्शन-पच्चीसी,
(18) आत्मदर्शन-पच्चीसी,
(19) जगदर्शन पच्चीसी,
(20) रसानन्द-लहरी,
(21) प्रेम-दीपिका तथा
(22) नखशिख प्रेमदर्शन ।[2]

डा० नगेन्द्र ने देव के 18[3] प्राप्य एवं 11[4] अप्राप्य, पर विश्वसनीय ग्रन्थों का उल्लेख किया। ~~इस प्रकार डा० नगेन्द्र~~ इस प्रकार डा० नगेन्द्र द्वारा उल्लिखित

1-- देवसुधा, मिश्रबन्धु, पृ० 5, पांचवां संस्करण ।

2-- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, 14वां संस्करण, पृ० 255 ।

3-- देव और उनका कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 38 ।

4-- वही, पृ० 39 ।

देव कृत ग्रन्थों की संख्या 29 हो जाती है। परन्तु डा० भोलानाथ तिवारी,[1] ने देव के 32 ग्रन्थों की सूची दी है। डा० राम अवध द्विवेदी ने इनकी 18 पुस्तकें मानी हैं।[2]

इन सभी ने देवशतक की चारों पच्चीसियों को पृथक् चार पुस्तकें माना एवं जाति-विलास और रस-विलास को (जो मूलत: एक ही हैं) अलग-अलग माना है। (देव-ग्रन्थावली) डा० लक्ष्मीधर मालवीय कृत शोध इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। तथ्यों के आधार पर स्पष्टत: प्रमाणित करते हुए वे कहते हैं -- 'जाति-विलास अब तक देव के स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत होता रहा है परन्तु वर्तमान अनुसंधान के अनुसार यह 'रस-विलास' के प्रथम संस्करण की पंचम विलास तक खण्डित प्रतिलिपि है।

इसी तरह 'प्रेमतरंग' 'कुशल-विलास' का कविकृत प्रथम संस्करण है। देव ने भी इसी प्रेमतरंग के आधार पर 'कुशल सिंह को समर्पित करने के हेतु 'कुशल विलास' की रचना की थी, अत: इस दूसरे ग्रन्थ में 'प्रेम-तरंग' का सम्पूर्ण आकार समाविष्ट होने के कारण इसका पृथक् सम्पादन अनावश्यक है।'[3]

रागरत्नाकर के विषय में उनका मत है 'भाषा के आधार पर 'रागरत्नाकर' को देवकृत ग्रन्थ मानने के कारण ही डा० नगेन्द्र भ्रान्ति के शिकार हुए हैं। 'रागरत्नाकर' में देव के किसी अन्य ग्रन्थ के छन्द नहीं हैं, न किसी अन्य ग्रन्थ में 'राग-रत्नाकर' के छन्द हैं। देव के अन्य सर्वमान्य ग्रन्थों की तुलना में यह इस ग्रन्थ की असाधारण विशेषता है।[4]

1-- महाकवि देव, भोलानाथ तिवारी, पृ० 32 से 76 तक।

2-- ए क्रिटिकल सर्वे आफ हिन्दी लिटरेचर, राम अवध द्विवेदी, पृ० 109।

3-- देव-ग्रन्थावली, डा० लक्ष्मीधर मालवीय, पृ० 3।

4-- वही, पृ० 2।

यह सत्य है कि बिना परीक्षण किये विद्वानों ने 'कुशल विलास' और 'प्रेम तरंग' तथा 'जाति विलास' और 'रस विलास' को चार भिन्न पुस्तकें माना है। लेकिन 'राग-रत्नाकर' के विषय पर बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जिसे अनुसंधान कवि-कृत नहीं मानते वह नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'देवग्रन्थावली' पुस्तक में प्रेमचन्द्रिका और सुजान-विनोद के साथ प्रकाशित हुआ है। बिना पूर्ण परीक्षण के पुस्तकों का प्रकाशन शोधार्थियों के लिए नई समस्या बन जाता है ।

डा० लक्ष्मीधर मालवीय ने इनकी सात पुस्तकों का सम्पादन किया है। वे हैं -- (1) काव्य रसायन, (2) कुशल विलास, (3) भवानी विलास, (4) भाव विलास (5) रस विलास, (6) सुजान विनोद तथा (7) सुमिल विनोद ।[1]

डा० पुष्पारानी जायसवाल ने देव कृत छः ग्रन्थों का सम्पादन किया है । वे हैं -- (1) अष्टयाम, (2) देवचरित्र, (3) देवमायाप्रपंच, (4) वैराग्य शतक, (5) प्रेमचन्द्रिका,[3] (6) सुखसागर तरंग ।[2] 'जय सिंह विनोद' भी डा० मालवीय के पास है । इस प्रकार देवकृत 14 पुस्तकों का प्रामाणिक सम्पादन हो चुका है। यही पुस्तक-संख्या वैराग्य-शतक की चारों पच्चीसियों को जोड़ने पर 17 हो जाती है और भ्रमवश दो पुस्तकों को चार मान लेने पर 19 जा पहुँचती है। नागरी प्रचारिणी के प्रकाशन पर विश्वास करें तो 20 हो जाती है। माधुरी पत्रिका में देवनाम से प्रकाशित 'शिवाष्टक' जोड़ने पर 21 और 'सुन्दरी-सिन्दूर' देव-सुधा आदि संग्रहों के जोड़ने पर 23-25 हो जाती है ।

1-- देव-ग्रन्थावली, डा० मालवीय, पृ० 1 ।

2-- देव-ग्रन्थावली, डा० पुष्पा, पृ० 11 ।

3-- वही, पृ० 6 ।

परन्तु हम यहाँ देव के ~~सर्वस्वीकृत~~ प्रामाणिक एवं सर्वस्वीकृत ग्रन्थों के आधार पर ही उनके कर्तृत्व का अध्ययन करेंगे; संदिग्ध सामग्री के सम्बन्ध में पिष्ट पेषण यहाँ अनुचित होगा।

कर्तृत्व के विषय में जानने से पूर्व कर्तृत्व की प्रेरणा जानना आवश्यक है। देव कवि को लेखन की प्रेरणा किसी व्यक्ति से मिली या अनुभूति-विशेष इस सन्दर्भ में देव ने कोई सूचना नहीं दी है।

अल्पायु में हीं ग्रन्थ-प्रणयन के आधार पर हम उनकी काव्य-प्रेरणा को दिव्य ही मान सकते हैं। उनकी आरम्भिक काव्य-रचनाएँ; रस, अलंकार, नायक-नायिका-भेद, शृंगार, भाव, अनुभाव, विभाव एवं स्थूल शृंगार की ऐसी सम्पूर्ण झाँकी प्रस्तुत करती है कि यह मानने को विवश होना पड़ता है कि अल्पायु में दिव्य प्रेरणा से देव प्रदत्त ज्ञान का प्रस्फुटन हुआ। अल्पायु के होते हुए भी वे स्वयं को स्थूल-शृंगार-वर्णन से रोक न सके। ये दोनों ग्रन्थ किसी को समर्पित भी नहीं है जो हम इन्हें तत्कालीन वातावरण, राजाश्रय या राजा की मनोवृत्ति के अनुकूल 'उपज' कह सकें। अत: देव को साहित्य की श्री-वृद्धि का आदेश दैवी था।

देव की रचनाओं का क्रम भी अनुमान के आधार पर निश्चित किया गया है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में रचनाकाल का प्राय: उल्लेख नहीं किया है, एक ग्रन्थ में कभी-कभी दूसरे ग्रन्थ का नामोल्लेख मिल जाता है। देवकृत ग्रन्थ निम्न हैं :-

(1) भाव विलास
(2) अष्टयाम
(3) सुमिल विनोद (रसानन्द लहरी)
(4) भवानी विलास
(5) प्रेमतरंग (कुशल विलास)
(6) जयसिंह विनोद
(7) रस विलास (जाति विलास)
(8) सुजान विनोद
(9) प्रेम चन्द्रिका
(10) शब्द रसायन (काव्य रसायन)
(11) देव चरित्र
(12) देवमायाप्रपंच
(13) वैराग्यशतक (चारों पच्चीसियाँ)
(14) सुखसागर तरंग ।

यद्यपि रचनाओं का यह क्रम विवाद-रहित नहीं है क्योंकि विभिन्न विद्वानों ने प्राय: अनुमान पर ही काल-क्रम निर्धारित करने का प्रयास किया है। तथापि यह क्रम ही प्रचलित है ।

देव के ~~ग्रन्थों के~~ ग्रन्थों के विषय में विस्तृत विवरण अनेक पुस्तकों में[1] उपलब्ध है इसलिए उनका पुन: परिचय देना पिष्ट-पेषण मात्र करना होगा। तथापि देव के काव्य की भावभूमियों का संक्षिप्त परिचय जानना अनुचित न होगा।

देव काव्य के अध्ययन से यह बात पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अपनी सम्पूर्ण काव्ययात्रा में तीन आयामों का स्पर्श किया। देव का काव्य-विकास बँधी-बँधाई परिपाटी पर नहीं चला, अपितु गत्यात्मक रहा। अर्थात् देव के भावों, विचारों में परिवर्तन आता रहा। पन्त का स्वर युगानुरूप बदला। पर, क्योंकि देव के समय में युग की मनोवृत्ति स्थिर प्राय: थी, इसलिए उनकी वाणी में परिवर्तन युगानुरूप न होकर उनके अपने भावानुरूप एवं जीवनानुरूप मिलता है। उनके भावों एवं विचारों में समय के साथ-साथ इतना अधिक परिवर्तन आया कि पाठक आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रहता। परन्तु, देव के जीवन-संघर्षों को जानने के बाद उसे (पाठक को) देव का यह भाव-परिवर्तन स्वाभाविक लगने लगता है। देव-कविता के तीन आयाम हैं --

1: शृंगार-रस ।

2: प्रेम ।

3: वैराग्य ।

1-- (क) देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र ।

(ख) महाकवि देव, भोलानाथ तिवारी ।

(ग) हिन्दी साहित्यकोश - 2, सं० धीरेन्द्र वर्मा ।

(घ) हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु ।

(ङ) हिन्दी के प्रतिनिधि कवि, डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ।

प्रथम आयाम : शृंगार-रस

देव की प्रारम्भिक रचनाओं, भाव विलास, अष्टयाम, कुसुम सुमिल विनोद, भवानी विलास, प्रेम तरंग, जयसिंह विनोद, रस विलास,- में रस, भाव, विभाव-अनुभाव, सात्विक एवं संचारी भाव, अलंकार, जाति, वय, कर्म आदि के आधार पर नायिका भेद, अष्टांगवती नायिका विभिन्न प्रदेशों की नारियों, षट्ऋतु वर्णन, ऋतुओं के आधार पर नायिका-भेद, संयोग-वियोग के हाव-भाव, नायक-भेद, दूती, सखा आदि का वर्णन मिलता है। शृंगार रस को सभी रसों का मूल एवं रसराज सिद्ध करते हुए उन्होंने इन सभी रचनाओं में शृंगार का स्पर्श है, चाहे वह सिद्धान्त रूप में है अथवा आधार रूप में। कवि की दृष्टि शृंगार के मिलन पक्ष के मांसल चित्र उतारने में अधिक रमी है। आयु, संबंध, एवं ऋतुओं के अनुसार नायिका-भेद के अतिरिक्त अष्टांगवती नायिका, नख-शिख वर्णन, विभिन्न अलंकारों का भी विस्तृत वर्णन उन्होंने किया है। नारी का इतना चित्रण करने पर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ फलत: नारी के विभिन्न भेदों--चित्रिणी, पद्मिनी आदि के साथ विभिन्न व्यवसायों में संलग्न नारियों--हलवाइनि, जौहरिनि, सुनारिनि, गंधिनि, तैलिनि, तमोलिनि, आदि ग्रामवासिनी --जाटिनि, अहिरिनि, काछिनि, कलारिनि आदि, पुरवासिनी --ब्राह्मणी, क्षत्रानी, वैश्यानी, नाइनि, मालिनि आदि के साथ साथ वनवासिनी, सैन्यवासिनी, मार्ग-वासिनी प्रभृति नारियों का विस्तृत वर्णन किया है। नारी और नारी से सम्बन्धित विषय क्षेत्र में ही उनकी लेखनी अपनी प्रतिभा का अधिक प्रकाशन करती रही। शृंगार और नारी के अतिरिक्त उन्होंने नायक के विभिन्न प्रकारों एवं सखा आदि का भी वर्णन किया है।

उनकी दृष्टि के इन्हीं प्रदेशों में भ्रमण एवं रमण का कारण तत्कालीन विलासी-वातावरण एवं कवि की अपनी रुचि दोनों कहे जा सकते हैं। विलासी-वातावरण के शृंगार-रस में डूब कर, विभिन्न स्त्रियों को सूक्ष्मदृष्टि से देखते हुए भी उन्होंने अपने उदात्त विचारों एवं व्यक्तित्व की झलक स्वकीया के महत्व को

प्रतिपादित करते हुए एवं परकीया और सामान्या के शृंगार को त्याज्य-- 'शृंगाराभास' कह कर दे दी है। ऐसा अनुमान होता कि वह राजाश्रय अथवा तत्कालीन राजाओं की मनोवृत्ति के अनुरूप, उनसे प्रशंसा एवं पारितोषिक पाने हेतु ऐसा कर रहे थे; दूसरे वह उस उम्र से गुजर रहे थे जब प्राय: व्यक्ति 'रस' को ही जीवन का सार मानता है। इस प्रकार 'रस विलास' की रचना तक कवि की दृष्टि शृंगार पथ में ही रमी रही। सौभाग्यवश 'रस-विलास' में प्राप्त कृति के रचनाकाल से कवि की आयु का भी कुछ अनुमान लग जाता है --

संवत सत्रह से बरस और चौरासी जान ।
रस विलास दसमी विजय पूरन सकल कलान ।। 8.94

इस प्रकार त्रिपाठी जी द्वारा प्रदत्त संवत् के आधार पर कवि की आयु 84 वर्ष और भावविलास के प्रदिाप्त दोहों के आधार पर 54 वर्ष ठहरती है ।

जो भी हो, कवि की आयु उस अवस्था को पहुँच चुकी थी जब मनुष्य रस-विलास के प्रति कुछ-कुछ अनासक्त होने लगता है ।

'सुजान-विनोद' को कवि के भाव-परिवर्तन (संक्रान्ति काल) की रचना है। इसमें कवि ने प्रथम बार 'प्रेम' का सूक्ष्म वर्णन करते हुए उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। साथ ही नायिका-भेद, षड्ऋतु वर्णन का भी पल्ला नहीं छोड़ा। प्रेम का महत्व प्रतिपादित करने के कारण कवि के परिवर्तनशील भावों एवं शृंगाररस के वर्णन के कारण अतीत और भविष्य की रचनाओं को ग्रन्थित करने वाली कड़ी प्रकट होती है ।

द्वितीय आयाम : प्रेम

'सुजान विनोद' में जिस प्रेम की झलक दिखाई दी उसका पूर्ण प्रस्फुटन 'प्रेम चन्द्रिका' में देखा जा सकता है। प्रेम-रस, प्रेम स्वरूप, प्रेममहात्म्य प्रेम के भेद, प्रेम की अवस्थाओं, विभिन्न नायिकाओं के प्रेम आदि का वर्णन किया है।

प्रेम के पाँच भेद किये हैं : सानुराग, सौहार्द, भक्ति, वात्सल्य और कार्पण्य। इनके भी उपभेद हैं। इसमें कवि का हृदय ही मानों स्वाभाविक रूप में बोल उठा है।

यहाँ कवि ने विषय-वासनाओं का तिरस्कार कर प्रेम की प्रतिष्ठा की एवं 'प्रेम' के झरोखे से, 'प्रेम' रूपी दीप से सभी को देखने का प्रयास किया है। विभिन्न नायिकाओं के, विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर प्रेम की तीव्रता, गहनता एवं उदात्तता का अंकन किया है। प्रेम में व्यक्ति किस प्रकार प्रेम पात्र का ही हो बैठता है, संसार को तृणवत् छोड़ देता है आदि का स्वाभाविक वर्णन किया है।

इस प्रकार कवि विषय-वासनाओं की वीथियों से होता हुआ प्रेम की उच्च भाव-भूमि पर पहुँच गया।

देवचरित्र से पूर्व कृति कवि कृत 'काव्य-रसायन (शब्द-रसायन) नामक ग्रन्थ उपलब्ध होता है। यह ग्रन्थ काव्यांग-विवेचन, शब्द-शक्ति, अलंकार, पिंगल आदि के सिद्धान्त-निरूपण से सम्बन्धित है। डा० महेन्द्र के अनुसार, "शब्द-रसायन में क्रमश: काव्य-स्वरूप, शब्द-शक्ति, नवरस, नायक-नायिका-भेद, रीति, गुण, वृत्ति, अलंकार और पिंगल का विवेचन 'काव्य-प्रकाश', 'साहित्य-दर्पण', 'रसमंजरी', और 'रस तरंगिणी' के आधार पर किया गया है।[1] डा० नगेन्द्र के अनुसार, "नायिका-भेद को कवि ने हल्का विषय समझ कर छोड़ दिया है।[2] इस प्रकार सिद्धान्त-निरूपण करते हुए भी, कवि के भाव-गाम्भीर्य का परिचय मिलने लगता है। अभिव्यक्ति की कला एवं वर्ण्य-विषय के आधार पर इसे कवि

1-- हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० 326 ।

2-- देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 60 ।

की प्रौढ़-कृति माना जाता है। जीवनानुभवों के कारण कवि की दृष्टि भी प्रौढ़ता प्राप्त कर रही थी। प्रथम और द्वितीय आयाम को कवि की तीसरी भावभूमि से जोड़ने वाली कड़ी 'देव चरित्र' है। यह श्री कृष्ण के चरित्र से सम्बन्धित है। श्रीकृष्ण-जन्म से लेकर बाल-लीला, माखन चोरी, बकासुर वध, कालियदमन, चीर-हरण, गोवर्धन धारण आदि एवं रासोल्लास, गोपियों एवं गोप की प्राप्ति आदि का वर्णन है। इसमें सभी रसों का परिपाक हुआ है। इसमें तीन भाव दृष्टिगोचर होते हैं -- भक्ति, प्रेम और शृंगार।

शृंगार कवि का प्रधान क्षेत्र रहा था। उसकी झलक देवचरित्र में अल्प-मात्रा में विद्यमान है। 'देव चरित्र' में शृंगार से अधिक प्रेम और उसके साथ भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार देव के मन में उठ रही भक्ति-भावना का संकेत 'देव चरित्र' में स्पष्टतया मौजूद है।

तृतीय आयाम : वैराग्य

देव के काव्य-विकास की तीसरी और अन्तिम भाव-भूमि वैराग्य भावना है। प्रेम की तीव्रता से जिस लोक-लाज, कलुषता का त्याग हुआ था, भक्ति के संयोग से ईश्वरोन्मुख होने के कारण वह वैराग्य में परिवर्तित हो गया। देवमाया-प्रपंच नाटक और वैराग्यशतक में कवि ने दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान और वैराग्य को स्वर प्रदान किया है। कवि का आदर्श, जीवन-दर्शन इन कृतियों में सहज ही देखा जा सकता है। देव-माया-प्रपंच नाटक में मनुष्य का सांसारिक-आकर्षणों के जाल में उलझना और फिर ज्ञान की सहायता से मुक्त होना दिखा कर यह सिद्ध किया है-'झूठो सुखु संसार को, सपने को सो रूपु' परन्तु 'जौ लौं अविद्या विद्यमान' अनेक माया रूप हैं। सुख दुःख भोगत आपु ही मन इन्द्रियनु के भूप है।' अतएव मनुष्य को सतसंगति एवं ज्ञान द्वारा सांसारिक आकर्षणों से दूर रहना चाहिए। वैराग्य भावना के उत्पन्न होने पर अपने पूर्व कर्मों की भर्त्सना भी उन्होंने की है --

ऐसो जो हौं जानतो कि जै है तू विषै के संग, है है मन मेरे
हाथ पाइ तेरे तोरतो ।
आज लौ हौं कैते नरनाहन की नाहीं सहि नेह सौनि-हारि
हारि, बदन निहोरतो ।
चलन न देतो देव चंचल अचल करि, चाबुक चितावनीन मारि
मुँह मोर तो ।
भारो प्रेम पाथर न गारो दै गरे सों बाँधि, राधावर विरद के
बारिधि मैं बोरतो ।।[1]

इस अन्तिम सोपान में उन्होंने जो भाव व्यक्त किये थे, सत्य, गम्भीर, उदात्त एवं उपयोगी हैं। देव की प्रारम्भिक कृतियों में प्राप्त शृंगार एवं विलास का तिरस्कार, 'काहू न संग गई गनिका - - -' कह कर किया है। बाह्याडम्बरों, अंधविश्वासों का खुलकर खण्डन किया है। आन्तरिक सच्चाई के बिना सब कर्म व्यर्थ है। मृत्यु से कोई बच नहीं पाया। इसलिए, परोपकार, ईश्वर-भक्ति, ज्ञान आदि द्वारा व्यक्ति को जीवन सफल बनाना चाहिए। पैसा दुःखों का मूल है। उसके पीछे नहीं दौड़ना चाहिए। और अन्त में, 'होइ हरि चाकर, तो चाकर जगत होई' अन्यथा 'जगत् को चाकर ह्वै कूकर भागे फिरै।' 'प्रतीति में परमेसुर' को पाने वाले देव 'स्याम रंग ह्वै करि, समान्यो स्याम रंग में।'

देव की काव्य-यात्रा जानने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि यद्यपि शृंगार एवं विलास-वर्णन कवि का सर्वाधिक प्रिय विषय था, क्योंकि परिमाण की दृष्टि से उनकी आधी से अधिक रचनाएँ शृंगाराश्रित हैं, परन्तु, शृंगार के मध्य स्वकीया के महत्व प्रतिपादन एवं प्रेम की उच्च भावभूमि के स्पर्श द्वारा अपने उदात्त विचारों का स्वाभाविक एवं मार्मिक संकेत दिया है। परिणाम में अल्प होते हुए भी भाव-गाम्भीर्य के कारण वे शृंगार-वर्णन से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। विषय-वासनाओं का तिरस्कार करके उन्होंने प्रेम को महान् पद

1-- वैराग्य शतक (प्रेम पच्चीसी), दैव, पद्य संख्या 25 ।

प्रदान किया है। उनके उदात्त विचारों की झलक 'शब्द-रसायन', जो कि रीति शास्त्रीय ग्रन्थ है, पर भी देखी जा सकती है। इसमें नायिका-भेद के विषय को स्थान नहीं दिया गया है । प्रेम की इस महानता का स्पर्श पाकर, कवि की लेखनी भक्ति के क्षेत्र में रमती हुई वैराग्य के शिखर तक जा पहुँची, जहाँ संसार एवं सांसारिक सुख तथा वैभव तृणवत् त्याज्य प्रतीत होते हैं । कवि 'स्याम रंग' है गया है। ' भुक्ति मुक्ति अरु भुक्ति को मूल सु कहिये काम' कहने वाला कवि 'काहू न संग गई गनिका ' आदि कहने लगा।

देव के काव्य की यह अनूठी विशेषता है कि उनकी जिस तन्मयता का परिचय विलास एवं शृंगार वर्णन में मिलता है वही प्रेम, भक्ति और वैराग्य में भी उपलब्ध है। भावों का यह स्वाभाविक वर्णन स्वयं में बेजोड़ है। अनुभूति की सच्चाई पाठक को तन्मय एवं भाव-विभोर कर देती है। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति ने मिलकर देव को समकालीन बना दिया है। अर्थात् वे अपने युग से जितने जुड़े रहे, वर्तमान और आगामी युग भी (से उतने ही) जुड़े हैं। इसका कारण उनके काव्य की 'शाश्वत-अनुभूतियाँ' हैं। ये शाश्वत उपलब्धियाँ देव-काव्य को अमरता प्रदान करने में समर्थ हैं। देव तत्कालीन पंकिल वातावरण के पंक में सन कर भी अपने 'देव' रूप को सुरक्षित रख सके। अपने सम्पूर्ण अनुभवों के आधार पर जीवन को जो दिशा प्रदान करने का प्रयास उन्होंने किया है वह समाज को पशुत्व की भावभूमि से ऊपर उठा (कर) देवत्व का आसन दिलाने में समर्थ है। आवश्यकता है उनके संघर्षों एवं अनुभवों के सार-रूप को अपनाने की ।

(ख) देवमाया-प्रपंच नाटक : कर्तृत्व

देवमाया-प्रपंच नाटक : कर्तृत्व

'देवमाया-प्रपंच नाटक' रीतिकालीन प्रसिद्ध महाकवि देव की एक मात्र नाट्यकृति है। यद्यपि इस रचना का प्रकाशन हो चुका है तथापि इस कृति को रीतिकालीन कवि देव-कृत न मानने वाले विद्वानों का तर्क आज भी निराकरण की अपेक्षा रखता है। देवमाया-प्रपंच नाटक को देव की रचना प्रमाणित करने के लिए दिए गए तर्क ठोस एवं अकाट्य हैं, फिर भी आलोच्य कृति को अन्य देव-कृत मानने वाले विद्वानों के मत का खण्डन नहीं करते।

विभिन्न संदर्भ ग्रन्थों[1] तथा ग्रियर्सन,[2] मिश्रबन्धु,[3] शिवसिंह सेंगर,[4] श्याम सुन्दर दास[5] तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र[6] आदि विद्वानों द्वारा, प्रस्तुत कृति को,

---

1--(क) खोजों में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण; सन् 1904 क्रम संख्या 35 ह ; सन् 1909-1911 क्रमांक 29; सन् 1929-- क्रमांक 95 बी; सन् 1929-31 क्रमांक 80 एफ, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

(ख) ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर, के० बी० जिंदल, पृ० 182 तथा 188 ।

(ग) पंजाबी हथ लिखतां दी सूची-2, भाषा विभाग, पंजाब, पृ० 23 ।

(घ) हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डा० कृष्ण लाल हंस, पृ० 311 ।

(ङ) आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंगल प्रभाव, डा० उपेन्द्र नारायण, पृ० 62 ।

(च) रीतियुगीन काव्य, डा० कृष्ण चन्द्र वर्मा, पृ० 329 ।

(छ) पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० 487 ।

(ज) महाकवि देव, डा० भोलानाथ तिवारी, पृ० 76 ।

(झ) हिन्दी साहित्य कोश-2, धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 247 ।

(ञ) हिन्दी विश्वकोश, ~~हि०~~ भाग 10, डा० नगेन्द्रनाथ वसु, पृ० 600 ।

2-- हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन (अनु० किशोरी लाल), पृ० 140 ।

3--(क) ~~क~~ नवरत्न, मिश्रबन्धु, पृ० 220 ।

(ख) देवसुधा, मिश्रबन्धु, पृ० 5 ।

(क्रमशः.....

देवकृत कहे जाने पर भी, अनेक विद्वानों ने इसे अन्य कवि देव की रचना माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'देवमाया-प्रपंच नाटक' का उल्लेख देवकृत ग्रन्थों में नहीं किया तथा स्पष्ट शब्दों में इसे व्यास-शिष्य देव की रचना माना।(1)

आचार्य शुक्ल के संदेह का निराकरण (?) करते हुए डा० नगेन्द्र ने लिखा, " 'देवमाया-प्रपंच' देवकृत रचना है, इस विषय में पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने सन्देह प्रकट किया है, परन्तु वास्तव में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने स्पष्ट ही अपने नाम का उल्लेख किया है :--

" हृदे बसौ कवि देव के सत्संगति कौ पाय "

इसके अतिरिक्त, शैली पर भी देवकी छाप असंदिग्ध है और सबसे पुष्ट प्रमाण यह है कि ऐसे कुछ छन्द जो देव के सर्व-स्वीकृत ग्रन्थों में मिलते हैं, इसमें भी उद्धृत हैं।"(2)

डा० नगेन्द्र के पुष्ट प्रमाणों के पश्चात् भी हिन्दी साहित्य जगत् में इस कृति के रचयिता के सन्दर्भ में संदेह बना रहा। डा० ब्रजरत्न दास,(3) डा०

4-- शिवसिंह सरोज, शिवसिंह सेंगर अनु० किशोरीलाल गुप्त, पृ० 718 ।

5-- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, १, श्यामसुन्दर दास, पृ० 435 ।

6-- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, गोपीनाथ तिवारी, पृ० 46 ।

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 197, नौवाँ संस्करण ।

(2) देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 18 एवं 67, चतुर्थ संस्करण ।

(3) (क) हिन्दी नाट्य साहित्य, ब्रजरत्न दास, पृ० 57, वि० संवत् 2017 ।

(ख) नहुष नाटक, सं० ब्रजरत्नदास, पृ० 3, वि० संवत् 2011 ।

किशोरी लाल गुप्त,[1] डा० गोपीनाथ तिवारी,[2] डा० सरोज अग्रवाल[3] प्रभृति विद्वानों ने इसे रीतिकालीन कवि देव कृत मानने का स्पष्टत: विरोध किया। डा० ब्रजरत्न दास ने 'देवमाया-प्रपंच नाटक' के सन्दर्भ में कहा, "देवमाया-प्रपंच रीतिकालीन कवि देव द्वारा निर्मित नहीं है।"[4] डा० किशोरी लाल गुप्त ने ग्रियर्सन कृत हिन्दी साहित्य का अनुवाद करते समय मात्र इतना ही कहा कि, "देवमाया-प्रपंच किसी दूसरे देव की रचना है।"[5] परन्तु 'सरोज-सर्वेक्षण' में अपने मत का उन्होंने दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन किया। 'देवमाया-प्रपंच नाटक' के छठे अंक के अन्तिम दो दोहों को उद्धृत करते हुए वे कहते हैं, "देवमाया-प्रपंच नाटक भी हिन्दी की कृति समझी जाती है। यह भी किसी अन्य देव की कृति है। पहले दोहे में आया 'व्यास' शब्द सन्देह बढ़ाने के लिए पर्याप्त है। हिन्दी काव्य जगत् में देव का बड़ा नाम है। डा० नगेन्द्र ने 'देव की कविता' नाम से इन पर सुन्दर आलोचना भी प्रस्तुत कर दी है। परन्तु जब तक इनकी समस्त ग्रन्थावली पूर्ण छानबीन के साथ प्रकाशित नहीं की जाती, तब तक यह आलोचना पानी पर बने बेल-बूटे के सदृश है।"[6] कहने की आवश्यकता नहीं कि आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तुत

1-- (क) सरोज सर्वेक्षण, किशोरी लाल गुप्त, पृ० 363 ।

(ख) शिवसिंह सरोज, अनु० किशोरी लाल गुप्त, पृ० 718 ।

(ग) हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनु० किशोरीलाल गुप्त, पृ० 140 ।

2-- भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य, डा० गोपीनाथ तिवारी, पृ० 46 ।

3-- प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी-परम्परा, डा० सरोज अग्रवाल, पृ० 335 ।

4-- हिन्दी नाट्य साहित्य, ब्रजरत्न दास, पृ० 57, संस्करण 2017 संवत् ।

5-- हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनु० किशोरी लाल गुप्त, पृ० 140

6-- सरोज-सर्वेक्षण, डा० किशोरी लाल गुप्त, पृ० 363 ।

किये गए 'व्यास' पर आधारित तर्कों का स्पष्टीकरण न होने के कारण डा० नगेन्द्र द्वारा इस कृति के सन्दर्भ में प्रस्तुत शुक्ल जी के आरोपों का निराकरण न कर सके।

डा० गोपीनाथ तिवारी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मत का खण्डन करते हुए लिखा, 'भारतेन्दु जी के इस निर्णय के पीछे दो कारण प्रतीत होते हैं --- उस समय तक इन नाटकों का सम्यक् अध्ययन नहीं हो पाया था। तभी तो देवमाया-प्रपंच को प्रसिद्ध कवि देव द्वारा निर्मित मान लिया है। आज तो प्रकट है कि देवमाया-प्रपंच के रचयिता प्रसिद्ध कवि देव न थे वरन् व्यास-पुत्र देव थे।'[1] शुक्ल जी द्वारा देव को व्यास-शिष्य बताया गया था। तिवारी जी ने उन्हें न मालूम किस आधार पर उन्हें व्यास-पुत्र घोषित किया ? डा० सरोज अग्रवाल ने इस कृति को व्यास-शिष्य देव की रचना माना एवं अपने मत के समर्थन में जिन चार प्रमाणों का उल्लेख किया।[2] उन प्रमाणों में से अन्तिम दो भ्रान्त एवं असत्य हैं। नवरत्नकारों ने तो देवमाया प्रपंच नाटक का परिचय देते हुए, इसे देवकृत माना है। उनके शब्दों में 'ग्रन्थ कुल मिलाकर अच्छा है फिर भी इनके खास ग्रन्थों की बराबरी नहीं कर सकता। -- -- -- --
देव के जिन ग्रन्थों पर ऊपर समालोचना लिखी गई है, उन सब को सम्मति लिखते समय हमने देखा है।'[3]

डा० ओझा ने देवमाया-प्रपंच नाटक के रचयिता के सन्दर्भ में बिना किसी शंका-समाधान के इसे देवकृत कहा है।[4] आश्चर्य है कि डा० सरोज अग्रवाल ने अपने शोध-प्रबन्ध में इस प्रकार के असत्य प्रमाणों का प्रतिपादन किया। डा०

1-- भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, डा० गोपीनाथ तिवारी, पृ० 46 ।

2-- प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा, डा० सरोज अग्रवाल, पृ० 335 ।

3-- हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, पृ० 221 ।

4-- (क) हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास, डा० ओझा, पृ० 367-368, संस्करण पंचम।
(ख) व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार ।

वेदपाल खन्ना विमल,[1] डा० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह,[2] डा० सोमनाथ गुप्त[3] प्रभृति विद्वान् इस विषय में मौन रहे हैं।

वस्तुत: जिन विद्वानों ने 'देवमाया-प्रपंच नाटक' को रीतिकालीन देव की कृति मानने में अस्वीकृति प्रकट की है, उनका एक मात्र तर्क है कि आलोच्य कृति 'व्यास-शिष्य' अथवा 'व्यास-पुत्र' देव की रचना है।

डा० नगेन्द्र के अतिरिक्त डा० जगदीश गुप्त ने इस रचना को देव-कृत सिद्ध करने के लिए नवीन प्रमाण उपस्थित किया कि, "इसकी एक अत्यन्त प्राचीन प्रति देव के वंशज मातादीन दूबे के पास सुरक्षित है।"[4] डा० पुष्पा जायसवाल ने 'देवमाया-प्रपंच नाटक' का सम्पादन करते हुए भी इस क्षेत्र में कोई योगदान नहीं किया।[5]

उल्लेखनीय तथ्य है कि ठोस एवं अकाट्य प्रमाणों के पश्चात् भी 'देवमाया-प्रपंच' नाटक के रचयिता के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया सन्देह आज भी ज्यों का त्यों है। इसका एक मात्र कारण 'व्यास' शब्द का स्पष्टीकरण न किया जाना है। इसी कारण विपक्षी विद्वानों का मत कि, 'कृष्ण-भक्त कवि व्यास जी के शिष्य देव, जिन्हें कुछ विद्वानों ने भ्रमवश रीतिकालीन कवि देव से अभिन्न माना है;[6] निरन्तर उल्लिखित होता रहा। यहाँ यदि यह कहा जाए कि देवमाया-प्रपंच नाटक के प्रणेता रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि देव और व्यास-शिष्य देव को

1-- हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वेदपाल खन्ना 'विमल'।
2-- हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह।
3-- हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त।
4-- हिन्दी साहित्य कोश भाग 2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 247 ।
5-- देव-ग्रन्थावली, भाग एक; सं० डा० पुष्पारानी जायसवाल।
6-- साहित्य-सन्देश, भाग 22, सितम्बर 1960, पृ० 136-37 ।

दो विभिन्न व्यक्ति समझना, मात्र भ्रम है, तो अनुचित न होगा।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज-विवरण में इसका संकेत प्राप्त है। देवमाया-प्रपंच नाटक का उल्लेख करते हुए स्पष्ट लिखा है ---"ग्रन्थकर्ता कवि देव हैं। अन्तिम दोहे से ज्ञात होता है कि ये व्यास जी (सन् 1555) के शिष्य थे; हरिवंश जी के नहीं जैसा कि प्रसिद्ध है।"[1]

इसके अतिरिक्त व्यास जी का परिचय देते हुए भी, श्याम सुन्दर दास जी ने इसे स्वीकारते हुए लिखा, "इन्होंने हरिव्यासी सम्प्रदाय की स्थापना की थी; देव कवि के गुरु थे।"[2]

इन विवरणों के पश्चात् भी अनेक विद्वानों ने[3] इन्हें हितहरिवंश जी का शिष्य बताया।

डा० नगेन्द्र ने हितहरिवंश जी को देव के गुरु कहे जाने के सम्बन्ध में लिखा है, "देव की राग-विराग की कविता पर भी राधा बल्लभीय सम्प्रदाय की कोई विशेष छाप नहीं है। देव के वंशज भी निश्चित ही इस सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं हैं और न वृन्दावन आदि में पूछताछ करने से ही उक्तमत की पुष्टि होती है। अतएव यह मानने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती कि किसी जनश्रुति पर आधृत होने के कारण ये शब्द ही भ्रांत हैं।"[4]

हितहरिवंश जी को, देव का गुरु माने जाने की धारणा को भ्रान्त सिद्ध करते हुए तथा शुक्ल जी की 'व्यास-शिष्य देव' की धारणा जानते हुए भी,

---

1-- एनुअल रिपोर्ट आन द सर्वे आफ हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट फार द इअर 1004, श्यामसुन्दरदास, पृ० 33 ।

2-- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग एक, सं० श्यामसुन्दर दास, पृ० 162 और 68 ।

3-- ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर, के० बी० जिंदल, पृ० 182 ।

4-- देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 29 ।

डा० नगेन्द्र ने देव के सम्बन्ध में व्यास जी की कोई चर्चा नहीं की ।

रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि देव व्यासजी के शिष्य थे। व्यास जी का देव ने गुरुवत् सम्मान किया है। इस सम्बन्ध में प्रथम उल्लेखनीय साक्ष्य देव कृत वे पद्य हैं जिन्होंने विद्वानों को भ्रम में डाला --

भ्रमतु फिर्यो हौं आजु लौं, जगमग तृष्णा प्यास ।
श्रीधन सीमा सिन्धु की, लहरि पियाई व्यास ।।

6.130 (देवमाया-प्रपंच नाटक)

जय जय जय राधे रमनि, जय जय श्री जदुराइ ।
हृदे बसौ कवि देव मैं सतसंगति के पाइ ।।[1]

6.140 (देव-माया-प्रपंच नाटक)

उपर्युक्त दोहों में 'व्यास जी' का स्मरण एवं व्यास जी के उपास्य देव राधा-कृष्ण की उपासना, देव का व्यास जी का शिष्य अथवा अनुकर्ता होना सिद्ध करती है। व्यास जी का नाम 'रस विलास' एवं 'देवचरित्र' में भी प्रयुक्त हुआ है। यथा --

सात दीप नवखण्ड में सुन्यित देस अनन्त ।
बरनि बरनि थाके तिन्हैं व्यासादिक मतिमंत ।।

5.28 (रस विलास)

एवं वासुदेव जानी, व्यास देव जे बखानी, देवजानी के जनक देव
जानी के निवेदक की ।।

पद्य 78 (देव चरित्र)

इन स्थलों पर प्रयुक्त 'व्यास' नाम से यदि प्रथम का अर्थ व्यास-ऋषि माना जाए, तो भी दूसरे पद्य में प्रयुक्त व्यास शब्द 'हरिराम व्यास' का परिचायक है। व्यास जी की समस्त वाणी राधा-कृष्ण की भाव-भंगिमाओं से ओत-प्रोत है।

1-- देव ग्रन्थावली, डा० पुष्पा जायसवाल, पृ० 250 ।
भाग 1 ।

'देव चरित्र' पर व्यास जी के भावों की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। 'देवमाया प्रपंच नाटक' में प्रयुक्त 'व्यास' शब्द प्रतिपादितायों के सन्देह को बढ़ाने में पर्याप्त था; परन्तु इन रचनाओं में 'व्यास' उनके मन में किसी प्रकार के सन्देह की सृष्टि न कर सका। कारण अज्ञात है।

इन दो (?) तथाकथित कवियों की अभिन्नता प्रमाणित करने में दूसरा तर्क यह है कि देव की अनेक रचनाओं पर व्यास जी के विचारों और भावों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। किसी व्यक्ति के बताए हुए मार्ग पर चलना, उसके विचारों एवं भावों को अपनाना, उसके आदर्शों का अनुकरण करना ही वास्तविक शिष्यत्व है। मुख्यत: गुरु दो प्रकार से बनाए जाते हैं --- प्रथम दीक्षा ग्रहण करके, दूसरे आदर्शों को अपना कर। दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त यदि शिष्य गुरु-विमुख हो जाता है, तो भी 'शिष्य' ही कहलाता है, यद्यपि यह शिष्य का लक्षण नहीं है। गुरु बनाने अथवा शिष्य बनने का प्रधान आधार है -- किसी व्यक्ति को बौद्धिक, भावात्मक एवं व्यावहारिक धरातल पर सम्पूर्ण स्वीकृति प्रदान करना। यह गुरुपद दीक्षा ग्रहण करके प्रदान किया गया हो अथवा बिना दीक्षा लिए, सही अर्थों में गुरु बनाना है। एकलव्य को भील होने के कारण द्रोणाचार्य ने; कबीर को अस्पृश्य होने के कारण रामानन्द ने दीक्षा देनी स्वीकार नहीं की, तथापि दोनों ने अपना गुरु उन्हें ही माना। एकलव्य एवं कबीर को गुरु-विहीन कहना उनके प्रति अन्याय करना होगा। किसी से दीक्षा ग्रहण करना तथा सम्पूर्ण रूप से किसी को गुरु स्वीकारना दो भिन्न तथ्य हैं। दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त शिष्य गुरु का अनुसरण करेगा ही, अनिश्चित है; जबकि दूसरे रूप में शिष्य स्वेच्छा से अनुकरण करता है, जो स्थायी है। दीक्षा ग्रहण करना, न करना गौण बात है, मुख्य है अनुसरण करना। आदर्श व्यक्ति तो मरणोपरान्त भी गुरु बनाये जा सकते हैं। समय का व्यवधान इस सम्बन्ध में बाधक नहीं बन सकता।

देव के गुरु व्यास जी थे और व्यास जी के गुरु हितहरिवंश जी थे।

इसप्रकार हितहरिवंश जी देव के गुरु नहीं, वरन् उनके गुरु के गुरु थे। देव हितहरिवंश जी के शिष्य न होकर उनकी शिष्य-परम्परा में आते हैं। हितहरिवंश जी भी व्यास जी के दीक्षा-गुरु नहीं थे। इस सन्दर्भ में वासुदेव गोस्वामी के शब्द उल्लेखनीय हैं, "हितहरिवंश जी एक सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उनके नितप्रति बढ़ते शिष्यों के समुदाय में रहने वाले व्यास जी भी उनमें गुरुवत् श्रद्धा रखते थे। साधना मार्ग में व्यास जी के सहायक थे कदाचित इन्हीं परिस्थितियों में हित जी की महिमा वर्णन करने वालों ने व्यास जी को उनसे दीक्षा लेना भी लिखदिया है। -- -- -- -- -- व्यास जी के दीक्षा-गुरु उनके पिता सुकुल समोखन थे और हित हरिवंश जी उनके सद्गुरु थे जिनके उपदेश ने व्यास जी को भक्ति की ओर एकाग्र किया था। -- -- -- -- व्यास जी का राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रचार में पूरा सहयोग था। ज्ञात होता है कि एक ही दीक्षा-गुरु में अटल श्रद्धा रखने के विचार से उन्होंने हित जी से दीक्षा तो नहीं ली परन्तु उनकी प्रतिपादित माधुर्य भक्ति उन्हें मान्य हुई।"[1]

जहाँ व्यास जी एक ही दीक्षा-गुरु में विश्वास रखने के कारण हितहरिवंश जी से दीक्षा न ग्रहण कर सके वहाँ कवि देव समय के अन्तराल के कारण व्यास जी से दीक्षा न ग्रहण कर सके, परन्तु व्यास जी द्वारा प्रतिपादित माधुर्य भक्ति को देव जी ने मान्यता दी, जिसे उनके साहित्य में स्पष्ट देखा जा सकता है। राधा-कृष्ण की सखी भाव से भक्ति एवं उनकी निकुंज लीला का दर्शन, श्रवण, वर्णन ही माधुर्य भक्ति में प्रधान है। निकुंज लीला, नित्य विहार आदि में भक्त अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है।

व्यास वाणी के दो पक्ष हैं -- सिद्धान्त पक्ष और शृंगार पक्ष। सिद्धान्त भाग में स्तुति, उपदेश, भक्ति की महिमा आदि विषयों का वर्णन है। अतएव जहाँ लोभी, कपटी, साधु विमुखों के वर्णन आए हैं, उनके पढ़ने से ऐसी

1-- भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० 73-74।

व्यक्तियों का एक चित्र-सा सामने खड़ा हो जाता है। शृंगार रस भाग में राधा और कृष्ण के शृंगारिक चित्र प्रस्तुत हुए हैं[1]। व्यास जी ने शृंगार वर्णन में नख-शिख वर्णन, विपरीत वेश-भूषा, हास-परिहास, नित्य-विहार आदि के साथ-साथ सुरत, सुरतांत और यहाँ तक कि सुरत-युद्ध तक का चित्र प्रस्तुत किया है। यह वर्णन अनेक स्थलों पर अश्लील प्रतीत होता है[2]। यह अश्लीलत्व सामान्यजन का दृष्टि-दोष है एवं मधुर रस में पगे भक्त के लिए अलौकिक आनन्द-प्रदाता।

देव की विभिन्न कृतियों पर राधाकृष्ण की माधुर्य भक्ति स्पष्टत: प्रतिबिम्बित है। 'अष्टयाम' के प्रारम्भ में ही राधा-कृष्ण के नित्य-विहार आदि का संकेत दिया है --

सदा दुलही वृषभानु सुता, दिन दुलह श्री ब्रजराज कुमार ।।
(प्रथम याम : प्रथम पद्य)

आतुस में, रसमें, रहमें, बहसें बनि राधिका कुंज बिहारी ।
स्यामा सराहति स्याम की पागहि, स्याम सराहत स्यामा की सारी ।
(तृतीय याम : पद्य-संख्या 10)

तातें स्याम-अंग-रंग स्यामा पेन्हे स्याम सारी,
स्यामा रंग स्याम पटपीत पहिरत हैं ।
(तृतीय याम : पद्य-संख्या 12)

लागि सुधारन आंगी वधू लखि, देव गोपाल उठे अकुलाइकै ।
(पंचम याम : पद्य-संख्या 12)

लाल लई तत्काल हियो भरि, देव गोपाल गही गलबाहा ।।
(षष्ठ याम : पद्य-संख्या 4)

न्यारी कियो प्रानपति प्यारी जु कन्हाई री ।
(षष्ठ याम : पद्य-संख्या 14)

1-- भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृ० 168 ।

2-- देखिये--व्यास वाणी, पद्य 357 से 359 तक एवं 558, 564, 567, 568, 590 आदि । (भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, व्यासवाणी भाग)

देव इस अलौकिक (?) लीला में इतने निमग्न हो उठे कि उन्हें प्रात:काल भी, "लोहू पियो जु वियोगिनी को सु लियो मुख लाल पिसाचिनी प्राची" लगने लगा। (अष्टम याम : पद्य संख्या 16) । अन्त में माधुर्य भक्ति में मान्य इस विहार-विलास की महत्ता को उन्होंने इन शब्दों में मान्यता दी है :--

आठ पहर चौंसठ घरी बरनि कहो कवि देव ।
जानत जे अनुभवत जे, बड़े भाग के तेव ।। (अष्टम याम : पद्य-संख्या 17)

'भाव विलास' यद्यपि लक्षण ग्रन्थ है तथापि राधा-कृष्ण के रास, विलास, विहार, सौन्दर्य आदि के भी अनेक चित्र उपलब्ध हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही 'श्री वृन्दावन चन्द' का स्मरण किया गया है।

श्री वृन्दावन चन्द चरण जुग चरचिचित धरि ।
दलिमल कलिमल सकल कलुष दोष मोष करि ।।
(भाव विलास : प्रथम विलास : पद्य-संख्या 1)

'रस-विलास' के प्रारम्भ में भी कृष्ण की स्तुति की गई है। यथा --

पायनि नूपुर मंजु बजै कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई ।
-- -- -- -- -- -- --
जै जग मंदिर दीपक सुन्दर श्री ब्रजदूलह देव सहाई ।।
(प्रथम विलास : पद्य-संख्या 1)

'प्रेमचन्द्रिका' में --

राधा-कृष्ण किसोर जुग, पद बंदौं जगदंब ।
मूरति रति सिंगार की, सुद्ध सच्चिदानन्द ।।
(प्रेमचन्द्रिका : पद्य-संख्या 3)

कह कर राधा-कृष्ण का स्मरण किया गया है ।

'सुमिल विनोद' में शृंगार की महत्ता प्रतिपादित करते हुए भी राधा-कृष्ण की ही चर्चा है --

सुनि देव अनूप कला ब्रजभूप की रूपकला अकुलान लगी है ।
पहिचानन प्रीति अचान लगी कछु देखिबे को ललचान लगी है।

भरि भाइक भौंह कमान चढ़ाइ कै तानन लोचन बान लगी है ।

कहुं कान्ह कहानी सी कान परी तब तैं मन प्रान बिकान लगी है।।

(सुमिल विनोद : प्रथम विनोद : पद संख्या 16 ।

इस प्रकार राधा-कृष्ण की माधुर्य भक्ति से सम्बन्धित अनेक स्थल देव की रचनाओं में उपलब्ध हैं [1] जिन पर व्यास जी के भावों की छाप परिलक्षित होती है ।

जिस प्रकार भक्त व्यास जी ने माधुर्य-भक्ति का प्रतिपादन करते हुए, राधा-कृष्ण की भक्ति, नित्य विहार, विलास आदि द्वारा अलौकिक रस-पान करना तथा वाणी द्वारा अन्य भक्तों को उसका रसास्वादन कराना ही अपना लक्ष्य नहीं समझा वरन् चतुर्दिक व्याप्त प्रपंचों, पाखण्डों का भी चित्रण किया, उसी प्रकार देव ने भी सांसारिक प्रपंचों को वाणी दी है। डा० विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में, "व्यास जी व्यापक दृष्टि वाले जागरूक कोटि के व्यक्ति थे। भक्ति-क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले उन्होंने संसार के प्रपंचों का मर्म भली भाँति देखा और समझा था। -- -- -- -- धार्मिक जगत् के ढोंग, दम्भ, बाह्याडम्बर, कृत्रिम आचरण की परीक्षा करके उन्होंने इनका त्याग ही उचित समझा।"[2] भक्ति के साथ व्यास जी ने अनेक आदर्शों का प्रतिपादन किया, यथा-- कपट से घृणा, अभिमान से बचना, आशा का परित्याग, लोक में यशोकामना को हेय बताना, आडम्बरों की निन्दा, मोह-माया, कंचन-कामिनी के भ्रम-जाल से बचना, कथनी-करनी के भेद-भाव की निन्दा, भगवद् भक्ति से ही कलियुग के

1-- द्रष्टव्य-- (क) सुमिल विनोद, देव, तृतीय विनोद : पद संख्या 27, 28, 36 ।

(ख) वही, चतुर्थ विनोद : पद संख्या 8, 13, 14 ।

(ग) रस विलास, देव, प्रथम विलास, पद्य संख्या 42 से 47 तक ।

(घ) वही, चतुर्थ विलास, पद्य संख्या 16, 22 आदि।

(ङ) वही, षाष्ठ विलास, पद्य संख्या 14, 37 आदि ।

2-- राधा बल्लभ-सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० 304 ।

घातक प्रभाव से बचना, दैन्य भाव की भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति, एवं ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था आदि अनेक व्यावहारिक विचारों का प्रतिपादन किया है।[1] देव की उत्तरकालीन रचनाओं -- वैराग्य शतक, देवमाया प्रपंच नाटक पर व्यास जी के इन विचारों को देखा जा सकता है। देव ने धार्मिक आडम्बरों का विरोध,[2] अंध विश्वासों का खण्डन,[3] ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था[4] तथा समर्पण,[5] दैन्य भाव की भक्ति,[6] आशा की निन्दा,[7] सांसारिक प्रपंच एवं मायाजाल,[8] कपट से घृणा[9] के साथ-साथ प्रशस्ति-प्रधान युग में भी यशोकामना को हेय ठहराया, यथा :--

---

1-- विस्तार के लिए द्रष्टव्य, पूर्व उद्धृत, पृ० 387 से 397 ।

2-- वैराग्य शतक, देव, तत्वदर्शन पच्चीसी, पद्य संख्या 18 ।

3-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, पाँचवाँ अंक, पद्य संख्या, 42 ।

4-- वैराग्य शतक, देव, प्रेम पच्चीसी , पद्य संख्या 9 एवं 18 ।

5-- (क) वैराग्य शतक, देव, प्रेम पच्चीसी, पद्य संख्या 23 ।

(ख) वही, तत्वदर्शन पच्चीसी, पद संख्या 24 ।

6-- वैराग्य शतक, देव, आत्मदर्शन पच्चीसी, पद्य संख्या 20 ।

7-- (क) वैराग्य शतक, देव, जगद् दर्शन पच्चीसी, पद्य संख्या 9 ।

(ख) वैराग्य शतक, देव, आत्मदर्शन पच्चीसी : पद्य संख्या 21 ।

8-- (क) देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक संख्या 4 एवं 5 ।

(ख) वैराग्य शतक, देव, जगद्दर्शन पच्चीसी, पद्य संख्या 18, 24, 25 ।

(ग) वैराग्य शतक, देव, आत्म दर्शन पच्चीसी , पद्य संख्या 17, 25 ।

9-- (क) वैराग्य शतक, देव, तत्वदर्शन पच्चीसी , पद संख्या 1 ।

(ख) वैराग्य शतक, देव, प्रेम पच्चीसी : पद संख्या 26 ।

"आपनी बड़ाई जाहि भावै सो हमैं न भावै "

(वैराग्य शतक : जगद्दर्शन पच्चीसी : पद संख्या 7)

व्यास-वाणी का प्रभाव होने के कारण ही सम्भवत: देव किसी भी आश्रय में स्थायी रूप से न रह सके। न चाहते हुए भी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उन्हें स्थान-स्थान पर धनोपार्जन के लिए भटकना पड़ा, इसकी उन्होंने बड़े मार्मिक शब्दों में व्यंजना की है :--

" आज लौं हौं कैते नरनाहन की नाहीं सहि, नैह सों निहारि
हारि, बदन निहोरतो ।।"[1]

व्यास जी के भावों एवं विचारों का प्रभाव देव की कृतियों में अत्यधिक उपलब्ध है।[2] यहाँ विस्तार में न जाकर संक्षेप में ही इस पर विचार किया गया है। व्यास द्वारा प्रस्तुत रास-वर्णन का प्रभाव भी देव की रचना में उपलब्ध है ।[3]

1-- वैराग्य शतक, देव, प्रेम पच्चीसी, पद्य संख्या 25 ।

2-- विस्तार के लिए द्रष्टव्य --

(क) व्यासवाणी (भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी)=देवकृत ग्रन्थ

पद संख्या	235	=	वैराग्य शतक, तत्वदर्शन पच्चीसी, पद 7 एवं 24 ।
,, ,,	251	=	वैराग्य शतक, जगद्दर्शन पच्चीसी, पद 24 ।
,, ,,	254	=	देवमाया प्रपंच नाटक, अंक 6, पद्य 94 ।
,, ,,	235	=	वैराग्य शतक, आत्मदर्शन पच्चीसी, पद्य 21 ।
,, ,,	101	=	देवमाया प्रपंच नाटक, अंक 6, पद्य 189 ।
,, ,,	106	=	देवमाया प्रपंच नाटक, अंक 6, पद्य 95 ।
,, ,,	410	=	देवमाया प्रपंच नाटक, अंक 6, पद्य 94 ।
,, ,,	125, 126	=	भाव विलास : चतुर्थ विलास, पद्य 78 ।

3 रास पंचाध्यायी,, 2, 3 = देवचरित्र : पद्य संख्या 79 ।

(ख) हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना, डा० प्रेमस्वरूप, पृ० 244 की पाद टिप्पणी में प्रस्तुत: व्यास वाणी, = देवकृत ग्रन्थ,

1: पाद टिप्पणी क्रम संख्या 2, = वैराग्य शतक : प्रेमपच्चीसी : पद संख्या 9, 10, 12, 14, 17 ।

देव चरित्र, पद्य संख्या 78, 79

(क्रमश ......

निष्कर्षत: देव द्वारा व्यास जी के प्रति प्रदर्शित गुरुवत् सम्मान, व्यासजी के भावों एवं विचारों का अनुकरण उन्हें व्यास-शिष्य प्रमाणित करने में समर्थ हैं। इस प्रकार 'देवमाया प्रपंच नाटक' को व्यास-शिष्य देव की रचना कहना भी असंगत नहीं है, परन्तु इस कथन से पूर्व, रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि देव और व्यास-शिष्य देव को, अभिन्न समझना होगा। इस 'अभिन्नता' को स्वीकार कर लेने के पश्चात् 'देव ' को स्वेच्छा से किसी भी विशेषण से सम्बोधित किया जा सकता है। 'देवमाया प्रपंच नाटक ' रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि व्यास के शिष्य देव की रचना है' यह कथन सभी भ्रान्तियों का निराकरण कर देता है ।

देवमाया प्रपंच नाटक : विभिन्न प्रतियाँ

देवमाया प्रपंच नाटक की प्रकाशित प्रति में जिन हस्तलिखित प्रतियों का आधार ग्रहण किया गया है, वे हैं -- (1) सरस्वती भण्डार, रामनगर दुर्ग,

---

.... 2: पाद टिप्पणी क्रम संख्या 10 = रस विलास : सप्तम् विलास, पद्य संख्या 33 ।
एवं
प्रेम चन्द्रिका : द्वितीय प्रकाश, पद्य संख्या 30-39, 51 ।
प्रेम चन्द्रिका : चतुर्थ प्रकाश, पद संख्या 11, 15 ।
देवचरित्र : पद संख्या 81 ।
वैराग्यशतक : प्रेमपच्चीसी, पद संख्या 22 ।

3: ,, ,, 11 = सुखसागर तरंग , पद संख्या 805 ।
वैराग्यशतक, तत्वदर्शन पच्चीसी, पद सं० 7

4: ,, ,, 12 = प्रेमचन्द्रिका, चतुर्थ प्रकाश, पद्य सं० 2
वैराग्यशतक, प्रेम पच्चीसी, पद सं० 25 ।

5: पाद टिप्पणी 'या रस बिनु फीकी = प्रेमचन्द्रिका : द्वितीय प्रकाश, पद सं० 45 ।

3-- देवचरित्र, देव, पद संख्या 15 ।

रामनगर वाराणसी में सूची पत्र संख्या 91/160 एवं विंह नं० 13 पर प्राप्त प्रति, (2) युगल किशोर मिश्र गन्धौली सिधौली, जि० सीतापुर (इस समय डा० ब्रजकिशोर मिश्र के निवास स्थान 35, खुरशीद बाग, लखनऊ में उपलब्ध) की प्रति एवं (3) पं० मातादीन द्विवेदी, ग्राम कुसुमरा जि० मैनपुरी की प्रति ।

तीनों हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर देवमाया प्रपंच नाटक की सम्पादिका डा० पुष्पा जी के निर्णयानुसार, " 'देवमाया प्रपंच' की केवल तीन ही प्रतियाँ उपलब्ध हैं ।"[1] पं० मातादीन के पास वाली प्रति में छठे अंक की छन्द संख्या 79 है जबकि अन्य दोनों प्रतियों के छठे अंक की छंद संख्या 140 है। इस सन्दर्भ में उनका कथन है, "प्रबल अन्तसाक्ष्यों से यह तो निश्चित है कि दोनों रूप कवि कृत हैं। कवि ने पहले संक्षेप में कथा लिखी होगी, उसे अपने वर्णन से सन्तोष न हुआ होगा अत: उसने उनका पुनर्विस्तार किया होगा। अपने ग्रन्थों की आकार वृद्धि कवि देव की सामान्य प्रवृत्ति रही है। अत: यह अनुमान निराधार नहीं है ।"[2]

पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में देवमाया प्रपंच नाटक की एक प्रति गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध है, जिसकी सूचना डा० पुष्पा जी को न मिल सकी। इस प्रति के छठे अंक में छंद संख्या 124 है जो अन्य तीनों प्रतियों से भिन्न है। इस प्रति का विस्तृत परिचय इस प्रकार है --

पंजाब विश्वविद्यालय पुस्तकालय में क्रम संख्या 116 पर उपलब्ध है । संवत् 1930 पौष मास में जीवन सिंह बेदी द्वारा भाई रामसिंह लाहौर वासी के पठनार्थ लिखी गई। प्रति पूर्ण एवं अच्छी हालत में है। कुल पृष्ठ संख्या 65 है ~~एक~~ प्रति पृष्ठ पंक्ति संख्या 16 के लगभग है। कागज मटमैला है एवं लाईनदार नहीं है। आदि से अन्त तक एक ही हस्तलेख है। लिखाई साफ एवं सुन्दर है ।

1-- देव-ग्रन्थावली, डा० पुष्पा जायसवाल, पृ० 113 ।

2-- वही, पृ० 116 ।

काली स्याही का प्रयोग किया गया है। लाल स्याही से छन्द संख्या लिखी गई है। लिपि गुरुमुखी है ।

देवमाया प्रपंच नाटक की अन्य प्रतियों में जहाँ प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'अंक' शब्द मिलता है वहाँ इस प्रति में 'प्रकार' शब्द है -- यथा "इति श्री देव माया प्रपंचाख्यानाटके बुद्धि विजय परमात्मा स्वरूप लाभोवष्टम प्रकार: समाप्तम् शुभमस्तु ।" कथा अन्य प्रतियों के समान है। अन्तिम पुष्पिकाओं के नाम में भी अन्तर मिलता है। प्रकाशित प्रति एवं पंजाब विश्वविद्यालय में प्राप्त इस प्रति की अंकों की पद्य-संख्या इस प्रकार है :--

प्रकाशित प्रति		पंजाब विश्वविद्यालय में प्राप्त प्रति	
अंक	कुल पद्य-संख्या	प्रकार	कुल पद्य-संख्या
1:	73	1:	72[1]
2:	89	2:	88[2]
3:	105	3:	105
4:	66	4:	66
5:	96	5:	97[3]
6:	140	6:	124[4]

1-- प्रकाशित प्रति का 69वाँ छंद हस्तलिखित प्रति में नहीं है।

2-- प्रकाशित प्रति का प्रथम दोहा हस्तलिखित प्रति में नहीं है। हस्तलिखित प्रति में छन्द संख्या गलत होने से, कुल छंद क्रम 86 लिखे गये हैं ।

3-- प्रकाशित प्रति में पद्य संख्या 30 के बाद के एक पद्य को क्रम-संख्या नहीं दी गई है जबकि हस्तलिखित प्रति में उसे क्रम-संख्या दी गयी है। इसी कारण एक छन्द अधिक जान पड़ता है ।

4-- हस्तलिखित एवं प्रकाशित प्रति में छठे अंक के प्रारम्भिक 30 पद्य समान हैं ।

हस्तलिखित प्रति के 31 से 37 तक के छंद प्रकाशित प्रति से नहीं मिलते। 38वाँ छंद समान है एवं छंद क्रम-संख्या भी एक ही है अर्थात् 38 । तत्पश्चात् हस्तलिखित प्रति के 42 से 99 तक के छंद प्रकाशित प्रति के समान हैं। प्रकाशित प्रति में यह छंद संख्या 47 से 104 तक है। दोनों प्रतियों में कहीं-कहीं शब्दों एवं कहीं-कहीं आधे वाक्य भी भिन्न है। प्रकाशित प्रति का 126 क्रमांक छंद कुछ अन्तर से पंजाबी प्रति में 119 संख्या पर उपलब्ध है। इसी प्रकार 133वाँ छंद हस्तलिखित में 122 पर कुछ परिवर्तन से प्राप्त है। प्रकाशित प्रति के 134-135 वें छंद को हस्तलिखित प्रति में 123 वें छंद में मिश्रित रूप में प्रस्तुत किया गया है। 124 वें छंद में, हस्तलिखित प्रति में कथा-समाप्ति की घोषणा कर दी गई है ।

इस विवेचन से प्रतीत होता है कि गुरुमुखी लिपि की इस प्रति का आधार रामनगर दुर्ग, वाराणसी अथवा सीतापुर वाली प्रति है। प्रति खण्डित उपलब्ध होने के कारण अथवा अनुलिपिकार की मौलिक सूझ-बूझ के योगदान-स्वरूप गुरुमुखी लिपि की प्रति में भिन्नता आई है। बीच-बीच में छन्दों का मिलना भी यह सिद्ध करता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में देवमाया प्रपंच नाटक में प्रकाशित प्रति की छंद-संख्या को उद्धृत किया गया है।

(ग) दैवमाया-प्रपंच नाटक :

नाटक के निकष पर

देवमाया-प्रपंच नाटक : नाटक के निकष पर

महाकवि देव कृत 'देवमाया-प्रपंच नाटक' रचयिता के सम्बन्ध में ही नहीं, काव्यरूप के सम्बन्ध में भी विवादग्रस्त है। आचार्य शुक्ल इसे नाटक न मान कर ज्ञानवार्ता मात्र मानते हैं।[1] डा० चन्द्रप्रकाश कुँवर का भी यही विचार है।[2] डा० गोपीनाथ तिवारी के अनुसार "देव कवि का देवमाया-प्रपंच भी प्रबोध-चन्द्रोदय की शैली पर लिखा गया काव्य ग्रन्थ है, नाटक नहीं।"[3] जवाहरलाल चतुर्वेदी,[4] डा० जगदीश गुप्त[5] प्रभृति[6] विद्वानों का दृष्टिकोण भी उक्त मत की पुष्टि करता है।

मिश्रबन्धुओं ने इस कृति को अर्ध-नाटक माना है।[7] डा० नगेन्द्र ने मिश्र-बन्धुओं के मत का स्पष्टीकरण करते हुए इसे नाटक माना है।[8] डा० दशरथ ओझा

1-- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृ० 107, नौवां संस्करण ।

2-- मध्यकालीन हिन्दी नाट्य-परम्परा और भारतेन्दु, डा० चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ० 107 ।

3-- भारतेन्दु के नाटकों का शास्त्रीय अनुशीलन, डा० गोपीनाथ तिवारी, पृ० 11 ।

4-- पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, सं० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 487 ।

5-- हिन्दी साहित्यकोश-2, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 243 ।

6-- (क) हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वेदपाल खन्ना विमल, पृ० 23 ।

(ख) हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, डा० रामगोपाल सिंह, पृ० 50 ।

(ग) हिन्दी साहित्य कोश, सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 381 ।

(घ) हिन्दी नाटकों पर आंग्ल प्रभाव, डा० उपेन्द्र नारायण, पृ० 44 ।

(ङ) हिन्दी साहित्य : नए प्रयोग, क्षेमचन्द्र सुमन, पृ० 145 ।

(च) हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, डा० गिरीश रस्तोगी, पृ० 67 ।

7-- हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, पृ० 200-221 ।

8-- देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० 67-69 चतुर्थ संस्करण ।

ने अपने शोध-प्रबन्ध की भूमिका में यह स्पष्ट करते हुए कि प्रबन्ध के अन्तर्गत देवमाया-प्रपंच आदि को नाटक सिद्ध किया गया है,[1] 'देवमाया-प्रपंच नाटक' का विवेचन करते हुए मात्र मिश्रबन्धुओं के मत का उल्लेख किया है।[2] डा० द्वारिका प्रसाद सक्सैना ने इस रचना को नाटक स्वीकार किया है।[3]

'देवमाया-प्रपंच नाटक' के सम्बन्ध में प्राप्त परस्पर विरोधी दृष्टि-कोण इसके काव्यरूप के सम्बन्ध में निर्णय की स्थिति तक नहीं पहुँचाते। प्रस्तुत कृति में नट-नटी, नान्दी, प्रस्तावना आदि के प्रयोग द्वारा नाटकीय नियमों के पालन का प्रयास लेखक ने किया है तथापि इस कृति को एक नाटकीय कृति बनाने में वह सफल न हो सका। इसका मुख्य कारण यही है कि उसके सम्मुख न तो कोई नाटक-परम्परा थी और न ही अनुकूल परिस्थितियाँ।

'देवमाया-प्रपंच नाटक' की कथा का सम्बन्ध 'देव' की 'माया' के विभिन्न 'प्रपंचों' के प्रदर्शन से है। मनुष्य में विद्यमान सद्-असद् प्रवृत्तियों में निरन्तर संघर्ष होता रहता है। मनुष्य के आन्तरिक जगत् का यह संघर्ष बाह्य जगत् में भी सर्वत्र व्याप्त है। सद्-असद् वृत्तियों के संघर्ष से पीड़ित व्यक्ति को शान्ति एवं सुख-लाभ के लिए असद् वृत्तियों का शमन करना अपेक्षित है। प्रस्तुत नाटक में असद् या अधर्म पक्ष की पराजय एवं सद् अथवा धर्म पक्ष की विजय को तदनुकूल पात्रों द्वारा कथा-रूप में संगठित किया गया है। संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है : --'पर-पुरुष' की दो पत्नियाँ हैं :'प्रकृति' और 'माया'। प्रकृति से 'बुद्धि' नामक पुत्री एवं माया से 'मन' नामक पुत्र उत्पन्न होता है। 'माया' अपने आकर्षण द्वारा 'पुरुष' और 'मन' को अपने वश में कर

1-- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० 10 ।

2-- वही, पृ० 368 ।

3-- हिन्दी के प्रतिनिधि कवि, डा० द्वारिका प्रसाद सक्सैना, पृ० 420, पंचम संस्करण ।

लेती है; 'प्रकृति' अपमानित हो कर वियुक्त हो जाती है। 'प्रकृति' की पुत्री 'बुद्धि' सबसे बिछुड़ जाती है। 'जनश्रुति' नामक स्त्री 'बुद्धि' को बन्धु बान्धवों से मिलाने का प्रयत्न करती है। 'जनश्रुति' जानती है कि 'सत्संगति' की सहायता से ही 'माया' का नाश एवं 'पुरुष' और 'मन' की मुक्ति सम्भव है। सफलत: वह 'बुद्धि' सहित सत्संगति के पास जाती है। वहाँ उसे बारह अन्य देवियाँ : 'तुष्टि'; 'करुणा'; 'क्षमा' आदि मिलती हैं। जब माया पक्ष वालों को 'जनश्रुति' द्वारा 'बुद्धि' को 'सत्संगति' से मिलाने का पता लगता है तो वे बहुत उत्पात करते हैं, ढोंगें हाँकते हैं। 'कलह' नामक पात्र सबको इस तथ्य से अवगत कराता है कि यदि 'बुद्धि' की सहायता 'सत्संगति' द्वारा की गई तो 'माया' का नाश निश्चित है। इन बातों से 'कलंक' आदि पात्र क्रोधित होकर उसकी निन्दा करते हैं एवं माया के बचाव का प्रयत्न करते हैं। दूसरी ओर 'सत्संगति' 'जनश्रुति' को कपट वेश में माया-नगरी के समाचार लाने के लिए भेजती है। 'जनश्रुति' योगिनी-वेश में माया-नगरी के धर्मों एवं पाखण्डों को देखती, समझती है। 'माया' 'मन' को युवराज बनाने की तैयारियों में संलग्न है। 'धूर्तराज' के साथ जनश्रुति माया के महल में पहुँच जाती है। जब 'मन' के अभिषेक करने का समय आता है तो 'शान्त देव' के दूत आकर 'मन' को सन्देश देते हैं। 'मन' पर इस संदेश का अनुकूल प्रभाव पड़ता देखकर 'माया' 'मन' को उसके उत्तरदायित्वों से अवगत कराती हुई समझाती है, एवं अपने अनुचरों को सेना-सजाने का आदेश देती है। राज्याभिषेक के उपरान्त सभी व्यक्ति मस्त हो जाते हैं। रात्रि में 'तर्क' छिप कर 'मन' के पास पहुँचता है एवं उसे 'माया' का साथ छोड़ने के लिए समझाता है। इसी समय 'जनश्रुति' भी वहाँ पहुँच जाती है। कुछ संकोच के पश्चात् 'मन' अपनी पत्नी 'दुर्वासना' और पुत्र 'अहंकार' को सोया छोड़ कर 'जनश्रुति' और 'तर्क' के साथ चल देता है। प्रात:काल जब 'माया' को 'मन' के चले जाने का पता लगता है तो वह उसके पुत्र 'अहंकार' को युवराज बना कर सेना सहित शान्तदेव एवं सत्संगति आदि से युद्ध करने पहुँचती है। युद्ध होता है, माया

पक्ष के सभी सैनिक हार जाते हैं तथा धराशायी हो जाते हैं। उनके नष्ट होते ही माया युद्ध-स्थल छोड़कर भाग जाती है। माया का इस प्रकार नाश होते ही 'मन' प्रसन्नतापूर्वक माता, पिता एवं बहन से मिलता है। अत: विवेक या सद्प्रवृत्तियों के कमजोर होते ही असद् प्रवृत्तियों का हावी होना एवं सद् प्रवृत्तियों के शक्तिशाली होते ही असद् प्रवृत्तियों का नष्ट हो जाना अर्थात् देवासुर संग्राम, धर्म-अधर्म का संघर्ष और धर्म की विजय पर आधृत यह कथानक अत्यन्त रोचक है।

कथावस्तु-संगठन

'देवमाया प्रपंच नाटक' को नाटकीय कृति के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास देव ने किया है। नट-नटी के वार्तालाप द्वारा नाटक को देखने की बात प्रारम्भ में ही कहलवाई गई है। गणेश-स्तुति, नट द्वारा मुख्य घटना को संकेत रूप में प्रस्तुत करवाकर, अंक-विभाजन, यत्र-तत्र प्रवेश-प्रस्थान आदि रंग-संकेत देकर कवि देव ने इसे नाटक रूप देना चाहा परन्तु अपने प्रयास में वे सफल न हो सके। कथा का अंक-विभाजन शास्त्रानुकूल नहीं है। 'देवमाया प्रपंच नाटक' के छठे अंक में अनेक दिनों की कथा है। यही नहीं, भारतीय आचार्यों द्वारा वर्जित युद्ध की फांकी प्रस्तुत की गई है। कथा का प्रारम्भ भी शास्त्रीय नियमानुकूल नहीं है। उदाहरणस्वरूप माया के घर का विलासितापूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है जो किसी भी प्रकार से नान्दी नहीं है। वैभव-वर्णन एवं शृंगार के प्रति विशेष आकर्षण रखने के कारण देव ये भूल गए कि वे शान्तरस सम्पन्न अर्थात् वैराग्यपरक नाटक की रचना कर रहे हैं। इस प्रकार नाटक के प्रारम्भ में ही शास्त्रानुमोदित नियमों का पालन नहीं हुआ। फलत: इस कृति में नान्दी का अभाव ही कहा जाएगा।

नान्दी के उपरान्त सूत्रधार के समान वेशवाले 'स्थापक' द्वारा काव्य की स्थापना का निर्देश आचार्यों ने किया है। 'स्थापना' के रूप में देवमाया प्रपंच नाटक में नट द्वारा सम्पूर्ण-कथा के संकेत रूप में प्रस्तुत दोहा भी 'स्थापना' का नाटकीय नियमों के प्रतिकूल होना सिद्ध करता है। प्रथम तो यह स्थापना

सूत्रधार के समान वेश वाले स्थापक द्वारा न कही जा कर उसी नट द्वारा कही गई है जो प्रारम्भ से ही कथा में उपस्थित है। दूसरे स्थापना के पश्चात् घटना-चक्र प्रारम्भ होने की अपेक्षा नट-नटी आपस में ही वार्तालाप रत दिखाई पड़ते हैं। नट-नटी के दीर्घ वार्तालाप के पश्चात् बुद्धि के प्रवेश द्वारा नाटक की कथा को प्रारम्भ करने का प्रयास किया गया है।

" यह कही चतुर रिझाइ मुखु मोरि कै मुसुक्याइ ।
नेपथ्य में तिहि काल विलखी नटी इक बाल ।।
विधुमुखी केस अराल गति विजित मत्त मराल ।
निधि-लाज राजकुमारि सुनासिका सुकुमारि ।।"[1]

बुद्धि को उपस्थित करने के उपरान्त कवि उसके रूप-सौन्दर्य एवं गुणों के वर्णन में निमग्न हो गया है। बुद्धि मौन रहती है। नटी उससे अनेक प्रश्न पूछती है। तभी जनश्रुति आकर बुद्धि का परिचय एवं इसकी दुखद अवस्था तक पहुँचने की समस्त कथा कहती है। घटना-चक्र के प्रारम्भ का यह रूप भी शास्त्रानुमोदित नहीं है ।

कथावस्तु का विभाजन कार्यावस्थाओं, अर्थप्रकृतियों एवं सन्धियों के आधार पर नहीं हुआ है। प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम नामक अवस्थाएँ क्रमबद्ध रूप में अप्राप्य हैं। कथा का प्रारम्भ में बुद्धि की वियोगावस्था से किया गया है। प्रारम्भ के पश्चात् प्रयत्न के स्थान पर प्राप्त्याशा नामक अवस्था है। जनश्रुति द्वारा बुद्धि के दु:ख दूर करने का उपाय बताये जाते ही विरोधी पात्र प्रकट होते हैं जो सम्पूर्ण द्वितीय अंक में छाए रहते हैं। उनकी शौर्यपूर्ण उक्तियाँ, माया की प्रकट शक्ति फल-प्राप्ति के प्रति सन्देह की सृष्टि करती है। इस प्रकार प्रारम्भ के पश्चात् प्रयत्न के स्थान पर प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है। प्राप्त्याशा के पश्चात् प्रयत्न नामक अवस्था है। जनश्रुति का बुद्धि सहित सत्संगति के आश्रय में पहुँचना, 12 देवियों सहित सत्संगति का मिलना

1-- देवमाया प्रपंच, नाटक, देव, अंक 1, पद्य 2021 ।

एवं सहायता का आश्वासन देना योगिनी वेश में जनश्रुति का माया नगरी में जाना और वहाँ के पाखण्डों एवं दर्शन शास्त्रों के संचालकों से स्वयं को बचाते हुए मन के महल में पहुँचना, मन को समझा कर माया से वियुक्त करना, विरोधी सैनिकों से युद्ध होना आदि घटनाएँ 'प्रयत्न' नामक कार्यावस्था है, जो कथानक के तृतीय, चतुर्थ, पंचम एवं अन्तिम के अधांश से अधिक में व्याप्त है। माया के सैनिकों के नष्ट होते ही 'नियताप्ति' नामक अवस्था आती है और उसी समय माया के युद्ध भूमि से पलायन करने पर, सबका परस्पर मिलन 'फलागम' नामक अवस्था है। अत: प्रारम्भ के पश्चात् प्राप्त्याशा, प्राप्त्याशा के उपरान्त प्रयत्न नामक अवस्था का सम्पूर्ण कथानक में छाए रहना, नियताप्ति एवं फलागम का त्वरित गति से उभरना शास्त्रीय दृष्टि से, कथा के फल-प्राप्ति की ओर उन्मुख कार्य-व्यापार के प्रतिकूल है।

कार्यावस्थाओं की सिद्धि में सहायक अर्थ-प्रकृतियाँ बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य भी नाटकीय नियमों के अनुकूल नहीं है। 'बीज नामक अर्थ-प्रकृति कथा मध्य से प्रारम्भ होने के कारण लुप्त है। बिन्दु नामक अर्थप्रकृति 'प्राप्त्याशा' नामक कार्यावस्था में प्राप्त होती है, जबकि वह 'प्रयत्न' में अपेक्षित समझी जाती है। 'पताका कथा-प्रारम्भ से कथा-समाप्ति के निकट तक विद्यमान है। 'प्रकरी' के रूप में अन्तिम अंक में प्राप्त तर्क एवं मन के परस्पर वार्तालाप को लिया जा सकता है। परन्तु यह भी नाटकीय नियमानुकूल नहीं है। आचार्य विश्वनाथ ने प्रसंगागत तथा एकदेशस्थित चरित्र को प्रकरी कहा है -- जैसे कुलपत्यंक में रावण और जटायु संवाद।[1] देवमाया प्रपंच नाटक तर्क मन को समझाने के लिए आता है एवं उसे अपने साथ ले जाने में सफल हो जाता है --

" मन माया तजि भजि चल्यौ तर्क जन स्त्रुति साथ।"[2]

1-- साहित्य दर्पण (विश्वनाथ), सं० शालग्राम शास्त्री, पृ० 183 ।

2-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 6, पद्य 110 ।

कार्य-सिद्धि हो जाने एवं पताका नायक (नायिका) के संलग्न होने के कारण प्रकरी अपने शुद्ध रूप में अप्राप्य है। अत: 'प्रकरी' का नियोजन भी नाटकीय नियमों के अनुकूल नहीं माना जाएगा। 'कार्य' नामक अर्थ प्रकृति प्रस्तुत नाटक में अप्राप्य है। 'कार्य' को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ का मत है, " जो प्रधान साध्य है, सब उपायों का आरम्भ जिसके लिए लिए किया गया है, जिसकी सिद्धि के लिए सब समापन (सामग्री) इकट्ठा हुआ है उसे 'कार्य' कहते हैं। जैसे रामचरित में रावण वध।"[1] देवमाया प्रपंच नाटक में समस्त प्रयत्न माया के नाश हेतु है परन्तु कथा के अन्त में "माया भजी प्रपंच लै, पंच-पंच लै पंच"[2] कहकर महाकवि देव ने 'कार्य' नामक अर्थ प्रकृति की अवहेलना की। जनश्रुति और सत्संगति आदि के प्रयत्न माया को पूर्णतया नष्ट करने के लिए थे परन्तु माया का नष्ट होने के स्थान पर पलायन करना 'कार्य' नामक अभीष्ट की सिद्धि न कर सका। अत: अर्थ-प्रकृतियों के नियोजन में भी नाटककार असफल रहा है।

पाँच कार्यावस्थाओं एवं पाँच अर्थ-प्रकृतियों को परस्पर जोड़ने वाली पाँच सन्धियाँ मानी जाती हैं। जो क्रमश: मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण हैं। क्योंकि कार्यावस्थाओं एवं अर्थ प्रकृतियों का नियोजन नाटकीय नियमों के अनुकूल नहीं हुआ अत: सन्धियों का नियमानुकूल होना सम्भव नहीं। 'प्रारम्भ' नामक अवस्था का 'बीज' नामक अर्थ-प्रकृति से होना मुख सन्धि के लिए अवस्था नहीं छोड़ता।

सारांशत: कथावस्तु का विभाजन भरत द्वारा अनुमोदित नियमों के अनुकूल नहीं है। वस्तुसंगठन में कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों एवं सन्धियों की

1-- साहित्य दर्पण (विश्वनाथ), सं० शालग्राम शास्त्री, पृ० 183।

2-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 6, पद्य 135।

व्यवस्था नाटकीय नियमों के अनुकूल नहीं है ।

इतिवृत्त के आधार पर 'देवमाया प्रपंच नाटक' की कथा उत्पाद्य है। प्रस्तुत कथा उत्पाद्य होने के साथ-साथ मनुष्य के भावना-जगत् की है, जो दर्शन का नहीं अनुभूति का विषय है। इन मनोवैज्ञानिक भावनाओं के संघर्ष को दृश्य रूप दे पाना सम्भव नहीं। इन भावनाओं को, जिनका अनुभव प्रत्येक मनुष्य करता है परन्तु वह उन्हें रूपाकार नहीं दे सकता। ये अशरीरी अरूप सुख-दुखात्मक भावनाएँ दृष्टि का विषय बनने में समर्थ नहीं ।

प्रधानता के आधार पर नाटक की कथा को आधिकारिक एवं प्रासंगिक दो भागों में विभाजित किया गया है। आलोच्य नाटक में पुरुष से सम्बन्धित कथा आधिकारिक है एवं जनश्रुति से सम्बन्धित कथा प्रासंगिक है। परन्तु प्रस्तुत नाटक में आधिकारिक कथा गौण एवं प्रासंगिक कथा प्रधान रूप से व्याप्त रही है। जनश्रुति कथा में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान है। आधिकारिक कथा को सूच्य रूप में वह प्रस्तुत करती है। नाटक में 'प्रयत्न' नामक कार्यावस्था क्योंकि अधिकांश में छाई रही है, और इसका प्रमुख पात्र जनश्रुति है, इस कारण आधिकारिक कथा के पात्र नाटक में उभर नहीं पाए। प्रासंगिक कथा के घटना-संगठन ने आधिकारिक कथा को अपने अधिकार में ले लिया जो नाटकानुकूल नहीं कहा जा सकता।

अपने मूल परिप्रेक्ष्य में नाटक का कथानक दृश्य होता है। दृश्य होते हुए भी, कथावस्तु-संगठन, अभि- अभीष्ट प्रभावान्विति के लिए नाटककार कथा के कुछ अंशों को सूच्य एवं कुछ को दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। देवमाया प्रपंच नाटक की कथा को देव ने भी दृश्य और सूच्य रूप में प्रस्तुत किया है। बुद्धि की वियोगावस्था से कथा-प्रारम्भ करके, बुद्धि के इस अवस्था तक पहुँचने की कथा को जनश्रुति

के माध्यम से सूच्य रूप में प्रस्तुत करवाया गया है। जनश्रुति के प्रयत्न, माया के पाखण्ड, दर्शन-वैभव, दोनों पक्षों के युद्ध आदि घटनाएँ दृश्य रूप में प्रस्तुत की गई हैं। नाटक में 'दृश्य' 'सूच्य' रूप में प्राप्त कथा का यह विभाजन आधिकारिक कथा को गौण एवं प्रासंगिक कथा को प्रधान बनाने में सहायक सिद्ध हुआ। जनश्रुति ही आद्यान्त कथा में छाई रहती है। प्रमुख पात्रों -- पुरुष, मन, प्रकृति आदि को उभरने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ। अत: कथा का दृश्य-सूच्य विभाजन भी प्रस्तुत कृति को नाटकीय दृष्टि से असफल बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

नेता

भारतीय आचार्यों द्वारा नाटक का दूसरा तत्व नेता या नायक है। इसी को फल-प्राप्ति होती है। नायक धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीर प्रशान्त चार प्रकार के माने गए हैं। इस सन्दर्भ में देवमाया प्रपंच नाटक का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट ही नहीं हो पाता कि नेता कौन है। कथानक का विवेचन करने पर पुरुष ही इसका नायक प्रतीत होता है क्योंकि समस्त क्रिया-व्यापार का मूल वही है और अन्त में फल-प्राप्ति भी उसे ही होती है। परन्तु इस कथानक को देवमाया प्रपंच में जिस ढंग से संगठित किया गया है उसमें जनश्रुति ही इसकी 'नेता' प्रतीत होती है। कथा को अग्रसर करने, फल-प्राप्ति कराने में सक्रिय रूप से संलग्न होने के कारण, समस्त कथानक पर छाये रहने के कारण, जनश्रुति ही नाटक का केन्द्र-बिन्दु दिखाई पड़ती है। जनश्रुति ही नट-नटी को पूर्व कथा का परिचय देती है, उसी की आवाज सुनकर विपदती पात्र क्रोधित होते हैं, वही बुद्धि को लेकर सत्संगति के पास जाती है एवं प्रार्थना करती है, माया-नगर में कपट वेश में पहुँच कर वहाँ के विभिन्न पाखण्डों का दर्शन करती है, चुपचाप मन के महल में प्रवेश कर उसे समझाने में सफल होती है। इसके बाद हुए युद्ध एवं पुरुष मन आदि के मिलन-समय वह अनुपस्थित होती है। अन्यथा समस्त घटना-चक्र उसी के सहारे घूमता है। इस प्रकार, पुरुष तो समस्या

का जन्मदाता मात्र है, समस्या का निवारण जनश्रुति करती है। वही कथा को फलप्राप्ति की ओर अग्रसर करती है। इस प्रकार 'देवमाया प्रपंच नाटक' को 'नेता' की दृष्टि से भी सफल नाटकीय कृति नहीं कहा जा सकता।

रस

नाटक में शृंगार अथवा वीर में से कोई एक रस अंगी रस एवं अन्य रस अंगरस अंगारस रूप में स्वीकृत किए गए हैं। 'देवमाया प्रपंच नाटक' का प्रधान रस शान्त है। शान्त रस की सिद्धि हेतु वीर रस की योजना की गई है। शृंगार आदि रसों को भी प्रश्रय दिया गया है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि शान्त रस को अंगी रस बना कर भी देवमाया प्रपंच नाटक में शान्त रस को प्रधान रूप में विद्यमान रहने का अवकाश नहीं मिला। इसका कारण वस्तु-संगठन की ~~अव्य~~ अव्यवस्था है। कथा प्रारम्भ में करुण रस, मध्य में वीर रस एवं शृंगार रस (जिसे शृंगाराभास कह सकते हैं) और अन्तिम अंक में शान्त रस की स्थिति स्पष्ट की गई है। कथा का लक्ष्य ही कुप्रवृत्तियों का शमन है, इस कारण शान्त स्थिति के अतिरिक्त अन्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। विभिन्न रसों की योजना होने के कारण शान्त रस पर अपेक्षित बल नहीं दिया गया है। फलत: रस की दृष्टि से भी 'देवमाया प्रपंच नाटक' सफल नाटकीय कृति नहीं कही जा सकती।

पात्रसृष्टि

पात्रसृष्टि अर्थात् कथानक में प्रयुक्त पात्र, उनका रूप, गुण एवं क्रियाएँ भी देवमाया प्रपंच नाटक को अनाटकीय सिद्ध करते हैं। आलोच्य कृति की कथा का आधार मन: प्रदेश की विभिन्न सद्-असद् भावनाएँ हैं। ये अशरीरी भावनाएँ पात्र रूप में प्रस्तुत की गई हैं। इन अशरीरी भावनाओं का रूप-विधान दुष्कर ही नहीं, असम्भव-सा है। मन: जगत् की ये भावनाएँ मात्र अनुभूति का विषय है जिन्हें रूपाकार देना कल्पना जगत् में ही सम्भव है। प्रस्तुत रचना में सत्तर से भी अधिक

पात्र हैं। देव ने इनके रूपाकार सम्बन्धी संकेत न देकर कृति को अभिनय के अनुपयुक्त सिद्ध किया है। कथा में प्रयुक्त एक नट एवं दो नटियों को छोड़ कर कुल पात्र हैं : सद्धर्मी पक्ष -- पुरुष, मन, जनश्रुति, बुद्धि, सत्संगति, चेतना, बारह देवियाँ, करुणा, दाया आदि, शान्तदेव, उनके चार मन्त्री, तर्क तथा शान्तदेव के सैनिक और अधर्मी पक्ष -- माया, कलि कलह कलंक, काम, क्रोध अपराध, लोभ, मोह, दंभ, छल, अनाचार, गर्व, दुर्व्यसन, व्यभिचार, अहंकार, धूर्तराज, वृथापुष्ट व्यभिचारिणी, दुर्वासना, आठ वर्णाश्रम दर्शन, सप्तशास्त्र सिद्ध, पाँच प्रपंच (मंत्र-जाल, तंत्र-जाल, जंत्र-जाल, इन्द्रजाल, वाग्जाल), दूत, क्षुधा, तृष्णा, कुमति, वितृप्ति, दुराशा, ईर्षा, शोक आदि। इन पात्रों को प्रदर्शन के स्तर पर लाना सम्भव नहीं, जबकि नाटककार इनके रूप के सन्दर्भ में मौन हैं। पात्रों की अधिक संख्या एवं उनकी रूप-विहीनता प्रस्तुत कृति को नाटक कहे जाने पर प्रश्नचिन्ह लगाती है ।

संवाद-योजना

'संवाद' नाटक की सफलता का प्रमुख आधार है। वस्तुत: नाटक का प्रत्येक पक्ष संवादों के माध्यम से ही उभरता है। संक्षिप्तता, रोचकता, मार्मिकता, प्रसंगानुकूलता, स्वाभाविकता, सुबोधता, पात्रानुकूलता, चरित्र-व्यंजकता एवं नाटक को गति प्रदान करने आदि गुणों से ~~सम्पन्न~~ सम्पन्न संवाद नाटक में स्वीकृत होते हैं। संवाद नाटक का प्राण है। देवमाया प्रपंच नाटक में प्राप्त संवाद-योजना भी नाटक के अनुरूप नहीं है। दीर्घ संवादों की भरमार है। जो कहीं-कहीं बोझिल प्रतीत होते हैं --- सत्संगति द्वारा दिया गया द्वादश देवियों का परिचय सुबोध, भाषा में न होने के कारण एवं प्रतीकात्मकता के कारण दुरूह-सा हो गया है।[1] ' मन ' के राज्याभिषेक के अवसर पर शान्त देव के दूत मन को उपदेश देते हैं।

1-- देव माया प्रपंच नाटक, देव, अंक 3, पद्य 34 से 56 तक ।

माया का सम्मान करते हुए वे उसकी स्पष्ट निन्दा करने लगते हैं जो अप्रासंगिक होने के कारण एवं औचित्य की सीमा न रहने के कारण अस्वाभाविक एवं अरुचिकर प्रतीत होते हैं।[1] कलि जब अपनी शक्ति, माया की शक्ति का वर्णन करता है, तो दीर्घ संवाद है। माया की शक्ति को अतुलित बताते, स्वयं को माया से भी अधिक शक्तिशाली समझने का कारण कलि माया को अपने मरोसे राज करने को कहता जो अनुचित है।[2] कलि माया का सेवक है, उसका सम्मान करता है, उसकी शक्ति से परिचित है अत: उसके मुंह से इस प्रकार का कथन अस्वाभाविक लगता है। यह कथन पात्रानुकूल नहीं है। इसके अतिरिक्त नाटक में प्राप्त संवादों का रूप वर्णनात्मक है। देव ने उन्हें वर्णनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है, यथा--

चतुरराई नटराई के निकट नटी नट आई ।
पूछत यह काको सुजसु अहो कहो तुम गाई ।।[3]

आश्चरज सों भरत सब रहे चतुर चितवाहि ।
को माया को पर पुरुष कहिए कथा निबाहि।।[4]

संवादों की दुरूहता भी द्रष्टव्य है। 'श्रद्धा' का कथन है --

कीन्हे अरंभ जुपै निर्दंभ ह्वै, दंभ अरंभ ते बुद्धि बचाई ।
तोर कहा जिय जोर निरारस, वा रस ही रसना न रचाई ।।
आठहु जाम नचै निहचै पर मैटि मनो वचकाय कचाई ।
देव जितै मुनि काम कहै, मुनिकाम बिना सरधा की सचाई ।।[5]

1-- देव माया प्रपंच नाटक, देव, अंक 6, पद्य 42 से 55 तक ।

2-- वही, अंक 2, पद्य 2 से 15 तक ।

3-- वही, अंक 1, पद्य 14 ।

4-- वही, अंक 1, पद्य 18 ।

5-- वही, अंक 3, पद्य 67 ।

तत्वचिंता का कथन--

को कहै बात घनी घिन की, नखतें सिख लौं जु प्रपंच रची है ।
अरु अगूढ़ ह्वैमूढ़ करै, जु निरंतर अंत निगूढ़ नची है ।
ताहि निहारत हारत हारत, आरत सुद्धि, न बुद्धि बची है ।
माया को अेक त्रिया है त्रिलोक में, बंचिबे ही को बिरंचि रची है।।[1]

इस प्रकार नाटक में 'दीर्घ, बोझिल, अप्रासंगिक, वर्णनात्मक, दुरूह एवं पात्र-प्रतिकूल संवादों की उपस्थिति कृति को नाटक कहने में बाधा उपस्थित करती है।

भाषा

भाषा-सौन्दर्य के प्रति विशेष रुचि के कारण देव प्रस्तुत कृति को अनेक स्थलों पर दुर्बोध, दुरूह, बोझिल बना देते हैं । 12 देवियों का परिचय देते समय भाषा भावों को पूर्णतया अभिव्यक्ति करने में सहज समर्थ नहीं है। पाठक को बहुत प्रयास करने पर ही भाव स्पष्ट होता है। यहाँ आचार्य शुक्ल के शब्दों का सहज स्मरण हो आता है कि भाषा-सौन्दर्य के फेर में पड़ कर वे भावों को कीचड़ में फँसा छकड़ा बना देते हैं ।'[2] उदाहरणतया स्मृति का परिचय प्रस्तुत है --

अंतर के नहीं अंत मिलि अंतरु के सु निरंतर धारै ।
ऊपर वाहि न ऊपर वाहित ऊपर बाहिर की गति चारै ।।
बातन हारि न बातन हारति हारति जीभ न बात न हारै ।
देव रँगी सुरत्यो सुरत्यो मनु देवर की सुरत्यो न बिसारै ।।[3]

इसी प्रकार अन्य देवियों का परिचय देते हुए भी देव ने भाषा-सौन्दर्य के फेर

1-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 3, पद्य 73 ।

2--हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृ० 266 संवत् 2003.

3-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 3, पद्य 53 ।

में पड़ कर भावों को धूमिल बना दिया है। इन 12 देवियों द्वारा दिए गए उपदेश भी इसी प्रकार जटिल, भाव-गुम्फित भाषा में अभिव्यक्त किए गए हैं।

स्मृति--

बाँधि विषै तर इन्द्रिय औघट, ध्यान के घाट की बाट सँवारौं।
माया जलौ हौं विगाहि भलौ, करि थाहि, थलौ उथलौ करि हारौं।।
काम से क्रोध से कच्छ अकच्छ के, लोभ से मोह से मच्छनिमारौं।
आनद को पद बूड़ि गयो, सु महानद के नद में ते निकारौं।।[1]

करुणा--

डेरो नित अनत बहेरो भयो, बूड़त सबेरो बाँधि बेरो के अबेरो
होत वारि को।
पेरो इन पाँचनि अनेरो मनु मेरो संग, फेरो घर चोरनि, अधेरो
डरु धारि को।।
घेरो अघ ओघनि घनेरो दुष्ट पै देव, मेरो कह्यो मानु, चेरो ह्वै
चुको मुरारि को।
कैयो ठौर ठेरो, कै बसायो वाहै खेरो, मेरो तेरो इहि पुर में
बसेरो दिन चारि को।।[2]

कहने की आवश्यकता नहीं कि देव इन देवियों के परिचय द्वारा भाषा-सम्बन्धी अपनी प्रतिभा को एवं उपदेश द्वारा जीवन के प्रति अपने दर्शन को अभिव्यक्त कर रहे थे। जहाँ कहीं भी उन्हें अवकाश मिला है, वे भाषा को सुन्दर रूप देने में लग गये। ऐसा वर्णनात्मक प्रसंगों में ही हुआ है --

12 देवियों का परिचय,[3] उपदेश,[4] सत्संगति का परिचय देते हुए[5]

1-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 3, पद्य 71।

2-- वही, अंक 3, पद्य 77।

3-- वही, अंक 3, पद्य 34 से 56 तक।

4-- वही, अंक 3, पद्य 62, 65 से 81।

5-- वही, अंक 3, पद्य 3।

माया के नगर[1] एवं घर का सौन्दर्य दर्शाते हुए,[2] बुद्धि के रूप[3] एवं गुण[4] का परिचय देते समय, हाथी,[5] तुरंग,[6] योद्धा[7] फूलना[8] आदि के वर्णन में लेखक ने अपनी जिस प्रवृत्ति का परिचय दिया है वह पाठ्य-कृति के मध्य तो स्वीकृत हो सकती है, परन्तु नाटक के क्षेत्र में नहीं। सम्भवत: अनेक काव्यों के रचयिता देव यह भूल गए थे कि वे नाट्य-रचना कर रहे हैं। वस्तुत: यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मनुष्य की मूलभूत भावनाएँ कभी दमित नहीं होतीं। देव, जो आजीवन भाषा-सौन्दर्य के फेर में पड़े रहे, भावों को दुर्बोध बनाते रहे, मानव-सौन्दर्य से इतर जिनकी दृष्टि नहीं गई, आश्रयदाताओं को पाने के लिए, उन्हें रिझाने में ही जिनका जीवन बीता, उन्होंने नाटक के क्षेत्र में, देवमाया प्रपंच नाटक को लेकर पदार्पण करने का प्रयास किया। देव के सम्मुख कोई साहित्यिक नाटक-परम्परा नहीं थी। कृष्ण मिश्र विरचित प्रबोध चन्द्रोदय संस्कृत नाटकों की ह्रासोन्मुख परम्परा की उत्पत्ति है-जिसकी अनेक घटनाएँ अनभिनेय हैं। ऐसे नाटक से प्रेरणा पाकर लोक-नाटकों से परिचित, सौन्दर्य-वर्णन के प्रति व्यक्तिगत कमजोरी से सम्पन्न देव कवि कृत देवमाया प्रपंच नाटक में नाटक के गुणों को ढूँढ़ पाना सहज नहीं। देवमाया प्रपंच नाटक द्वारा कवि ने अपनी जिस प्रतिभा का परिचय देना चाहा, उसमें वे सफल न हो सके, न ही साहित्यिक नाटकों के अभाव को भर सके।

1-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 4, पद्य 43-60 तक ।

(ख) वही, अंक 5, पद्य 1-6 ।

2-- (क) वही, अंक 1, पद्य 1 ।

(ख) वही, अंक 4, पद्य 66 । (ग) वही, अंक 5, पद्य 1-7 तक ।

3-- वही, अंक 1, पद्य 21 ।

4-- वही, अंक 1, पद्य 22, 38 ।

5-- वही, अंक 4, पद्य 62 ।

6-- वही, अंक 4, पद्य 63 ।

7-- वही, अंक 4, पद्य 64 ।

8-- वही, अंक 4, पद्य 61 ।

अन्तर्द्वन्द्व

द्वन्द्व अथवा संघर्ष को नाटक का प्राण माना जाता है यह द्वन्द्व चाहे भीतरी हो या बाहरी। प्रस्तुत नाटक यद्यपि द्वन्द्व के मध्य से जन्मा है तथापि इसमें द्वन्द्व का अभाव है। लेखक का अन्तर्द्वन्द्व प्रस्तुत कृति का प्रेरक तत्व है। परन्तु कृति में लेखक द्वन्द्व को स्थान नहीं दे पाया। 'बुद्धि' के भीतर द्वन्द्व नहीं है। जनश्रुति भी आन्तरिक द्वन्द्व से परे है। वह बुद्धि की मुक्ति का उपाय जानती है। सत्संगति सब कुछ करने में समर्थ हो। उसके भीतर भी द्वन्द्व नहीं है। 'पुरुष' एवं 'प्रकृति' पात्र रूप में उपस्थित ही रहे हैं। कलि, कलह आदि भी संघर्ष से अनभिज्ञ हैं। वे अपने अभिमान में ही मदमस्त हैं। माया असीम शक्तिशालिनी है। उसका काम द्वन्द्व में जीना नहीं, सबको अपने वश में करना है। मन उसका अनुगामी है। इस प्रकार पात्रों में आन्तरिक द्वन्द्व की सृष्टि नहीं की गई। बाह्य द्वन्द्व के रूप में माया एवं सत्संगति के सैनिकों का युद्ध है। युद्ध नाटक के क्षेत्र में वर्जित है। जिस प्रकार से 'देवमाया प्रपंच' नाटक में युद्ध को प्रस्तुत किया गया है, वह अभिनय योग्य भी नहीं है। इस प्रकार नाटक का मूलभूत कारण--द्वन्द्व इस नाटक में नहीं आ पाया जबकि मन:प्रदेश द्वन्द्व से मुक्त नहीं है। मन:प्रदेश की विभिन्न भावनाओं पर आधारित यह नाटक द्वन्द्व-शून्य ही है।

अनाटकीय प्रसंग

प्रस्तुत नाटक के अनेक प्रसंग अभिनय योग्य नहीं हैं। उदाहरणतया --

कलि की प्रवेश-सूचना--

पूजतु प्रेतनि ढाहि निकेतनि, तीरथ खेतनि खूंदतु आयौ ।
प्रीति लुठाइ प्रतीति उठाइ कै, ज्ञान गली गुन गूंदतु आयौ ।
संगति के मति जाति सुनी, सु जनश्रुति को मुखु मूंदतु आयौ ।
काल-कला विकराल महा तत्काल बली कलि कूदतु आयौ ।।'[1]

1-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 1, पद्य 73 ।

महाभयंकरु कालु, लालु भयौ रिस सौं भकुरि ।
स्याम अरुन विकरालु, संध्या घन गरजतु मनौ ।। [1]

सत्संगति के आश्रम में पहुँचती हुई जनश्रुति एवं बुद्धि का प्रसंग ---

ज्यौं ज्यौं आवतु जातु नीरे सत्संगति सदनु ।
त्यौं त्यौं होत प्रभात, फूलत बुधि वीरज वदनु ।। [2]

बुद्धि जनश्रुति उतरि रथ पैठी ग्रह अनुकूल ।
ग्रीषम प्यासो पथिक ज्यौं सीतल जल वन कूल ।। [3]

बुद्धि जनश्रुति एवं सत्संगति सम्बन्धित प्रसंग ---

बुद्धि जनश्रुति के सुनि बैन, अचानक चैनचिते दृगादु के ।
सीसु छुवाई, महा सुखु पाइ, के पाई गहे सतसंगति जू के ।
देवी उठाइ लई उर लाइ, संताप बुझाई सबै मतिहू के ।
नाचन देव मुनीस लगे, सु लगे मनौ माया के भीन भभूके ।। [4]

पुन्य पयोज प्रबुद्ध भए, जग सुद्ध भए सत्संगति जू के ।
देव दिवैकनि औकनि आनंद, सोक गए मिटि लोक तिहूं के ।
तीरथ खेत फले सुभ दैन, सबै सुख देत निकेत प्रभु के ।
कालु चरौ कलि के कुल ऊपर, माया के मीत मनौ मरि चूके ।। [5]

माया के नगर का दृश्य --

1-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 2, पद्य 2 ।
2-- वही, अंक 2, पद्य ४३ ।
3-- वही, अंक 2, पद्य ४० ।
4-- वही, अंक 3, पद्य 10 ।
5-- वही, अंक 3, पद्य 11 ।

माया नगर चहुँ पास । उपवननि बननि विकास ।
तरु लता ललित समूल । फूल फले फल फूल ।।
अलि कोकिला कुल सोर । बोल कपोती मोर ।
घन कुंज सीतल छांह । अंग पुज भरे उछाह ।।
सरसी सरोवर कूप । बाउरी कुंड अनूप ।
क्रीड़ा-महल कल रूप । तहँ, तहाँ उतरे भूप ।।
कहुँ फिरै तरल तुरंग । कहुँ बंधे मत्त मतंग ।
कहुँ करत मल्ल विनोद । माया नगर चहुँ कोद ।।
तहँ अनिष्ट चिन्ता नदी, विषय तरंग गंभीर ।
जहँ अज्ञात मोहादि नृप, कलहादिक मुनि भीर ।।
सघट घाट बहु वाटिका, नीरी तीरी छांह ।
पौरि निकट जोगिनि लसै, कैतिक मुनितिहि मांह ।।[1]

इसी तरह माया का गृह, तुरंग एवं गज की क्रियाएँ भी अनभिनेय हैं।

युद्ध से सम्बन्धित प्रसंग भी इसके नाटक कहे जाने पर प्रश्न-चिन्ह लगाते हैं ---

1: निकसि नगर तै सकल दल, परे नदी के कूल ।
धरनीधर व्याकुल भयो धसकति धरा समूल ।।
2: आई मिले सुर असुर नर, ब्रह्मा केसव रुद्र ।
पर्वत बन कंपन लगे, सूखन लगे समुद्र ।।[2]
3: आयो कोटि अनंत दल, धायो दसो दिसान ।
घिसी घिसी पिसि पिसि, फानि सों पर्वत होत पिसान ।।[3]

1-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव अंक 4, पद्य 43-48 तक ।

2-- वही, अंक 6, पद्य 80-81 ।

3-- वही, अंक 6, पद्य 118 ।

4: भजे षांड पाषंड सब गिरे साधक सिद्ध ।
मोहादिक के मूड लै नभ महराने गिद्ध ।।[1]

इसी प्रकार मन के शयन कक्ष का दृश्य भी अनाकर्षक है --
सोई जब दुर्वासना, महाराज के अंक ।
अहंकार को स्वाइ कै, भूपति भयो निसंक ।।[2]

तहां तर्क मुनि रूप ह्वै नृपहि मिल्यौ एकंत ।
मति सगति की सब कथा कही आदि तै अंत ।।[3]

इसी प्रकार अन्तिम मिलन का दृश्य --
छुटि गए गुन सगुन के, निर्गुन रह्यौ निदान ।
जय जय जय तिहुं पुर भयो, थापे वेद पुरान ।।
निर्मल ह्वै मन को मिली द्वादश देवी तेव ।
मनहि सहित मिलि प्रकृति मति पूजै मानत देव ।
ते अब पुरुष पुरान को, मिले अभीत अभेव ।
भए सच्चिदानंदमय सतसंगति की सेव ।।[4]

उद्देश्य

आर्थिक एवं मानसिक कष्टों से आजीवन जूझते देव को जीवन के उत्तरार्ध में यह अनुभूति हुई कि इन्द्रियजन्य सुख-विलास व्यर्थ है। मनुष्य को स्थायी सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए इनसे दूर रहना होगा। पूर्व कर्मों के प्रति

1-- देवमाया प्रपंच नाटक, देव, अंक 6, पद्य 134 ।
2-- वही, अंक 6, पद्य 84 ।
3-- वही, अंक 6, पद्य 86 ।
4-- वही, अंक 6, पद्य 136-138 तक ।

पश्चाताप की भावना भी कवि में आ चुकी थी। अपनी इन्हीं भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए देव ने इस रूपक-कथा को भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और मनुष्य को यह सन्देश दिया कि यदि वह चारित्रिक रूप से दृढ़ रहे तो माया के आकर्षणों से बच सकता है, अन्यथा वह इनमें उलझ जाएगा। इनसे मुक्त होने के लिए उसे दूसरे के सहयोग की ही अपेक्षा नहीं होगी वरन् स्वयं से भी जूझना पड़ेगा।

प्रस्तुत उद्देश्य को नाटक रूप में प्रस्तुत करते हुए (मन को एक पात्र बनाते हुए) कवि यह भूल गया कि मन एक पात्र है, जो नाटक ~~के रूप~~ में प्रस्तुत किया जा रहा है, न कि आन्तरिक भावना मात्र। 'मन' को भाव-मात्र सिद्ध करके कवि ने कृति के मध्य ही नाटक का गला घोंट दिया -- योगयुक्ति ने जनश्रुति से मन का हाल जानना चाहा। उत्तर में जनश्रुति कहती है --

"रूप को रसिक रस लँपट परसु लोभी - - - ।
माने न अनेरो मन मेरो बहुतेरो कह्यो ।"[1]

'मन मेरो' कह कर वह मन की बाह्य उपस्थिति को समाप्त कर देती है। नाटक के मध्य में नाटककार ने अभी जनश्रुति को मन से मिलाया भी नहीं है। इस प्रकार, नाटक लिखने का देव का यह प्रयास नाटक बन कर ही रह गया है। इसके अतिरिक्त देवमाया प्रपंच नाटक में उद्देश्य के विपरीत लेखक माया के आकर्षण एवं विभिन्न प्रपंचों के वर्णन में ही लगा रहा और इन्द्रिय सुखों की बात ही दोहराता है। चतुर्थ एवं पंचम अंक इन्हीं प्रसंगों से सम्बन्धित हैं। द्वितीय अंक में माया के सैनिकों की गर्वोक्तियाँ एवं माया की शक्ति वर्णित है। प्रथम अंक में भी माया के प्रबल आकर्षणों का ही वर्णन है। इस प्रकार नाटक के छः अंकों में तीन तो पूर्णतया माया पक्ष से सम्बन्धित हैं, प्रथम एवं छठे अंक का भी अधिकांश माया-पक्ष से सम्बन्धित है। मात्र तृतीय अंक सद्धर्म-पक्ष सत्संगति, 12 देवियों, उनके उपदेश

1-- देवमाया प्रपंच, नाटक, देव, अंक 3, पद्य 61 ।

शान्तदेव आदि से सम्बन्धित हैं । उद्देश्य के अनुरूप कृतिकार कथा को नाटक रूप में प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा ।

(घ) निष्कर्ष

रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि व्यास शिष्य देव कृत 'देवमाया प्रपंच नाटक' का विश्लेषण करने के उपरान्त यह सिद्ध हो जाता है कि प्रस्तुत कृति नाटक नहीं है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा मान्य नियमों का पालन इस कृति में नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे दोष इस कृति में विद्यमान हैं जो इसे अनाटकीय सिद्ध करते हैं। कथावस्तु-संगठन कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों एवं सन्धियों के अनुरूप नहीं है। कथा का विकास नाटकीय नियमों के प्रतिकूल है। कथानक का दृश्य-सूच्य विभाजन प्रासंगिक कथा को प्रधान एवं प्रधान कथा को गौण बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। अभिप्राय यह है कि प्रस्तुत कृति को नाटक बनाने के फेर में पड़ कर देव ने नाटकीय-नियमों के पालन का जो प्रयास किया है, वही इस कृति को असफल नाटकीय कृति बनाने में सहायक हुआ। कथानक मन: प्रदेश की सद्-असद् वृत्तियों पर आधारित है। जिन्हें पात्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन सभी को रूपाकार दे पाना सम्भव नहीं और कृतिकार इस सन्दर्भ में मौन है। कथावस्तु का विभाजन कार्यावस्थाओं आदि के अनुरूप न होने के कारण 'देवमाया प्रपंच नाटक' प्रधान पात्र अर्थात् नेता के सन्दर्भ में भी नाटकीय दृष्टि से असफल रहा है। कथा-नायक अर्थात् पुरुष समस्या का जन्मदाता एवं फल का उपभोक्ता मात्र है। कथा को आगे ले जाने अर्थात् फल-प्राप्ति की ओर अग्रसर करने

की समस्त क्रिया प्रासंगिक कथा के प्रधान पात्र द्वारा सम्पन्न की जाती है। चूँकि 'प्रयत्न' नामक अवस्था कथानक में आद्यन्त व्याप्त है और यह सारा प्रयत्न जनश्रुति द्वारा ही प्रचालित हुआ है, इस कारण कथा में वही प्रधान हो उठी है। कथा के अन्त में -- परस्पर मिलन के समय --- कथानायक (?) अर्थात् पुरुष उपस्थित होता है और इसी स्थल पर जनश्रुति अनुपस्थित है। अन्यथा सम्पूर्ण कथानक में जनश्रुति छाई हुई है। फलत: नेता-सम्बन्धी नियम-पालन में भी प्रस्तुत कृति सफल नहीं हुई है। 'देवमाया प्रपंच नाटक' में शान्त-रस को प्रधान बनाया गया है। शान्त-रस की सिद्धि हेतु विभिन्न रसों -- वीर, शृंगार आदि की योजना की गई है। परन्तु कथा-विकास सन्तुलित न होने के कारण शान्त रस पर अपेक्षित बल नहीं दिया जा सका। कृतिकार अन्य रसों की योजना में ही अधिक उलझा रहा है। 'नेता' एवं 'रस' के स्पष्टत: उभर न पाने का कारण वस्तु का नाटकीय दृष्टि से सुसंगठित न होना है ।

इसके अतिरिक्त कृति में संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व को भी स्थान नहीं मिला है। 'देवमाया प्रपंच नाटक' की उत्पत्ति का आधार सद्-असद् वृत्तियों का द्वन्द्व है तथापि पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व अथवा बाह्य संघर्ष को नाटककार इस कृति में उभार नहीं पाया। इस दृष्टि से भी यह कृति, नाटकीय-कृति नहीं कही जा सकती। संवाद-योजना स्वाभाविक, रोचक एवं मार्मिक आदि गुणों से युक्त होने के स्थान पर दुरूह है। संवाद पात्रानुकूल भी नहीं है। वे बोझिल होने के साथ-साथ अप्रासंगिक भी हैं। संवाद-योजना के अतिरिक्त अनेक घटनाएँ एवं प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें अभिनीत नहीं किया जा सकता। पात्र-सृष्टि करते हुए भी कृतिकार ने यह ध्यान नहीं रखा कि वह नाटक-रचना कर रहा है। नाटक में प्रयुक्त पात्रों की संख्या तथा उनका अशरीरी होना भी कृति की नाटकीयता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। देव ने पात्रों के रूप-सम्बन्धी संकेतों के प्रति उपेक्षा बरती है। इन स्तर से भी अधिक अशरीरी पात्रों को रूप प्रदान करके दृश्य-स्तर पर लाना

सम्भव नहीं। 'देवमाया प्रपंच नाटक' में देव ने 'मन' नामक मुख्य पात्र को मन की भावना मात्र बता कर कथा के मध्य ही उसकी हत्या कर दी है। नाटक के क्षेत्र में देव की यह भूल अमान्य ही नहीं, असहनीय भी है। भाषा की दृष्टि से विचार करने पर भी देवमाया प्रपंच को नाटक नहीं कहा जा सकता। अलंकृत भाषा ने प्रसंगों को अभिनय के अनुपयुक्त, दुरूह, बोझिल एवं अस्वाभाविक बना दिया है। रूप, गुण, वैभव आदि के वर्णनों में कवि की रुचि अत्यधिक रमी है और इन्हीं स्थलों पर वह भाषा-सौन्दर्य के मोह में उलझा है। कवि की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति ने प्रस्तुत कृति को नाटक के क्षेत्र से वियुक्त करने में योग दिया है एवं इसे अनाटकीय बनाया है। फलत: नाटक के प्रतिकूल गुणों से युक्त यह रचना नाटक नहीं मानी जा सकती। महाकवि देव ने नट-नटी के प्रयोग द्वारा, प्रवेश-प्रस्थान सूचना, यत्किंचित अभिनय-संकेत एवं कथा के दृश्य-सूच्य विभाजन द्वारा देवमाया प्रपंच को नाटक बनाने का प्रयास अवश्य किया परन्तु वह इसे सफल नाटकीय कृति न बना सका। कथावस्तु-संगठन का अव्यवस्थित होना, नेता का गौण होना, रस का पूर्ण परिपाक न हो पाना, अत्यधिक पात्र-संख्या, अशरीरी पात्र, पात्रों के रूप-निर्देशन का अभाव, संवाद-योजना की प्रतिकूलता, अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व का अभाव, अनाटकीय प्रसंगों तथा भाषा-सौन्दर्य के प्रति कवि की विशेष आग्रह आदि ने मिलकर 'देवमाया प्रपंच नाटक' को नाटकीय कृति न बनने दिया। फलत: यह कहना कि 'देवमाया प्रपंच नाटक' नाटक नहीं है, अनुचित न होगा। ~~अथवा इसे तो तब सभी दृश्य-श्रव्य कह सकते हैं, परन्तु नाटक नहीं~~।

पंचम अध्याय

उ प सं हा र

उ प सं हा र

सामूहिक सहयोग पर आधारित, विभिन्न कलाओं का समुच्चय, पंचम वेद की संज्ञा से विभूषित 'नाटक' साहित्य की सर्वाधिक रमणीय विधा है। ~~स्पन्दुम~~ सामूहिक रूप से आस्वाद्य होने पर भी प्रभावान्विति रसानुभूति द्वारा मनुष्य को कुछ क्षणों के लिए मोह से काट कर अलग इकाई बना देती है। नाटक के प्रति नैसर्गिक आकर्षण में बंधे मनुष्य ने हर युग में इसका आस्वादन करना चाहा है और किया भी है। हिन्दी साहित्य का मध्यकाल इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अभिव्यक्ति कभी अवरुद्ध नहीं होती, परिस्थिति के अनुरूप रूप या दिशा बदल लेती है। संस्कृत नाटकों की ~~प्रम~~ दायशील परम्परा हिन्दी को विरासत में मिली। मुगल-साम्राज्य, ~~कल्प~~ कलाकार की हीन अवस्था, पर्दाप्रथा, शान्तिमय वातावरण का अभाव, रंगशालाओं का अभाव, भाग्यवादिता की भावना आदि अनेक कारण हिन्दी नाटक के विकास में बाधक बने। अभिप्राय: यह है कि संस्कृत नाटक की समृद्ध परम्परा को ह्रासोन्मुख बनाने में सहायक परिस्थितियों ने हिन्दी नाटक का विकास साहित्यिक रूप में न होने दिया। दृश्य-काव्य के नैसर्गिक आकर्षण से लोक-नाट्यों का विकास हुआ। नाटक के प्रति विद्यमान ललक ने लोक नाट्यों का रूप धारण कर स्वयं को सन्तुष्ट किया।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल (सन् 1350से 1850 तक) में नाटक के रूप में जिन कृतियों का उल्लेख किया जाता है उनमें मिथिला, नेपाल, उत्तरी भारत में प्राप्त विभिन्न लोक नाटकों को भाषा-नाटक की संज्ञा देकर एवं अन्य ब्रज-भाषा नाटकों को साहित्यिक नाटकों के रूप में स्थान दिया जाता है। भाषा-नाटकों में हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत, मैथिली आदि भाषाएँ भी व्यवहृत हुई हैं। ये नाटक लोक-नाटकों के रूप में ही हैं। इनके नाम के साथ

भुमुरा, यात्रा, संवाद, नाट, नाटिका, व्यायोग, उपाख्यान आदि विशेषण भी इन्हें लोक-नाटक सूचित करते हैं। ब्रजभाषा में सम्बन्धित लोक नाटकों में प्राय: लीला, ख्याल आदि नामों का व्यवहार किया गया है। इन लोकनाटकों के अतिरिक्त जिन कृतियों का साहित्यिक नाटकों के रूप में उल्लेख किया जाता है, वे प्राय: नाटक नामधारी रचनाएँ मात्र हैं। इन रचनाओं का हिन्दी-नाटक कोश में उल्लिखित किया जाना अजीब उलझनपूर्ण स्थिति को जन्म देता है। इस अवधि में स्वाँग, लीला, यात्रा, नौटंकी आदि लोक-नाटकों के रूप में नाट्य परम्परा जीवित रही, परन्तु साहित्यिक नाटकों के रूप में प्राप्त प्राणचन्द चौहान कृत रामायण महानाटक, हृदयराम भल्ला कृत हनुमन्नाटक, उदयकवि कृत रामकरुणाकर एवं हनुमन्नाटक, गुरु गोबिन्द सिंह कृत विचित्र नाटक, बनारसी दास जैन कृत समयसार नाटक, रघुराम नागर कृत सभासार नाटक, महाकवि देव कृत देवमाया-प्रपंच नाटक प्रभृति कुछ ऐसी कृतियाँ हैं जो नाटक कही जा कर भी 'नाटक' नहीं हैं। नाटक-विरोधी राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ, नाट्य-चिन्तन का अभाव, नाटक-परम्परा का न होना, लोक-नाट्यों का प्रभाव आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिन्होंने नाटक के स्वाभाविक सौन्दर्य से बंधे कलाकार को नाटकों का अभाव दूर करने के लिए विवश तो किया परन्तु नाटक के लिए अपेक्षित गुणों से उन्हें अनभिज्ञ रखा। नेपथ्य में नाटक की जो गूँज विद्यमान थी, उसने कृतिकारों को अपनी अनाटकीय कृतियों को नाटक नाम देने को बाध्य किया और जिन रचनाओं को उनके लेखकों ने नाटक कहने का दु:साहस नहीं किया, उन्हें जनसामान्य ने नाटक कहने में संकोच नहीं किया।

हृदयराम भल्ला कृत हनुमन्नाटक, एक मात्र ऐसी कृति है जिसे लेखक के दृष्टिकोण की अवहेलना करके, नाटक-साहित्य में स्थान ~~में स्थान~~ दिया गया। 'हनुमान नाटक' का वास्तविक नाम 'रामगीत' है। कृतिकार ने अपनी कृति का सृजन, मानसिक एवं शारीरिक संताप को दूर करने के लिए, सुनने-सुनाने हेतु किया, प्रदर्शन के लिए नहीं। कृति में अनेक बार कथा को ध्यान से सुनने एवं

कथा कहने की बात दोहराई गई है। कृति के नाम की चर्चा हृदयराम ने प्रत्येक अंक के अन्त में ही नहीं वरन् कथा के मध्य भी की है। प्रस्तुत कृति की विभिन्न हस्तलिखित एवं मुद्रित प्रतियों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि रामगीत के स्थान पर हनुमन्नाटक अथवा हनुमान नाटक नाम का प्रयोग एकाएक ही नहीं वरन् धीरे-धीरे हुआ है। उदाहरणतया सेन्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला में क्रम संख्या 437 पर प्राप्त संवत् 1840 की गुरुमुखी लिपि की प्रति के अनुसार अन्तिम पुष्पिका कुछ इस प्रकार है --- इति श्री रामगीते रावण अवहि नाम चौदहवों अंक समाप्तम् ।। 14।। इतिश्री हनुमान नाटक सम्पूर्णम् ।" संवत् 1944 की हस्तलिखित देवनागरी लिपि की प्रति के अनुसार अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है --- " इति श्री कविवर हृदयराम कवि विरचिते भाषा हनुमन्नाटके श्री रघुनाथ राज्याभिषेको नाम चतुर्दशोऽङ्क: ।।" यह प्रति प्रतापगढ़ में उपलब्ध है। प्रकाशित गुरुमुखी लिपि की प्रति में 'इति श्री राम रामगीते हनुमान नाटक चौदहमों अंक सम्पूर्णम् ।।" गुरुमुखी लिपि की सटीक प्रति में पुष्पिका की टीका प्रस्तुत करते हुए टीकाकार ने 'रामगीत' के स्थान पर 'हनुमान नाटक' का ही व्यवहार किया है। गुरुमुखी लिपि से देवनागरी लिपि में प्रकाशित प्रति की अन्तिम पुष्पिका में 'भाषा हनुमन्नाटके' नाम ही व्यवहृत है, 'रामगीत' नाम लुप्त हो गया है। हनुमन्नाटक या हनुमान नाटक नाम का यह क्रमिक प्रयोग जन-सामान्य में कृति की इस नाम से प्रसिद्धि का द्योतक है। सन्तोष इसी बात का है कि प्रतिलिपिकारों या सम्पादकों ने कृति के प्रारम्भ अथवा अन्त में हनुमान नाटक या हनुमन्नाटक नाम का व्यवहार किया कृति के मध्य प्राप्त अन्य अंकों की अन्तिम पुष्पिकाओं में 'रामगीत' का ही प्रयोग हुआ है। पंडित योगी शिवनाथ जी ने भी पुष्पिकाओं की टीका करते समय मूल में प्राप्त 'रामगीते' के स्थान पर 'हनुमान नाटक' नाम का ही प्रयोग किया है। प्रथम व चतुर्थ अंक की मूल पुष्पिकाओं का उल्लेख भी नहीं किया गया है। कृति का वास्तविक नाम जिस प्रकार लुप्तप्राय: है, उसे देखते हुए रचना के मध्य में 'रामगीत' शब्द का रहना असम्भव प्रतीत नहीं होता। परन्तु प्रस्तुत रचना के साथ मनमानी किए

जाने पर भी इसका नाम लुप्त नहीं हो सकता क्योंकि अनेक अंकों के मध्य हृदयराम ने कृति के नाम की घोषणा करके उसे सुरक्षा प्रदान की है। कृति का वास्तविक नाम 'रामगीत' है, 'हनुमन्नाटक' या 'हनुमान नाटक' नाम ~~पश्चात~~ पाश्चात्यवर्ती पश्चाद्वर्ती सहृदय विद्वानों की देन है।

हिन्दी-नाटक-कोश में दिया गया प्रस्तुत नाटक (?) का परिचय अपूर्ण ही नहीं, असत्य भी है। प्रथम उल्लेखनीय बात यह है कि प्रस्तुत कृति नाटक नहीं है। यद्यपि कथानक अंकों में विभाजित किया गया है तथापि कथा का अंक-विभाजन शास्त्रानुकूल नहीं है। कथा को अंकों में विभाजित करना मात्र ही नाटक की कसौटी नहीं है। दूसरे, भारतीय अथवा पाश्चात्य नाटकीय नियमों का पालन भी इस कृति में नहीं किया गया। इसका प्रमुख कारण यही है कि रामगीत का सृजन सुनने-सुनाने के लिए हुआ है। कथा के सभी अंश वर्णनात्मक हैं। यद्यपि बीच-बीच में संवादों की योजना भी की गई है, तथापि लेखक ने कथा के सुनने की बात कह कर, उन्हें दृश्य के क्षेत्र से अलग कर दिया है। कृति के वास्तविक नाम से अनभिज्ञ विद्वानों ने वर्णनात्मक प्रसंगों, कवि की उपस्थिति को देखकर इसे स्वांग शैली का नाटक कहने का प्रयास किया। वस्तुत: कृतिकार का दृष्टिकोण राम-कथा का पुनर्सृजन उसके प्रदर्शन निमित्त नहीं था। मंच-सज्जा, वेश-भूषा, प्रवेश-प्रस्थान आदि नाट्य के मूल संकेतों का भी इस कृति में अभाव है। प्रतिवर्ष राम-कथा का मंचन देखने के अभ्यस्त दर्शक एवं पाठक यदि पूर्वाग्रह-विहीन होकर इस कृति का मंचन की दृष्टि से मूल्यांकन करें तो अनेक घटनाएँ असंगमंचीय प्रतीत होंगी। यथा--शूर्पणखा का आकार एवं रूप परिवर्तन करना; जटायु, हनुमान, सुग्रीव आदि का मनुष्य रूप में वार्तालाप करना; सागर का हाथ जोड़कर प्रकट होना; सप्ततालछेदन; लंका-दहन; सेतु-बंधन; हनुमान का आकाश मार्ग से पर्वतसहित गमन; भरत-शर-विद्ध होकर हनुमान का बादल-सदृश फट कर भूमि पर गिर पड़ना; भरत द्वारा पर्वतसहित हनुमान को तीर पर बैठा कर युद्ध-स्थल तक पहुँचा देना आदि। कथा दीर्घ अवधि की है एवं अनेक घटनाओं से युक्त है। वस्तुत: हृदयराम भल्ला ने 'तन-ताप मिटाने' के लिए राम-कथा का 'यथामति वर्णन' किया है।

बार-बार 'सन्त सुनो मन लाय' 'सन्त सुनो दे कान' आदि कह कर भी दृष्टि-सापेक्षता अर्थात् प्रदर्शन-सम्बन्धी पक्ष को नकारा गया है। पात्र-परिचय देते हुए हिन्दी-नाटक-कोशकार ने बाईस पुरुष पात्रों एवं छः स्त्री पात्रों का उल्लेख किया है। कथा में प्रयुक्त पात्रों की संख्या इनसे कहीं अधिक है। इसके अतिरिक्त जटायु नामक गीध, हनुमान, अंगद, सुग्रीव, बाली नामक वानर एवं वानर-सेना भी कथा-विकास में सर्वथा उपेक्षणीय नहीं हैं। घटना-स्थल का परिचय देते हुए अयोध्या, विश्वामित्र का आश्रम, जनकपुरी, स्वयंवर-सभा का नामोल्लेख यह प्रकट करता है कि कथा सीता-स्वयंवर के उपरान्त समाप्त हो जाती है। जबकि स्वयंवरोपरान्त मार्ग में परशुराम-राम-संवाद, कैकेयी-कोप-भवन, का अगस्त्य मुनि का आश्रम, पर्णकुटी, सप्तताल भेदन, सेतुबंधन, लंका, अशोक वाटिका, रावण का सभा-कक्ष, युद्ध-स्थल आदि घटना-स्थल कथा-पूर्ति के लिए आवश्यक हैं। इन सबके अतिरिक्त भाषा का अलंकारिक प्रयोग भी कृति को श्रव्य सिद्ध करते हैं।

(हनुमान नाटक) रामगीत के अतिरिक्त हृदयराम भल्ला की दो अन्य कृतियाँ 'रुक्मिणी मंगल' एवं 'सुदामा-चरित' भी प्रस्तुत शोध-कार्य करते हुए उपलब्ध हुई हैं, जिन्हें पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं द्वारा अनुपलब्ध कहा गया था। विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान होशियारपुर में 'रुक्मिणी मंगल' की हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। यह प्रति देवनागरी लिपि में है, एवं अपूर्ण है। 60 से 104 तक के छन्द अनुपलब्ध हैं, जिस कारण कथा-सूत्र टूट जाता है। कथा का सम्बन्ध रुक्मिणी एवं कृष्ण के विवाह से है। हृदयराम भल्ला कृत सुदामा चरित, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पाण्डुलिपि-विभाग में उपलब्ध है। यह कृति 'कैथी-लिपि' में उपलब्ध है, देवनागरी लिपि में नहीं। प्रति पूर्ण है। इसमें कुल 20 पृष्ठ हैं। कुल छंद-संख्या 54 है। कृष्ण-सुदामा के प्रचलित कथानक को कथा का आधार बनाया गया है। रुक्मिणी-मंगल एवं सुदामा-चरित भाव एवं भाषा की दृष्टि से रामगीत (हनुमान नाटक) से पूर्व की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। भाव-

-गाम्भीर्य, भाषा-सौन्दर्य का जो रूप रामगीत में दृष्टिगोचर होता है वह इन दोनों रचनाओं में अप्राप्य है। इसके अतिरिक्त रामगीत (हनुमान नाटक) में हृदयराम ने महाकवि सूरदास के समान 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै' सदृश भाव व्यक्त करके भी इस कृति के पाश्चात्यवर्ती /पश्चाद्वर्ती होने का संकेत दिया है। राम के प्रति जैसी एकनिष्ठता रामगीत में व्यक्त की गई है वैसी अनन्य निष्ठा रुक्मिणी-मंगल एवं सुदामा-चरित्र में प्राप्त नहीं होती। रामगीत में एक शरण व्रत होय जप तप नेम सबै रहौ' कहने के उपरान्त अन्य देवता की आराधना करना भी असंगत-सा प्रतीत होता है। अत: यह कहना असंगत नहीं होगा कि रुक्मिणी-मंगल एवं सुदामा-चरित्र रामगीत से पूर्व की रचनाएँ हैं।

रामगीत, रुक्मिणी-मंगल एवं सुदामाचरित्र के रचयिता हृदयराम भल्ला का जीवन-चरित्र अंधकारमय है। उनके सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियाँ सत्य नहीं हैं- प्रथम यह कि 'जहाँगीर ने उन्हें श्वेत-गृह में कैद किया था वहाँ नेत्रहीन हो जाते' -- इतिहास-ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित नहीं होता और यह कहना कि उस 'श्वेत गृह में कवि ने रामगीत की रचना की, हनुमान जी अपने उपासक को केले के पत्ते दे जाते थे, वह जैसे हनुमान जी से रामकथा सुनता उसी तरह छन्दोबद्ध कर देता,' किसी भक्त-हृदय की अतिश्रद्धा की उपज ही है। हृदयराम ने रचना में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दिया। कृति में प्राप्त अनेक उक्तियाँ उक्त जनश्रुति को असत्य प्रमाणित करती हैं। सन्त-समाज से बार-बार कथा सुनने का आग्रह करना यह सिद्ध करता है कि कवि के सम्मुख श्रोता-समाज था। बन्दीजनों को हृदयराम का सन्त, सुजान आदि सम्बोधन देना सम्भव नहीं। दूसरे, बन्दीगृह और उसमें भी श्वेत-गृह की यातनाओं से पीड़ित व्यक्ति आत्म-भर्त्सना तो कर सकता है परन्तु आत्म-प्रशंसा नहीं। ऐसी स्थिति में हृदयराम का स्वयं को 'सुकवि राम हिरदै कहै' के अतिरिक्त "कृष्णदास तनु कुल प्रकाश जग-दीपक रच्छक" कहना युक्तिसंगत नहीं लगता। राम-कथा की भावाभिभूत अभिव्यक्ति मुक्त-हृदय की वाणी प्रतीत होती है, शोकाकुल बन्दीजन की नहीं। दूसरे, हृदयराम के गुरु अर्जुन देव के साले होने की बात भी विद्वानों ने की है, परन्तु यह तथ्य भी

प्रमाणित नहीं हो सका। इस स्थापना का आधार गुरु अर्जुन देव की पत्नी गंगा देवी के पिता एवं हृदयराम भल्ला के पिता का नाम समान होना कहा गया है। परन्तु शोध के परिणामस्वरूप गंगा देवी के पिता का नाम 'कृष्णचन्द,' 'कृष्णचन्द खतरी' एवं 'खतरी संगतराई' प्राप्त हुआ है। हृदय राम ने अपने पिता का नाम 'कृष्ण दास' बताया है, 'कृष्ण चन्द' नहीं। गंगा देवी के सम्बन्ध में प्राप्त विवरण उसके भाई अथवा परिवार की कोई सूचना नहीं देते। गुरु अर्जुन देव के वध की पुष्टि 'जहांगीर नामा' के अतिरिक्त अन्य इतिहास ग्रन्थ भी करते हैं। अगर हृदय राम को वास्तव में श्वेत गृह में बन्दी करके नेत्रहीन हो जाने की कहीं सजा दी गई होती और वे गुरु अर्जुन देव के साले होते, जिनकी कृति की पंजाब में धूम था, तो इतिहास-ग्रन्थ अथवा विवरण इतिहास से सम्बन्धित कोई पुस्तक इस तथ्य का समर्थन अवश्य करती ।

गुरु गोबिन्द सिंह कृत विचित्र-नाटक हिन्दी के मध्यकालीन नाटक-साहित्य में उल्लिखित महत्वपूर्ण कृति है। यह कृति इस कारण महत्वपूर्ण नहीं है कि यह नाटक-साहित्य की कड़ी है वरन् आत्म-विस्मृति के युग में आत्म-कथा होने के कारण तथा, आकंठ शृंगार में निमग्न वातावरण की शृंगार-मुक्त वीर रसात्मक रचना होने के कारण है। रीतिकालीन वीर-काव्य धारा की इस कृति का महत्व आंकना सहज नहीं। औरंगजेब के काल में जहां विद्रोही का सिर उठने से पूर्व ही कुचल दिया जाता था, विद्रोह का स्वर उठाना मौत को बुलावा देना था। जन-समाज में भाग्यवादिता व्याप्त थी। धार्मिक आडम्बरों का बोल-बाला था। समाज धर्म प्राण ही नहीं, धर्म-भीरू भी था। अत्याचार, अन्याय को वह भाग्य की देन समझता था, वह ईश्वर के समक्ष करबद्ध खड़ा था। अपनी रक्षा के लिए वह स्वयं कटिबद्ध नहीं था, ईश्वर ही उसका रक्षक, निर्णायक एवं भाग्यविधाता था। इन परिस्थितियों में 'विचित्र नाटक' के प्रणयन द्वारा, गुरु गोबिन्द सिंह ने स्वयं को राम का वंशज, ईश्वर का दूत कह कर धर्म-प्राण एवं धर्म-भीरू जनता का विश्वास जीता, अपनी युद्ध कथाओं द्वारा उनमें उत्साह का मन्त्र फूंका, अपना उद्देश्य 'दुष्ट-दलन' एवं 'सन्त उबारन' बता कर

उनका सहयोग प्राप्त किया, अवतारों के नाश एवं आडम्बरों की असत्यता से परिचित ~~करवा~~ करवा कर जन-समाज की धर्म-भीरुता को दूर किया। इस प्रकार सुषुप्त, एवं संत्रस्त समाज में जागृति का मन्त्र फूँक कर, अन्याय के प्रतिकार हेतु विरोधी-परिस्थितियों में उन्हें कटिबद्ध किया और ईश्वर के सम्मुख करबद्ध जनता के हाथ में तलवार थमाई ।

विचित्र-नाटक के सृजन में कवि का लक्ष्य नाटक लिखना नहीं था। राजनैतिक अत्याचार एवं पिता के बलिदान से उनके भीतर अन्याय के प्रतिकार हेतु जो ज्वाला सुलग रही थी उसे जन-समाज में प्रज्वलित करने के लिए उन्होंने विचित्र नाटक को माध्यम बनाया। विचित्र-नाटक का रचना-शिल्प इसे नाटक के स्थान पर श्रव्य-काव्य सिद्ध करता है। कृति के मध्य प्रयुक्त 'तमाशा' शब्द इसके 'नाटक' नामकरण के औचित्य की ओर संकेत मात्र करता है। कृति का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विचित्र-नाटक संज्ञा में 'नाटक' शब्द से लेखक का अभिप्राय: सृष्टि के विचित्र क्रियाकलापों से है। यह सृष्टि परमेश्वर-कृत एक विचित्र-नाटक है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी भूमिका को प्रदर्शित करता है। संसार रंगमंच है, समस्त मानव पात्र रूप है, निर्देशक है, अकाल पुरुष, जिसके निर्देशन पर संसृति का यह नाटक परिचालित है। संसार के विचित्र-कार्यों का लेखाजोखा प्रस्तुत करने वाली इस कृति का विचित्र-नाटक नाम उचित ही है। यदि लेखक 'नाटक' के स्थान पर किसी अन्य संज्ञा का प्रयोग कर लेता तो प्रस्तुत कृति के काव्य-रूप के सम्बन्ध में विवादों को पनपने का अवकाश न मिलता। विचित्र-नाटक में न तो नाटक की भारतीय मान्यताओं एवं न पाश्चात्य नियमों का निर्वाह हुआ है। कथावस्तु-संगठन, पात्र-सृष्टि, संवाद-योजना, भाषा-शैली, अरंगमंचीय घटनाएँ आदि अनेक तथ्य भी इसे नाटक के क्षेत्र से बहिष्कृत करते हैं। औरंगजेब के काल में, विद्रोह का मन्त्र फूँकने वाली इस कृति के नाटक होने की बात सोचना ही उपहासास्पद है। कारण-विद्रोह की भावना, वह भी 'नाटक' के रूप में व्यक्त करने की सोचना। गुरु गोबिन्द सिंह ने इसे आत्मकथा कह कर, विद्रोह का स्वर परोक्ष रूप से जगाया तथा आत्मकथा के आवरण में अन्याय के प्रतिकार

की भावना को सुरक्षित रूप में जनता तक पहुँचाया। हिन्दी नाटक-कोश में उपलब्ध विचित्र-नाटक का परिचय अपूर्ण एवं असत्य है। नाटकीय कृति न होते हुए भी इसे नाटक-कोश में स्थान देना अमान्य है क्योंकि न तो कृति में अपेक्षित नाटकीय गुण विद्यमान है और न ही कृतिकार ने इसका सृजन प्रदर्शन के दृष्टि-कोण से किया है। पात्र-संख्या के सम्बन्ध में प्राप्त विवरण के अनुसार 'पाँच पुरुष-पात्र एवं स्त्री पात्र का अभाव'। सृष्टि के प्रारम्भ से गुरु गोबिन्द सिंह के जन्म एवं जीवन के 32 वर्षों की कथा जिसमें अनेक युद्ध-प्रसंग वर्णित हैं, मात्र पाँच पुरुष पात्रों के प्रयोग द्वारा पूर्णतः कही अथवा प्रदर्शित की जा सकती है-सम्भव प्रतीत नहीं होता। विचित्र-नाटक में प्रयुक्त पात्रों की कुल संख्या पाँच सौ से भी अधिक है। कवि ने पात्रों के सम्बन्ध में कोई सीमा नहीं बाँधी है क्योंकि वह 'नाटक' नहीं, अपने उद्देश्य की सिद्धि हेतु आत्म-कथा लिख रहा था। इस सिद्धि हेतु, उसने जिन-जिन प्रसंगों का चयन किया, उन प्रसंगों से सम्बन्धित पात्रों की चिन्ता गुरु गोबिन्द सिंह ने नहीं की। न मालूम हिन्दी नाटक कोशकार ने उक्त पात्र-संख्या किस प्रकार निर्धारित की है। यदि जन्म के पश्चात् अर्थात् उत्तरार्ध कथा के आधार पर (घटनास्थल युद्ध क्षेत्र से इस प्रकार संकेत मिलता है) यह पात्र-संख्या निश्चित की है तो भी पात्र पाँच से अधिक हैं। प्रमाणस्वरूप -- प्रथम युद्ध प्रसंग---श्री संग्रामशाह और उसके चारों भाई गुलाब राय, जीतमल, संगतिया राम और लाल चन्द युद्ध-भूमि में खड़े हैं। माहरीचन्द और गंगाराम ने फतेहशाह की सेना को जीत लिया। दयाराम ने क्रोधपूर्वक युद्ध किया। विभिन्न सैनिकों एवं शत्रु पक्ष के पठान अफसरों को छोड़ देने पर भी प्रथम युद्ध में प्रयुक्त व्यक्तियों की संख्या पाँच से अधिक हो जाती है, जिसमें प्रमुख सेना-नायक गुरु गोबिन्द सिंह सम्मिलित नहीं हैं। घटना-स्थल का वर्णन करते हुए हिन्दी नाटक कोश में मात्र युद्ध-स्थल का उल्लेख किया गया है। जबकि कथा के सम्पूर्ण प्रसंगों की पूर्ति हेतु विभिन्न घटना-स्थलों की अपेक्षा है। विचित्र नाटक में प्राप्त बीस से भी अधिक प्रसंग हैं जो मात्र युद्ध-स्थल से सम्बन्धित नहीं। पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध में से कोई भी अंश पूर्णतया युद्ध-स्थल पर प्रस्तुत नहीं किया

जा सकता। सम्पूर्ण-कथा को सूच्य एवं मात्र युद्ध-प्रसंगों को दृश्य मानने की स्वेच्छा-पूर्ण स्थापना अमान्य है। गुरु गोबिन्द सिंह ने सम्पूर्ण कथा वर्णित की है उसे इच्छानुसार दृश्य-सूच्य विभागों में कैसे बाँटा जा सकता है। यदि इस कृति को नाटक सिद्ध करना ही हो तो कथा को सम्पूर्णत: स्वीकृत करना होगा। पात्र-संख्या एवं घटनास्थल का विवेचन पूर्ण कथानक के आधार पर करना होगा। दीर्घ अवधि के विस्तृत कथानक को मात्र पाँच पुरुष पात्रों एवं युद्ध-स्थल नामक छोटा क्षेत्र तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। विचित्र नाटक के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि विचित्र नाटक नाटक नहीं है और इसे नाटक (विशुद्ध नाटक) कहना दुराग्रह से अधिक नहीं ।

रीतिकालीन प्रसिद्ध महाकवि देव कृत 'देवमाया-प्रपंच नाटक' काव्य-रूप की दृष्टि से ही नहीं, रचयिता के सन्दर्भ में भी विवाद-ग्रस्त रहा है। अत: प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में देवमाया-प्रपंच नाटक के काव्य-रूप के निर्धारण से पूर्व इसके लेखक-सम्बन्धी प्रश्न पर विचार किया गया है। इस कृति को अन्य देवकृत मानने वाले विद्वानों का एक ही तर्क है कि यह व्यास-शिष्य देव की रचना है न कि प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि देव की। देवमाया-प्रपंच नाटक के अन्त में 'व्यास' के प्रति प्रकट की गई श्रद्धा इसका आधार है। देवमाया-प्रपंच नाटक को रीतिकालीन देव कृत प्रमाणित करने वाले विद्वानों ने 'व्यास' सम्बन्धी तर्क को अछूता ही छोड़ दिया था। यही कारण है कि डा० नगेन्द्र प्रभृति विद्वानों के प्रस्तुत कृति को देवकृत प्रमाणित किए जाने पर भी डा० किशोरी लाल गुप्त ने देव पर की गई आलोचना को 'पानी पर बने बेलबूटे सदृश' कहा। प्रस्तुत शोध-कार्य के परिणाम-स्वरूप यह स्पष्ट होता है कि रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि देव एवं व्यास-शिष्य देव दो भिन्न व्यक्ति नहीं हैं वरन् एक ही व्यक्ति है। अत: इसे व्यास-शिष्य देव की रचना कहना और रीतिकालीन देव की रचना कहना एक ही बात है। परन्तु, इस कथन से पूर्व इन दोनों सम्बोधनों को अभिन्न समझना होगा। रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि व्यास-शिष्य देव ही देवमाया-प्रपंच नाटक के रचयिता हैं। खोज रिपोर्ट

1904 एवं हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग-एक, में देव के गुरु 'व्यास' ही माने गये हैं, हितहरिवंश जी नहीं। देव की अन्य रचनाओं 'देव-चरित्र' एवं 'रस-विलास' में भी 'व्यास' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'देव चरित्र' में प्राप्त 'व्यास' शब्द गुरुवत् श्रद्धा सहित प्रयुक्त हुआ है। देव-चरित्र पर व्यास जी के भावों की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। आश्चर्य है कि 'देवमाया-प्रपंच नाटक' में प्रयुक्त 'व्यास' शब्द विद्वानों के सन्देह का कारण बन सका, परन्तु 'देवचरित्र' के सम्बन्ध में उनके मन में सन्देह की सृष्टि न हो सकी। देव की रचनाओं में व्यास जी के भावों एवं विचारों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। व्यास-वाणी एवं देव की रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जाता है। व्यास द्वारा प्रतिपादित माधुर्य भक्ति को देव ने मान्यता दी है। माधुर्य भक्ति के अन्तर्गत राधा-कृष्ण की सखी भाव से भक्ति, उनकी निकुंज लीला का दर्शन, श्रवण, वर्णन, नित्य विहार आदि में भक्त अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है। 'अष्टयाम' के प्रारम्भ में ही राधा-कृष्ण के नित्य विहार आदि का वर्णन किया गया है। अष्टयाम में अनेक स्थलों पर राधा-कृष्ण का नामोल्लेख करते हुए उनकी विलास लीला को प्रस्तुत किया गया है। 'अष्टयाम' के विलास-वर्णन को देखकर विद्वानों को आश्चर्य हुआ था कि 15-16 वर्ष का बालक, बिना किसी विलासी राजाश्रय के आठों याम की विलासादि लीलाओं का ज्ञाता किस प्रकार बन गया। वस्तुत: देव के काव्य में प्राप्त विलास-वर्णन राधा वल्लभ-सम्प्रदाय एवं उसके अनुयायी व्यास जी की माधुर्य भक्ति का प्रभाव है। व्यास जी की रचनाओं में माधुर्य भक्ति के अतिरिक्त सांसारिक प्रपंचों, आडम्बरों, माया-जाल, संसार की असारता आदि से संबंधित विचार भी प्राप्त होते हैं। देव की रचनाओं में माधुर्य-भक्ति के प्रभाव के साथ-साथ व्यास जी के इन विचारों का प्रभाव भी देखा जा सकता है। वस्तुत: देव व्यास जी के सही अर्थों में शिष्य थे। व्यास जी देव के दीक्षा-गुरु नहीं वरन् सद्गुरु थे। गुरु बनाने की यही दो विधियाँ हैं-प्रथम, दीक्षा-ग्रहण करके एवं दूसरी, दीक्षा के बिना ही किसी व्यक्ति के भावों एवं आदर्शों को पूर्ण स्वीकृति देना।

समय के अन्तराल के कारण देव ने दूसरी विधि से व्यास जी को अपना गुरु बनाया। व्यास एवं देव के इस विवेचन के उपरान्त यह मानना युक्तियुक्त होगा कि देव ही व्यास जी के शिष्य थे। इस तथ्य को अनेक प्रमाण पुष्ट करते हैं।

देवमाया-प्रपंच नाटक के कर्तृत्व के प्रमाणित हो जाने के उपरान्त उसकी नाटकीय कृति के रूप में परीक्षा की गई है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि देव इस कृति को नाटकीय कृति बनाने में सफल नहीं हो सके। 'नाट्य शास्त्र' के अनुसार नान्दी, प्रस्तावना के अतिरिक्त कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों एवं सन्धियों का निर्वाह भी प्रस्तुत कृति में नहीं हो पाया। देवमाया-प्रपंच नाटक का कथानक कल्पित है और यह कल्पित कथानक कल्पना-लोक अर्थात् मन: प्रदेश की विभिन्न सद्-असद् वृत्तियों पर आधारित है। इन मनोवैज्ञानिक भावनाओं के संघर्ष को दृश्य रूप दे पाना सम्भव नहीं। ये अशरीरी, अरूप, सुख-दुखात्मक भावनायें दृष्टि का विषय बनने में सहज समर्थ नहीं हैं। यह मात्र अनुभूति का विषय है। मंच से भी अधिक भावनाओं पर आधारित प्रस्तुत कथावस्तु में देव ने पात्र-रूप-सज्जा-सम्बन्धी संकेत नहीं दिए। इन भावनाओं को रूपाकार देना असम्भव-सा है। प्रधानता के आधार पर कथा का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि आधिकारिक कथा गौण हो गई है एवं प्रासंगिक कथा प्रधान। कृति को नाटक बनाने के फेर में पड़कर लेखक ने कथा का जो दृश्य-श्रव्य विभाजन किया है, वही प्रासंगिक कथा के प्रधान हो जाने का मुख्य कारण है। नेता के सन्दर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। कथा-नायक समस्या का जन्मदाता एवं फल का उपभोक्ता मात्र है। कथा को आगे ले जाने अर्थात् फलप्राप्ति की ओर अग्रसर करने की समस्त क्रिया प्रासंगिक कथा के प्रधान पात्र द्वारा सम्पन्न की जाती है। कथा का सम्पूर्ण घटना-चक्र जनश्रुति द्वारा ही परिचालित है। इस प्रकार देवमाया-प्रपंच नाटक को 'नेता' की दृष्टि से सफल नाटकीय कृति नहीं कहा जा सकता। कृति का अंगी रस शान्त है। शान्त रस की सिद्धि हेतु वीर रस की योजना की गई है। शृंगार आदि अन्य रसों को भी प्रश्रय दिया गया है। कथानक का विभाजन

एवं विधान उलझनपूर्ण एवं असफल होने के कारण अन्य रसों की योजना ने शान्त रस पर अपेक्षित बल नहीं पड़ने दिया। इसके अतिरिक्त अन्तर्द्वन्द्व के मध्य से उद्भूत इस कथानक में लेखक अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत नहीं कर पाया। संवाद-योजना में स्वाभाविकता, रोचकता, मार्मिकता के स्थान पर दुरूहता है। वे बोझिल होने के साथ-साथ अप्रासंगिक भी हैं एवं पात्रानुकूल भी नहीं हैं। कथा में अनेक घटनाएँ एवं प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें अभिनीत नहीं किया जा सकता। रंग-संकेत न होने के कारण प्रस्तुत नाटक की नाटकीयता संदिग्ध हो जाती है। लेखक ने नाटक के मध्य 'मन' नामक प्रमुख पात्र को, हृदय की भावना मात्र बता कर कथा के मध्य ही उसकी हत्या कर दी है। नाटक के क्षेत्र में नाटककार की यह महती भूल है। भाषा की दृष्टि से विचार करने पर भी देवमाया-प्रपंच नाटक नहीं कहा जा सकता। अलंकारों के प्रयोग द्वारा लेखक ने इस कृति को अस्वाभाविक, बोझिल एवं दुरूह-सा बना दिया है। रूप, गुण एवं वैभव आदि के वर्णन में कवि की रुचि अत्यधिक रमी है और इन्हीं स्थलों पर वह भाषा-सौन्दर्य के मोह में उलझा है। कवि की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति ने कृति को नाटक न रहने दिया, पाठ्य-काव्य पात्र बना दिया। इस प्रकार नाटक के प्रतिकूल गुणों से युक्त यह कृति नाटक नहीं मानी जा सकती। [redacted] ।

देवमाया-प्रपंच नाटक के रचयिता देव के जीवन-वृत्त का अध्ययन करते हुए एक नवीन तथ्य प्रकाश में आया। वह यह कि देव ने सवा सौ साल की दीर्घायु भोगी। सामान्यतया देव की आयु 90-95 वर्ष स्वीकार की जाती है। देव का जन्म संवत् भाव-विलास के दोहे के आधार पर संवत् 1730 ही स्वीकार किया जाता है। यद्यपि डा० लक्ष्मीधर मालवीय ने इसे प्रक्षिप्त सिद्ध कर दिया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य जगत् में देव का जन्म संवत् विवादास्पद होते हुए भी निश्चित-सा हो गया था। परन्तु डा० रमानाथ त्रिपाठी की शोध के परिणाम-स्वरूप प्राप्त 'अष्टयाम' की संवत् 1717 की हस्तलिखित प्रति ने देव का जन्म-संवत् 1700 विक्रमी संवत् के आस-पास का मानने को बाध्य किया। सन् 1904 के

खोज-विवरण में देव का जन्म संवत् 1697 लिखा है। इस तरह अष्टयाम की यह प्राचीन प्रति देव के उक्त संवत् को सत्य प्रमाणित करती है। इस जन्म संवत् को सत्य मानकर डा० रमानाथ त्रिपाठी ने 'सुखसागर तरंग-संग्रह' के अकबर अली खाँ को सत्तारूढ़ होने से पूर्व ही भेंट किए जाने का अनुमान किया है; क्योंकि देव ने अपनी अन्तिम कृति अकबर अली खाँ को जो संवत् 1824 में सत्तारूढ़ हुए थे, भेंट की थी। इस प्रकार देव की इतनी दीर्घायु को (मिश्रबन्धुओं का सहारा लेते हुए) असम्भव मानते हुए उन्होंने यह कल्पना की है। आज मनुष्य की औसत आयु घट रही है। यही कारण है कि वे ऐसा सोचने पर बाध्य हुए। सुखसागर-तरंग में देव के 'समर्पण' से यह प्रमाणित होता है कि उस समय अकबर अली राजा बन चुके थे। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि देव संवत् 1700 से 1824 के लगभग वर्तमान रहे।

संक्षेप में, हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन नाटकों ~~का~~ विशेष रूप से हनुमान नाटक, विचित्र-नाटक एवं देवमाया-प्रपंच नाटक के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इस अवधि में शास्त्र-सम्मत नाटक-साहित्य का अभाव रहा है। नेपथ्य में नाटक की गूँज थी; लोगों के मन में नाटक के प्रति तीव्र ललक विद्यमान थी। लोक-नाट्यों के रूप में नाट्य-परम्परा जीवित ही नहीं वरन् उन्मुक्त वातावरण में साँस ले रही थी। लेखकों ने अपनी अनाटकीय कृतियों को नाटक नाम दिया, नाटक-रचना प्रारम्भ करके भी वे अपनी कृतियों में अपेक्षित नाटकीय गुण न ला सके। जिन कृतियों को नाटक नाम देने का साहस उनके लेखकों ने नहीं किया उन्हें जनसामान्य ने नाटक कहा। इस कारण मध्यकाल में नाटक नामधारी रचनाएँ मिलती तो हैं, परन्तु 'नाटक' के रूप में (साहित्यिक विधा-विशेष) शायद ही कोई मिले। हनुमान नाटक (रामगीत) एवं विचित्र-नाटक तो स्पष्टतः नाटक नहीं हैं।

हनुमन्नाटक या हनुमान नाटक का वास्तविक नाम 'रामगीत' है। हृदयराम ने एक बार भी अपनी कृति को हनुमन्नाटक अथवा हनुमान नाटक नहीं कहा और न ही रामकथा का पुनर्सृजन प्रदर्शन के निमित्त किया है। रामकथा का

श्रवण-मनन ही लेखक को अभीष्ट है। रामगीत को हनुमान नाटक कहना और नाटक के क्षेत्र से सम्बद्ध करना अनुचित है। विचित्र-नाटक के लेखक ने भी कृति का निर्माण, आत्मकथा के माध्यम से अपने अभीष्ट की प्राप्ति करने के लिए किया था। गुरु गोबिन्द सिंह ने ग्रन्थ बढ़ने के भय से कथा-सूत्र को बीच-बीच में छोड़ कर बारबार कथा कहने की बात को दोहरा कर कृति को दृश्य-विधान से वंचित कर दिया है। कृति को 'विचित्र-नाटक' नाम गुरु गोबिन्द सिंह ने ही प्रदान किया है, परन्तु 'नाटक' से उनका अभिप्राय: साहित्यिक विधा विशेष से न था। विचित्र-नाटक में नाटकीयता नहीं है। साथ ही कृति को अनाटकीय सिद्ध करने वाले अनेक दोष विद्यमान हैं। 'देवमाया-प्रपंच नाटक' एक ऐसी कृति है जिसे महाकवि देव ने 'नाटक' का नाम एवं रूप देने का प्रयास अवश्य किया परन्तु वे इसे 'नाटक' रूप देने में सफल न हो सके। नाटकीय नियमों की अवहेलना, कथा के अनाटकीय विकास आदि ने कृति को नाटकीय-कृति न बनने दिया। अत: देवमायाप्रपंच नाटक को 'नाटक' नहीं कहा जा सकता। क्योंकि महाकवि देव ने आलोच्य कृति को दृश्य-स्तर से जोड़ने का प्रयास अवश्य किया इस कारण यदि चाहें तो इसे दृश्य-काव्य की संज्ञा दी जा सकती है परन्तु नाटक की नहीं। संक्षेप में, प्रस्तुत शोध-कार्य के परिणामस्वरूप निम्न तथ्य प्रकाश में आए हैं :--

(1) हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में शास्त्रीय दृष्टि से सफल नाटकों की रचना नहीं हुई। इस काल में लोक नाट्यों के रूप में नाट्य-परम्परा जीवित थी; 'नाटक' नामधारी रचनाएँ प्राय: अनाटकीय हैं। 'नाटक' नामक अनेक कृतियाँ प्रदर्शन-पक्ष से असम्बद्ध हैं (उनका प्रणयन मात्र सुनने-सुनाने के लिए हुआ और अनेक कृतियाँ नाटकीय नियमों के प्रतिकूल हैं।

(2) हनुमन्नाटक तथा हनुमान नाटक नामक यह रचना नाटक नहीं है। हृदयराम ने अपनी कृति 'रामगीत' की रचना नाटकीय दृष्टिकोण से नहीं की थी और न ही उसे नाटक नाम दिया था। 'रामगीत' को हनुमन्नाटक आदि

कहना एवं नाटक कहलाने नाटकीय कृति सिद्ध करने का श्रेय पश्चात्वर्ती विद्वानों पश्चाद्वर्ती को प्राप्त है। हिन्दी-नाटक-कोश में प्रस्तुत कृति का उल्लेख असामान्य है। हनुमन्नाटक की रचना एवं हृदयराम भल्ला के विषय में प्राप्त विभिन्न जनश्रुतियाँ कपोल-कल्पित हैं।

(3) हृदयराम की अन्य दो कृतियाँ 'रुक्मिणी-मंगल' एवं 'सुदामा चरित' भी उपलब्ध हैं। 'रुक्मिणी-मंगल' अपूर्ण रूप में देवनागरी लिपि में उपलब्ध है जबकि 'सुदामा चरित' पूर्ण रूप में कैथी-लिपि में उपलब्ध है।

(4) विचित्र-नाटक की रचना नाटकीय कृति के रूप में नहीं हुई है। गुरुगोबिन्द सिंह ने विचित्र-नाटक के रूप में आत्मकथा का प्रणयन, आत्म-कथा के भीतर संसार में व्याप्त विचित्र असंगत तथ्यों को वाणी दी है। विचित्र-नाटक की कथावस्तु, पात्र, संवाद-योजना, घटनाएँ तथा भाषा आदि इसके अनाटकीय होने की स्पष्ट घोषणा करती हैं। हिन्दी नाटक-कोश में उपलब्ध विचित्र नाटक का परिचय अपूर्ण एवं अप्रामाणिक है।

(5) देवमाया-प्रपंच नाटक रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि देव की रचना है। व्यास शिष्य देव एवं रीतिकालीन महाकवि देव अभिन्न व्यक्ति हैं। देवमाया-प्रपंच नाटक की रचना नाटकीय नियमों के अनुकूल नहीं हुई है। देव ने नर-नारी की पात्र योजना, संवाद-योजना, प्रवेश-प्रस्थान सूचना आदि द्वारा आलोच्य कृति को नाटक बनाने का प्रयास अवश्य किया परन्तु वह इसमें सफल न हो सका। कथावस्तु-संगठन में नाटकीय नियमों का निर्वाह नहीं हुआ है। रस, नेता, पात्र-संख्या, अशरीरी-पात्र, रंग-संकेतों का अभाव, अभिनय के अनुपयुक्त प्रसंगों की योजना, अन्तर्द्वन्द्व का अभाव, अलंकृत भाषा आदि अनेक ऐसे तथ्य हैं जिन्होंने देवमाया-प्रपंच नाटक को अनाटकीय कृति बना दिया है।

परिशिष्ट

सहायक पुस्तक-सूची / संदर्भ

(क) हिन्दी पुस्तकें ।

(ख) पंजाबी पुस्तकें ।

(ग) अंग्रेज़ी पुस्तकें ।

(घ) पत्र-पत्रिकाएँ ।

(ङ) हस्तलिखित पुस्तकें ।

सहायक पुस्तक सूची

(क) हिन्दी पुस्तकें

अरस्तु, शिवानन्द, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला-38, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश सन् 1960 ।

आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंग्ल प्रभाव, डा० उपेन्द्र नारायण, हिन्दी साहित्य संसार, पटना-4, प्रथम संस्करण ।

आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य सिद्धान्त, डा० निर्मला हेमन्त, अक्षर प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-6, सन् 1973 ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद् इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, सन् 1954 ।

आधुनिकता के पहलू, सम्पादक डा० विपिन कुमार अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद, सन् 1972 ।

आस्था के चरण, डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1968 ।

काव्य के रूप, बाबू गुलाब राय, आत्मा राम एण्ड सन्ज़, दिल्ली, सन् 1958 ।

काव्य-विमर्श, रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, सन् 1951 ।

खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थों का त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण, 1926-28, सम्पादक रायबहादुर हीरालाल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् 2010 ।

गुरु गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, डा० प्रसन्नी सहगल, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, सन् 1965 ।

गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी कविता, डा० महीप सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969 सन् ।

गुरु गोबिन्द सिंह का काव्य तथा दर्शन, डा० विनोद तनेजा, भार्गी पब्लिशर्स, अम्बाला कैंट, सन् 1973 ।

गुरु गोबिन्द सिंह का वीर काव्य, डा0 जयभगवान गोयल, गुरु गोबिन्द संस्थान, पटियाला, सन् 1969 ।

गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व, धर्मपाल मैनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1972 ।

गुरु गोबिन्द सिंह के दरबारी कवि, डा0 भारत भूषण, स्वस्तिक साहित्य सदन , दिल्ली-32, सन् 1979 ।

गुरु गोबिन्द सिंह समर्पण ग्रन्थ, सम्पादक वीरेन्द्र सिंह, आल इंडिया सिक्ख यूथ फैडरेशन, अमृतसर, सन् 1967 ।

गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, डा० हरभजन सिंह, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, सन् 1963 ।

ज्ञान शब्द कोश, सम्पादक मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी संवत् 2011 ।

चन्दूलाल दूबे अभिनन्दन ग्रन्थ, सम्पादक शिवराम माली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1979 ।

तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामसाहित्य, डा० रामलखन पाण्डे, अभिनव भारती, इलाहाबाद, सन् 1972 ।

दशमेश पिता गुरु गोबिन्द सिंह, राजेन्द्र सिंह आहलूवालिया, गुरु गोबिन्द सिंह फाउण्डेशन, चण्डीगढ़, सन् 1966 ।

दशमग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि, डा० रत्नसिंह जग्गी, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, सन् 1975 ।

दशरूपक (धनंजय), व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, सन् 1955 ।

देव और उनकी कविता, डा0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1957, (विभिन्न संस्करण)

देवकवि-अष्टयाम, डा0 रमानाथ त्रिपाठी, कुमार प्रकाशन, मोती नगर, दिल्ली-15, सन् 1978 ।

देव के काव्य में अभिव्यक्ति-विधान, डा० राज बुद्धिराजा, तेज प्रकाशन
अन्सारी रोड, 23 दरियागंज, दिल्ली-6, सन् 1975 ।

देव-ग्रन्थावली, सम्पादिका डा० पुष्पा जायसवाल, हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद, सन् 1974 ।

देव-ग्रन्थावली, सम्पादक डा० लक्ष्मीधर मालवीय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली, सन् 1967 ।

देवसुधा, सम्पादक मिश्रबन्धु, गंगा ग्रन्थागार, गौतम बुद्ध मार्ग लखनऊ, संवत् 2005 ।

नहुष नाटक, सम्पादक ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् 2011 ।

नव्य हिन्दी नाटक, डा० सावित्री स्वरूप, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, सन् 1967 ।

नाटक और नाटक भाग एक, सद्गुरुशरण अवस्थी, इन्डियन प्रेस लिमिटेड,
प्रयाग, सन् 1950 ।

नाटक की परख, डा० एस० पी० खत्री, साहित्य भवन, प्राइवेट लि० इलाहाबाद,
सन् 1959 ।

नाटक के तत्व (मनोवैज्ञानिक अध्ययन), कमलिनी मेहता, नागरी प्रचारिणी
सभा, वाराणसी, सन् 1964 ।

नाटक के तत्व : सिद्धान्त और समीक्षा, विष्णु कुमार त्रिपाठी, स्मृति प्रकाशन,
इलाहाबाद, सन् 1973 ।

नाटक-साहित्य का अध्ययन, डा० इन्दुजा अवस्थी, आत्माराम एण्ड सन्ज़,
दिल्ली, सन् 1964 ।

नाट्यकला, डा० रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1961 ।

नाट्यकला-मीमांसा, सेठ गोबिन्द दास, सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय,
मध्यप्रदेश, सन् 1961 ।

नाट्य-दर्शन, शान्ति गोपाल पुरोहित, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सन् 1970 ।

नाट्यशास्त्र (भरत), सम्पादक जी० एच० भट्ट, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़,
ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, सन् 1954 ।

नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक , हजारी प्रसाद द्विवेदी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली सन् 1977 ।

नाट्य समीक्षा, दशरथ ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण ।

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, चन्द्रकान्त बाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1962 ।

परिवेश, मन और साहित्य, डा0 त्रिलोक चन्द तुलसी, प्रतिभा प्रकाशन, होशियारपुर, सन् 1974 ।

पुराण-विषयानुक्रमणिका, डा0 राजबली पाण्डेय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, संवत् 2014 ।

पूर्व भारतेन्दु नाटक साहित्य, सोमनाथ गुप्त, हिन्दी भवन, जालंधर, सन् 1958 ।

पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, सम्पादक-वासुदेव शरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मण्डल, मथुरा, संवत् 2010 ।

पौरस्त्य एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त, डा0 रामदत्त शर्मा, देवनगर प्रकाशन, जयपुर-3, सन् 1973 ।

प्रबोध चन्द्रोदय (कृष्ण मिश्र), टीकाकार श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस, सन् 1955 ।

प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी-परम्परा, डा0 सरोज अग्रवाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् 1962 ।

प्राचीन भारतीय लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताना म्यूज़ियम अजमेर, संवत् 1975 ।

प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, सम्पादक-माताप्रसाद गुप्त, क0 म0 हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ आगरा, सन् 1970 ।

प्रेमचन्द: चिट्ठी-पत्री, संकलन एवं लिप्यंतर-अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1962 ।

ब्रजसाहित्य का इतिहास, डा0 सत्येन्द्र, भारती भण्डार, इलाहाबाद, संवत् 2024 ।

भक्त कवि व्यास जी, सम्पादक वासुदेव गोस्वामी, अग्रवाल प्रेस, मथुरा संवत् 2009 ।

भक्तिकालीन कवियों के काव्य-सिद्धान्त, डा० सुरेश गुप्त, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, सन् 1971 ।

भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1970 ।

भरत का नाट्यशास्त्र, अनुवादक डा० रघुवंश, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् 1964 ।

भरत नाट्यशास्त्र में नाट्यशालाओं के रूप, डा० रामगोविन्द चन्द्र, काशी, मुद्रणालय विश्वेश्वर गंज, वाराणसी, सन् 1958 ।

भवभूति के नाटक, डा० ब्रजवल्लभ, मध्यप्रदेश ग्रन्थ अकादमी, सन् 1973 ।

भारत वाणी-तीन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1975 ।

भारतीय इतिहास का मुस्लिम युग (1000-1707 , एस० एल० किकारिया, एस० नगीन एण्ड को०, प्रताप रोड, जालंधर, द्वितीय संस्करण।

भारतीय काव्यशास्त्र, डा० सत्यदेव चौधरी, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली-51, सन् 1974 ।

भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, डा० रघुनन्दन प्रसाद तिवारी, भारतीय पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी, सन् 1973 ।

भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पं० सीताराम चतुर्वेदी, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला , क्रमसंख्या 87 ।

भारतीय नाट्य-परम्परा और अभिनय-दर्पण, वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1967 ।

भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, डा० रामसागर त्रिपाठी, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली-6, सन् 1971 ।

भारतीय नाट्य साहित्य, सम्पादक डा० नगेन्द्र, एस० चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, सन् 1968 ।

भारतीय मध्यकाल का इतिहास, इंडियन प्रेस पब्लिकेशन्स लिमिटेड, इलाहाबाद, सन् 1955 ।

भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, डा0 अज्ञात, पुस्तक संस्थान 109/50 ए0 नेहरू नगर, कानपुर, सन् 1978 ।

भारतीय वाङ्मय, सम्पादक डा0 नगेन्द्र, साहित्य सदन झाँसी, संवत् 2015 ।

भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, गोपीनाथ तिवारी, इन्द्रचन्द्र नारंग, रानी मण्डी, इलाहाबाद, सन् 1959 ।

भारतेन्दुकालीन नाट्य साहित्य, भानुदेव शुक्ल, नन्द किशोर एंड सन्ज़, वाराणसी, सन् 1962 ।

मध्यकालीन नाट्यपरम्परा और भारतेन्दु, कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह, ग्रन्थ कुटीर, पीठ रोड, कानपुर, सन् 1958 ।

मध्यकालीन बोध का स्वरूप, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, सन् 1970 ।

मध्यकालीन संस्कृत नाटक, रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर, सन् 1974 ।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, डा0 सत्येन्द्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् 1960 ।

महाकवि देव, भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद, सन् 1952 ।

मानक हिन्दी कोश, सम्पादक रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सन् 1964 ।

मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड एक-दो), मिश्रबन्धु, दुलारेलाल भार्गव गंगापुस्तक माला, लखनऊ, नौवाँ संस्करण, सन् 1979 ।

मुगलकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, बी0 एन0 लूणिया, मानक चन्द बुकडिपो, भोला, सन् 1971 ।

रंग-दर्शन, नेमिचन्द्र जैन, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-6, सन् 1967 ।

रंगमंच, बलवन्त गार्गी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, सन् 1968 ।

रंगमंच और नाटक की भूमिका, लक्ष्मीनारायण लाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1965 ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, डा० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली-7, संवत् 2014 ।

रामकथा: उत्पत्ति और विकास, कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग, विश्वविद्यालय प्रयाग, सन् 1971 ।

रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, डा० शिवकुमार शुक्ल, युगवाणी कानपुर, सन् 1964 ।

रामभक्ति शाखा, डा० रामनिरंजन पाण्डे, नवहिन्द पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, सन् 1960 ।

रीतिकालीन कवियों की शृंगारिक दृष्टि, डा० शकुन्तला अरोड़ा, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-7, सन् 1978 ।

रीतिकालीन काव्य-विधाओं का शास्त्रीय अध्ययन, डा० पवन कुमार जैन, रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइन्सेज, दिल्ली-2, सन् 1979 ।

रीतिकालीन भारतीय समाज, डा० शशिप्रभा शास्त्री, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1979 ।

रीतियुगीन काव्य, डा० कृष्णचन्द्र वर्मा, पुस्तक मन्दिर, इलाहाबाद, सन् 1965 ।

रेखाएँ और चित्र, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1955 ।

रूपक विकास, वेदमित्र व्रती, साहित्य रत्न माला कार्यालय, बनारस, संवत् 2005 ।

वाणी गुरु गोबिन्द सिंह, सम्पादक प्रेमप्रकाश सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह, फाउण्डेशन, चण्डीगढ़, सन् 1968 ।

वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, डा० विद्या मिश्र, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ ।

विचित्र नाटक (गुरु गोबिन्द सिंह), सम्पादक-अमर सिंह 'चाकर', गुरुद्वारा शिरोमणि प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर ।

विचित्र नाटक (गुरु गोबिन्द सिंह), सम्पादक-ओमप्रकाश आनन्द, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-7, सन् 1977 ।

विचित्र नाटक (गुरु गोबिन्द सिंह), सम्पादक-लाजवन्ती रामकृष्ण, न्यू मरीना आरकेड, नई दिल्ली, सन् 1961 ।

विचित्र नाटक (गुरु गोबिन्द सिंह) का मूल्यांकन, देवेच्छा, प्राप्ति स्थान
पंजाब विश्वविद्यालय पुस्तकालय, चण्डीगढ़ ।

शब्द रसायन (देवदत्त), सम्पादक जानकी नाथ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग, संवत् 2014 ।

शिवसिंह सरोज, सं0 किशोरी लाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् 1970 ।

शोध प्रविधि, डा0 विनय मोहन शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, म
दिल्ली-6, सन् 1973 ।

शोध-साधना (भाग एक), डा0 चन्द्र प्रकाश सिंह, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1973

संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक, गंगा राम गर्ग, आक्सफोर्ड
यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, सन् 1963 ।

संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद, डा0 देवेन्द्र कुमार, राजपाल एण्ड सन्स,
दिल्ली-6, सन् 1967 ।

संस्कृत नाट्यकला, रामलखन शुक्ल, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1970 ।

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन,
वाराणसी, सन् 1960 ।

संस्कृत हनुमन्नाटक (सटीक), दामोदर मिश्र, जगदीश्वर मुद्रणालय,
बम्बई, संवत् 1965 ।

सभासार नाटिका (रघुराम नागर), सम्पादक डा0 प्रभात, नीलाभ प्रकाशन,
इलाहाबाद, सन् 1978 ।

समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन,
दिल्ली, सन् 1978 ।

समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ, प्रतापनारायण
टंडन, विवेक प्रकाशन, अमीनाबाद, लखनऊ, सन् 1965 ।

समीक्षा शास्त्र, डा0 दशरथ ओझा, रामपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, सन् 1955 ।

सरोज सर्वेक्षण, किशोरीलाल गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् 1967 ।

सांगीत : एक लोक नाट्य परम्परा, राम नारायण अग्रवाल, राजपाल एण्ड
सन्स, कश्मीरी गेट दिल्ली, सन् 1976 ।

साहित्य का इतिहास दर्शन, नलिन विलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, सन् 1960 ।

साहित्य की मान्यताएँ, भगवती चरण वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् 1972 ।

साहित्य-दर्पण, विश्वनाथ, मोती लाल बनारसी दास, पटना, सन् 1975 ।

साहित्य-परीक्षण, सम्पादक-सत्यदेव चौधरी, हिन्दी साहित्य सृजन परिषद्, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण ।

साहित्य मंचक, धर्मपाल आष्टा, भारती भवन, अजमेरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण।

साहित्यालोचन, डा0 राकेशगुप्त, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, सन् 1977 ।

साहित्य-सहचर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1976 ।

सिख इतिहास, ठाकुर देशराज सिंह, ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया, जिला गंगानगर, (राजस्थान) संवत् 2017 ।

सिख धर्म के दस गुरु, बी0 एन0 गुजराती, राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, सन् 1971 ।

सुदामा चरित (नरोत्तम दास), सम्पादक-लाल सिंह चौधरी, सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली -7, प्रथम संस्करण ।

सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, सं0 डा0 नगेन्द्र, सेठ गोविन्द दास हीरक जयन्ती समारोह समिति दिल्ली, सन् 1956 ।

हनुमान नाटक (हृदयराम भल्ला), सम्पादक-नन्द किशोर देव शर्मा, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, संवत् 1984 ।

हमारी नाट्य-परम्परा, श्री कृष्णदास, साहित्यकार संसद, प्रयाग, सन् 1956 ।

हमारे नाटककार, राजेन्द्र सिंह गौड़, श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, माई थाना सिंह रोड, आगरा, संवत् 2010 ।

हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची, सम्पादक रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् 1974 ।

हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय, भाग एक, संयोजक कृष्णदेव प्रसाद गौड़, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2021 ।

हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण-भाग दो, सं० श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् 2021 ।

हिन्दी अभिनव भारती, सम्पादक डा० नगेन्द्र, हिन्दी विभाग, दिल्ली, विश्वविद्यालय दिल्ली, सन् 1960 ।

हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य, डा० रणधीर उपाध्याय, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1966 ।

हिन्दी और तेलुगू के मध्यकालीन रामसाहित्य का अनुशीलन, डा० चावलि सूर्य नारायण मूर्ति, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, सन् 1966 ।

हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास, डा० सिद्धनाथ कुमार, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1978 ।

हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, डा० द्वारिका प्रसाद सक्सैना, विनोद, पुस्तक मन्दिर, आगरा, चतुर्थ संस्करण ।

हिन्दी के पौराणिक नाटक, डा० देवर्षि सनाढ्य, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस, सन् 1961 ।

हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत, डा० शशी प्रभा शास्त्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1973 ।

हिन्दी गद्य के विविध साहित्य-रूपों का उद्भव और विकास, डा० बलवन्त कौतमिरे, किताब महल, इलाहाबाद, सन् 1958 ।

हिन्दी दशरूपक (धनंजय), व्याख्याकार-भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस, सन् 1955 ।

हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, गंगा ग्रन्थागार, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ, संवत् 2012 ।

हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, साहित्य भवन, इलाहाबाद, सन् 1958 ।

हिन्दी नाटक और नाट्यसमीक्षा, सम्पादक नरनारायण राय, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद-3, सन् 1978 ।

हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, विभिन्न संस्करण ।

हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार, डा० रामचरण महेन्द्र, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, सन् 1955 ।

हिन्दी नाटक कोश, डा० दशरथ ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1975 ।

हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव, विश्वनाथ मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1966 ।

हिन्दी नाटक : पुनर्मूल्यांकन, सत्येन्द्र तनेजा, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, सन् 1971 ।

हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वेदपाल खन्ना 'विमल', भारत भारती, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, सन् 1958 ।

हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, हिन्दी साहित्य, भवन जालंधर, सन् 1958 ।

हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, गिरीश रस्तोगी, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, सन् 1967 ।

हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा, रामगोपाल सिंह चौहान, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।

हिन्दी नाटकों का रूप विधान और वस्तुविकास, डा० चन्दूलाल दुबे, दिल्ली पुस्तक सदन, बंग्लो रोड, दिल्ली-7, सन् 1970 ।

हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि, गिरिजा सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1970 ।

हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास, डा० शान्ति मलिक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1971 ।

हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकासात्मक अध्ययन, शान्ति गोपाल पुरोहित, साहित्य सदन, देहरादून, सन् 1966 ।

हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, डा० श्रीपति शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् 1961 ।

हिन्दी नाट्यकला और रेडियो नाटक, डा० राधेश्याम वाजपेयी, अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-27, सन् 1977 ।

हिन्दी नाट्य दर्पण (रामचन्द्र गुणचन्द्र), अनुवादक विश्वेश्वराचार्य, दिल्ली, विश्वविद्यालय, दिल्ली, सन् 1961 ।

हिन्दी नाट्य-चिन्तन, डा० कुसुम कुमार, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली, सन् 1977 ।

हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाबराय, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, संस्कृत-हिन्दी पुस्तक विक्रेता, लाहौर, सन् 1942 ।

हिन्दी नाट्य समालोचन, मन्धाता ओझा, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, सन् 1976 ।

हिन्दी नाट्य साहित्य, ब्रजरत्न दास, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, संवत् 2017 ।

हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा० चन्द्रप्रकाश सिंह, उद्यान बंगला, समाजी बाग, बड़ौदा, संवत् 2020 ।

हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय, दरभंगा, संवत् 1997 ।

हिन्दी में नाट्य साहित्य का विकास, विश्वनाथ मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1966 ।

हिन्दी रंगमंच और पण्डित नारायण प्रसाद बेताब, डा० विद्यावती लक्ष्मण राव, नम्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1972 ।

हिन्दी रंगमंच का इतिहास-भाग एक, डा० चन्दू लाल दुबे, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1977 ।

हिन्दी वार्षिकी (1971), केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, सन् 1974 ।

हिन्दी विश्वकोश, सं० नगेन्द्र नाथ वसु, नगेन्द्रनाथ वसु विश्वनाथ वसु, कलकत्ता, सन् 1926 ।

हिन्दी विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस-परिकल्पना, डा० प्रेमस्वरूप, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1969 ।

हिन्दी शब्द-सागर, सं० श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् 1968 ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् 2003 ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1976 ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास-दिग्दर्शन, सोमनाथ भट्ट, व्हीनस प्रकाशन, पुणे, सन् 1965 ।

हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (ग्रियर्सन), अनुवादक डा० किशोरी लाल, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् 1957 ।

हिन्दीसाहित्य का मध्यकाल, डा० नित्यानन्द शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, प्रथम संस्करण ।

हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डा० गणपति चन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़, सन् 1965 ।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भाग 6), सं० डा० नगेन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2015 ।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 7, सं० डा० भगीरथ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2019 ।

हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डा० कृष्णलाल हंस, ग्रन्थम रामबाग, कानपुर, सन् 1974 ।

हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, शिवदान सिंह चौहान, राजकमल पब्लिकेशन्ज़, लिमिटिड, बम्बई, सन् 1954 ।

हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, सन् 1976 ।

हिन्दी साहित्य कोश, भाग एक, सं० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लि० कबीर चौरा, बनारस संवत् 2015 ।

हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, सं० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, संवत 2020 ।

हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, डा० सरनाम सिंह शर्मा, रामनारायण लाल प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, सन् 1952 ।

हिन्दी साहित्य विवेचन, योगेन्द्र नाथ शर्मा, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, संवत् 2018 ।

हिन्दी साहित्यशास्त्र कोश, राजवंश 'हीरा', बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, सन् 1973 ।

(ख) पंजाबी पुस्तकें

अमृतबचन ते संत दर्शन, महंत बिशन सिंह, सत्संग भवन, हरिद्वार, 1973 ।

हनूमान नाटक, हिरदाराम भल्ला, भाई जवाहर सिंह, कृपाल सिंह एण्ड कम्पनी, बाजार माई सेवाँ, अमृतसर ।

हनूमान नाटक (सटीक), पंडित जोगी शिवनाथ, ऐंग्लो गुरमुखी मंत्रालय, लाहौर, संवत् 1962 ।

गुरु अर्जन देव (जीवन ते रचना), डाइरैक्टर जनरल, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 1960 ।

गुरु इतिहास--2 से 9 तक, साहिब सिंह, सिंह ब्रदर्स, माई सेवाँ अमृतसर, 1980 ।

दस पातशाहिआं, नरेन्द्र सिंह बिरदी, माडर्न साहित अकेडमी, अमृतसर, प्रथम संस्करण।

पंजाबी प्रकाशनां दी सूची भाग 1, 2, डाइरैक्टर, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला।

पंजाबी हथ लिखतां दी सूची भाग एक, डाइरैक्टर जनरल, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, 1961 ।

महान कोश, भाई कान्ह सिंह, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, तीसरा संस्करण, 1974 ।

माता गंगा जी (जीवन इतिहास), त्रिलोक सिंह ज्ञानी, अमृत पुस्तक भंडार, बाजार माई सेवाँ, अमृतसर, 1977 ।

विचित्र नाटक (गुरु गोबिन्दसिंह), सम्पादक नरेण सिंह ज्ञानी, भाई बूटा सिंह प्रताप सिंह, भाई सेवां, अमृतसर ।

(ग) अंग्रेज़ी पुस्तकें

एनुअल रिपोर्ट आन द सर्वे आफ हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट फार द इअर 1904, श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, सन् 1907 ।

एरिस्टोटल एण्ड भरत, रोशन लाल सिंघल, रेअर बुक सेक्शन, पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, चण्डीगढ़ ।

एरिस्टोटेलियन थ्योरी आफ कामेडी, लेन कूपर, नारकोर्ट ब्रास एण्ड कम्पनी, न्यू यार्क, 1922 ।

एरिस्टोटल्स थ्योरी आफ पोइट्री एण्ड फाइन आर्ट, जोन गासनर डोवर पब्लिकेशन्स आई० एन० सी०, 1951 ।

द आर्ट आफ ड्रामा, रोनाल्ड पीकाक, रूटलेज एण्ड केगन पाल, लण्डन, 1957 ।

भरत नाट्य एण्ड इट्स कास्ट्युम, जी० एस० घुरे, पोपुलर बुक डिपो, लेमिंग्टन रोड, बोम्बे-7 ।

बिबलियोग्रेफी आफ संस्कृत ड्रामा, शिलर, न्यूयार्क, 1906 ।

भास ए स्टडी, ए० डी० पुलस्कर, मुन्शी राम मनोहरलाल, दिल्ली, 1968 ।

द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया (भाग तीन और चार), वोल्ज़ली हैग, एस० चंद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1965 ।

कैस्सल्स इन्साइक्लोपीडिया आफ वर्ल्ड लिटरेचर वोल्यूम एक, एस० एच० स्टेन बर्ग कैस्सल एण्ड कम्पनी लि० 35, रेड लाइन स्क्वायर, लण्डन, 1973 ।

द क्रोनोलोजी आफ इंडियन हिस्ट्री मैडिवल एण्ड माडर्न, जेम्स बर्ग, कोस्मो पब्लिकेशन्स, 24-बी, अन्सारी रोड दिल्ली-6, फर्स्ट एडिशन ।

द क्लासिकल ड्रामा आफ इंडिया, हैनरी डब्ल्यू वैल्स, एशिया पब्लिशिंग

हाउस, बौम्बे । 1963 ।

ए कन्साइस इन्साइक्लोपीडिया आफ द थियेटर, रौबिन मै ओसप्रे पब्लिशर्स

लिमिटिड बरकिशोर, आर० जी० आई०, 2 क्यू-इड, 1974 ।

ए कन्साइस हिस्ट्री आफ इंडिया, फ्रांसिस वाटसन, थामस एण्ड हडसन,

लण्डन, 1974 ।

ए क्रिटिकल सर्वे आफ हिन्दी लिटरेचर, राम अवध द्विवेदी, मोतीलाल बनारसी

दास, बैंग्लो रोड, दिल्ली-7, 1966 ।

द कल्चरल हिस्ट्री आफ इंडिया, ए० एल० बशम, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,

रेलवे रोड, लण्डन, फर्स्ट एडिशन ।

डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर, जोसेफ टी० शिपले, लिटिल फील्ड एडम्स

एण्ड को० पैटर्सन, न्यूयार्क, 1960 ।

ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर, आर० वी० जागीरदार, पोपुलर बुक डिपो बौम्बर, 1947 ।

ड्रामाटिक टैकनीक, जी० पी० बारकर, व्हाइटर कालेज, लण्डन, 1955 ।

इन्साइक्लोपीडिया आफ नौलेज, स्प्रिंग बुक डिपो, लण्डन, 1966 ।

द फ्रन्टीयर्स आफ ड्रामा, ऊना एलिस फर्मेर, मैथ्यूस एण्ड को० लि० लंडन, 1948 ।

ग्रेट नेम्स, जी० एल० सेठी, श्रीभारत भारती, प्रा० लि० दिल्ली-7, 1976 ।

गुइनैस बुक आफ रिकार्ड्स, नौरिस एम० सी० व्हाइटर, गुइनैस सुपरलैटिवस लि०

सिसिल कोर्ट, लण्डन रोड, एन्फील्ड, 1981 ।

गुरुगोबिन्द सिंह, लक्ष्मण सिंह, रेअर बुक सैक्शन, पंजाब यूनिवर्सिटी

लाइब्रेरी, चण्डीगढ़ ।

ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर, के० बी० जिंदल, किताब महल, इलाहाबाद, 1955 ।

द हिस्ट्री आफ इंडिया एज बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्ज, सर एच० एम०

इलियट, किताब महल, थोर्न हिल रोड, इलाहाबाद, 1972 ।

ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, एलबर्ट बैबर, केगन पाल ट्रैंच ट्रूबनर,

एण्ड को० लिमिटिड, लण्डन ।

हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, एम० विंटरनित्ज, ट्रांसलेटिड बाई सुरेन्द्र झा, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली- 6, 1977 ।

ए हिस्ट्री आफ पंजाबी लिटरेचर, मोहन सिंह, कस्तूरी लाल एण्ड सन्ज, अमृतसर, 1956 ।

ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, कृष्ण चैतन्य, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बे, 1962 ।

ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, क्लासिक पीरियड वौल्यूम-एक, एस० एन० दास गुप्त, यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1947 ।

हिस्ट्री आफ सिक्ख, जे० डी० कनिंघम, एस० चंद कम्पनी, दिल्ली, 1955 ।

ए हिस्ट्री आफ सिक्ख वौल्यूम एक, खुशवन्त सिंह, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1977 ।

हिस्ट्री आफ सिख द रिलिजन, खजान सिंह, डिपार्टमेंट आफ लैंग्वेज, पटियाला, 1970 ।

इंडिया फ्राम द अरलियस्ट एजिज, जे० टलबेज व्हीलर, कौस्मो पब्लिकेशन्स, लाइब्रेरी रोड, दिल्ली-6, 1973 ।

इंडियन ड्रामा, द पब्लिकेशन डिवीजन, मिनिस्ट्री आफ इन्फर्मेशन एण्ड ब्राडकास्टिंग, गैवर्नमेंट आफ इंडिया, दिल्ली ।

लाज एण्ड प्रैक्टिस आफ संस्कृत ड्रामा, सुरेन्द्र नाथ शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस पोस्ट बाक्स नं० 8, बाराणसी, 1961 ।

ए मोनोग्राफ आफ भरताज नाट्य शास्त्र, तैलगू पी० एस० आर० अप्पा राव, ए नाट्यमाला पब्लिकेशन्स अक्तूबर, 1967 ।

नाटक लक्षण रत्न कोश (सागरनन्दी), माइलेस, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लण्डन, 1937 ।

नाट्य दर्पण (रामचन्द्र गुणचन्द्र), जी० के० गोंडकर, गायकवाड़ औरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, 1979 ।

प्रीफेस टू ड्रामा, चार्ल्स डब्ल्यू० कूपर, क्राइस्ट कालेज, लण्डन, 1955 ।

द रीडर्स एन्साइक्लोपीडिया आफ वर्ल्ड ड्रामा, गासनर जौन, 1970 ।

रीडिंग ड्रामा, फ्रैड बी० मिलेट, हारपर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क फर्स्ट एडिशन ।

संस्कृत ड्रामा, ए० बी० कीथ, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लण्डन, 1954 ।

संस्कृत ड्रामा एण्ड ड्रामाग्यूटरी, विश्वनाथ भट्टाचार्य, भारत मनीषा, वाराणसी, 1974 ।

संस्कृत ड्रामा इट्स औरिजिन एण्ड डिक्लाइन, आइ० शेखर, इ० जे० ब्रिल, लेईडन, 1960 ।

संस्कृत लिटरेचर, मैक्डोनल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-6, 1962 ।

द सैकिंड ट्रैनियल रिपोर्ट आन द सर्वे आफ हिन्दी मैन्यूस्क्रिप्ट्स फार द इयर 1909-1911, श्याम सुन्दर दास, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1914 ।

स्कैचिज आफ द सिख्स, जे० मैकाले, अमर प्रेस बनारस, रिवाइज्ड एडिशन ।

सर्वे आफ संस्कृत लिटरेचर, डा० सी० कुन्हनराजा, भारतीय विद्याभवन, बौम्बे, 1962 ।

द थ्योरी आफ ड्रामा, ए० निकोल, दोआबा हाउस, नई सड़क, नई दिल्ली, 1974 ।

द ट्वैलथ रिपोर्ट आन द सर्वे आफ हिन्दी मैन्यूस्क्रिप्ट्स फार द इयर 1923-25, वौल्यूम एक, डा० हीरा लाल, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, 1944 ।

वट इज द प्ले, रिचर्ड ए० कैरसल, स्काट फोरमैन एण्ड को० युनाइटिड स्टेट्स आफ अमेरिका, 1967 ।

(घ) पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी --

1: आजकल,

2: आलोचना

3: कादम्बिनी

4: जन-साहित्य

5: नई धारा

6: नटरंग

7: नयापथ

8: नागरी प्रचारिणी पत्रिका

9: परिशोध

10: रंगयोग

11: शोध पत्रिका

12: सप्तसिन्धु

13: साहित्य संदेश

अंग्रेजी -- 1: द इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, न्यू दिल्ली ।

2: सिक्ख रिव्यू, सिक्ख कल्चरल सैंटर, कलकत्ता ।

(ड) हस्तलिखित पुस्तकें

1: (देवनागरी लिपि) , रुक्मिणी मंगल, हृदयराम भल्ला, विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, होशियारपुर ।

2: (कैथी लिपि), सुदामा चरित, हृदयराम भल्ला, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

3: (गुरुमुखी लिपि), देवमाया-प्रपंच नाटक, देव, पंजाब विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, चण्डीगढ़ ।

परीक्षित

तर्पदश्ताम

20.3.82